आकर-ग्रंथमाला—२

भिखारीदास

(ग्रंथावली)

द्वितीय खंड

(काव्यनिर्णय

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

नागरीप्रचारणी सभा, काशी ।

प्रथम संस्करण : १००० प्रतियाँ

संवत् २०१४

मूल्य ७॥)

मुद्रक—मानानति प्रेस, काशी।

माला का परिचय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी हीरक-जयंती के अवसर पर जिन भिन्न-भिन्न साहित्यिक अनुष्ठानों का श्रीगणेश करना निश्चित किया था उनमें से एक कार्य हिंदी के आकर ग्रंथों के सुसंपादित संस्करणों की पुस्तकमाला प्रकाशित करना भी था। जयंतियों अथवा बड़े-बड़े आयोजनों पर एकमात्र उत्सव आदि न कर स्थायी महत्व के ऐसे रचनात्मक कार्य करना सभा की परंपरा रही है जिनमें भाषा और साहित्य की ठोस सेवा हो। इसी दृष्टि से सभा ने हीरक-जयंती के पूर्व एक योजना बनाकर विभिन्न राज्य सरकारों और केंद्रीय सरकार के पास भेजी थी। इस योजना में सभा की वर्तमान विभिन्न प्रवृत्तियों को संपुष्ट करने के अतिरिक्त कतिपय नवीन कार्यों की रूपरेखा देकर आर्थिक संरक्षण के लिए सरकारों से आग्रह किया गया था जिनमें से केंद्रीय सरकार ने हिंदी-शब्दसागर के संशोधन-परिवर्धन तथा आकर ग्रंथों की एक माला के प्रकाशन में विशेष रुचि दिखलाई और ६-३-५४ को सभा की हीरक-जयंती का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेंद्रप्रसादजी ने घोषित किया—'मैं आपके निश्चयों का, विशेष कर इन दो (शब्दसागर-संशोधन तथा आकर-ग्रंथमाला) का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए की सहायता, जो पाँच वर्षों में, बीस-बीस हजार करके दिए जायँगे, देने का निश्चय हुआ है। इसी तरह से मौलिक प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन के लिए पचीस हजार रुपए भी, पाँच वर्षों में पाँच-पाँच हजार करके, सहायता दी जायगी। मैं आशा करता हूँ कि इस सहायता से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने ११.५.५४ को एफ ४-३.५४ एच ४ संख्यक एतत्संबंधी राजाज्ञा निकाली। राजाज्ञा की शर्तों के अनुसार इस माला के लिए संपादक-मंडल का संघटन तथा इसमें प्रकाश्य एक सौ उत्तमोत्तम ग्रंथों का निर्धारण कर लिया गया है। संपादक मंडल तथा ग्रंथ-सूची की संपुष्टि भी केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने कर दी है। ज्यों ज्यों ग्रंथ तैयार होते चलेंगे, इस माला में प्रकाशित होते रहेंगे। हिंदी के प्राचीन साहित्य को इस प्रकार उच्च स्तर के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं तथा इतर अध्येताओं के लिए सुलभ करके केंद्रीय सरकार ने जो स्तुत्य कार्य किया है उसके लिए वह धन्यवादार्ह है।

स्व. डा. श्री रामचन्द्र जी पुरोहित के संग्रह का उनके पुत्रों अजय एवं संजय पुरोहित द्वारा सादर सप्रेम भेंट

संपादन-शैली

संवत् १९८३ की विजयदशमी को अपने गुरुवर्य स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी के आदेशानुसार मैंने भिखारीदास के काव्यनिर्णय का संपादन आरंभ किया था। विजयदशमी के दिन कार्य आरंभ करने का हेतु यह था कि काव्यनिर्णय की रचना विजयदशमी को हुई थी।* उन दिनों यह एम० ए० कक्षा के पाठ्यक्रम में नियत था। इसका एक संस्करण श्रीमहावीर मालवीय 'वीर' द्वारा संपादित होकर उसी वर्ष प्रकाशित हुआ। पर लालाजी उससे संतुष्ट न थे। भारतजीवन और वेंकटेश्वर प्रेस के संस्करण मिलते थे, पर वे अर्थ करने में पूरी सहायता नहीं कर पाते थे। श्री 'वीर' का संस्करण भी अर्थ की दृष्टि से भरपूर सहायता नहीं करता था। दो उल्लासों का संपादन करके लालाजी से मैंने उस पद्धति की परिपुष्टि करा ली। पर कार्यप्रवाह ऐसा बदला कि मैं संपादन-कार्य आगे न बढ़ा सका। कई वर्षों तक काम रुका रह गया। सं० १९८७ के श्रावण मास में सहसा लालाजी बीमार पड़े और उनका देहावसान हो गया। उनकी शिष्य-मंडली ने प्राचीन ग्रंथों के संपादन का क्रम जारी रखने का निश्चय किया और भिखारीदास, केशवदास, भूषण और पद्माकर के ग्रंथों का संपादन सबसे पहले करने का निश्चय हुआ। पद्माकर के ग्रंथों का संपादन तो मैंने अकेले ही करने का बीड़ा उठाया, पर अन्य कवियों के ग्रंथों का संपादन करने में अन्य मित्रों ने भी सहायता देने का वचन दिया। भूषण-ग्रंथावली के संपादन में सर्वश्री रमाकांतजी चौबे, श्रीदेवाचार्य, मोहनवल्लभ पंत और बजरंगबली गुप्त ने योग दिया। दोनों कवियों के ग्रंथ संपादित हुए, प्रकाशित भी कर दिए गए। पद्माकर की ग्रंथावली पद्माकर-पंचामृत नाम से प्रकाशित की गई और भूषण की रचना भूषण-ग्रंथावली नाम से। केशवदासजी के ग्रंथों के संपादन में श्रीमोहनवल्लभजी पंत ने हाथ बँटाने का निश्चय किया। तदनुसार रसिकप्रिया के संपादन का कार्य आरंभ किया गया। पर तीन 'प्रभाव' तक कार्य होने के अनंतर पंतजी को अन्य कार्य-गौरव के कारण उसमें सहयोग करने का अवसर न मिल सका। इसलिए मैंने अपने ही बल-बूते पर उसका संपादन कर डाला। पर उसे छापे कौन। कोई प्रकाशक उसे प्रकाशित करने को प्रस्तुत न

---

* अट्ठारह सै तीनि है संवत आस्विन मास।
ग्रंथ काव्यनिर्नय रच्यो बिजै-दसैं दिन जास॥ १-४

थी। पहले रसिकप्रिया एम० ए० के पाठ्यक्रम में नियत थी। अब [illegible] हट गई थी। इसलिए वह कार्य किया कराया भी पड़ा रह गया। जब काशी में हिंदी साहित्यसम्मेलन का अधिवेशन हो रहा था, तब श्रीधीरेंद्रजी वर्मा ने केशव-ग्रंथावली के संपादन की चर्चा चलाई और कुछ दिनों के अनंतर उसके संपादन का भार मुझे सौंपा। वह ग्रंथावली उनके आदेशानुसार मैंने संपादित कर दी जिसके दो खंड प्रयाग की हिंदुस्तानी अकादमी से प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरा और अंतिम भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जाएगा।

सं० १९८७ की विजयदशमी को फिर से काव्यनिर्णय के संपादन में हाथ लगाया गया। इस बार श्रीदेवाचार्यजी ने भी हाथ बँटाया। कुछ दूर तक कार्य करने के अनंतर मैंने यह कार्य उन्हें पूर्ण करने के लिए दे दिया। निश्चय हुआ कि इसके जितने संस्करण प्राप्त हैं उनके पाठांतरों की नियोजना के साथ इसका संपादन हो और आवश्यक टिप्पणियाँ अर्थ को खोलने के लिए लगा दी जायँ। आचार्यजी ने यह कार्य परिश्रमपूर्वक संपन्न कर दिया। फिर उसके दुहराने का कार्य मैंने आरंभ किया। लगभग एकतिहाई दुहराने के अनंतर काम रुक गया। उसके प्रकाशन की समस्या भी जटिल थी। कोई प्रकाशक यह कार्य करने को प्रस्तुत न था। जब मैंने कुछ अन्य प्राचीन कवियों के ग्रंथों के संपादन में हाथ लगाया और घनआनंद, रसखानि, बोधा, आलम, ग्वाल आदि के ग्रंथों का संपादन आरंभ किया तो भिखारीदासजी की रचनाओं में भी हाथ लगाया। यह कार्य भी पड़ा पड़ा धूल फाँक रहा था। जब आकर-ग्रंथमाला की स्थापना सभा में हुई और मुझे उसका संपादक नियुक्त किया गया तो शीघ्र से शीघ्र प्राचीन ग्रंथों को संपादित करके छपाने की समस्या खड़ी हुई। जिन मित्रों को आकर ग्रंथमाला की योजना के अंतर्गत प्राचीन ग्रंथों के संपादन का कार्य सौंपा गया है उनसे यथोचित समय के भीतर ग्रंथों को पा सकने में विलंब देख मैंने भिखारीदास की ग्रंथावली स्वयम् ही संपादित करके सबसे पहले प्रकाशित कराने का निश्चय किया। उसके संपादन की सामग्री का विवरण पहले खंड में दिया जा चुका है। यहाँ संपादन-शैली पर विचार प्रसंग-प्राप्त है।

प्राचीन ग्रंथों के संपादन में हस्तलेखों की सामग्री सबसे अधिक काम की होती है। यदि किसी ग्रंथकर्ता के हाथ की लिखी प्रति मिल जाय तो बहुत से झगड़े बखेड़ों से छुट्टी मिल जाय। कम से कम संपादन में उतना श्रम न करना पड़े जितना करना पड़ता है। वैसी स्थिति में विचार की दूसरी सरणि को

अवकाश मिले और साहित्य के क्षेत्र में बहुत सी बातें निश्चित हो जायें। मैं बहुत दिनों से प्राचीन ग्रंथों के चक्कर में पड़ा हूँ। मुझे सहस्रावधि हस्तलेखों के देखने का अवसर प्राप्त हो चुका है। पर बहुत इधर के ग्रंथकारों को छोड़कर किसी कवि के स्वलिखित हस्तलेख प्राप्त नहीं होते। इसका हेतु क्या है। जो स्थिति आज है कुछ कुछ वैसी ही स्थिति उस समय भी थी। आज कोई व्यक्ति अपनी पुस्तक लिखकर प्रेस में छपने के लिए भेज देता है। छप जाने के अनंतर कर्ता की स्वहस्तलिखित प्रति अनावश्यक समझकर फेंक दी जाती है।*

संप्रति मेरे मित्र श्रीमुरारीलालजी केडिया वर्तमान लेखकों की स्वहस्तलिखित प्रति के संग्रह में दत्तचित्त हैं, पर बहुतों की पांडुलिपियाँ नहीं मिलतीं। प्राचीन काल में कवि अपनी स्वहस्तलिखित प्रति उस समय निष्पन्न समझकर परित्यक्त कर देता था जब 'लिखक' उसे सुंदर अक्षरों में लिख देता था। पहले प्रेस नहीं थे, लिखक छापेखाने का-सा कुछ कार्य करते थे। किसी ग्रंथ की प्रतियाँ लिखक लिखते थे। पर उन हस्तलेखों की संख्या परिमित होती थी। एक एक हस्तलेख के प्रस्तुत करने में महीने और वर्ष तक लगते थे। कवि या कर्ता की स्वहस्तलिखित प्रति से अनुलिपि होने पर यह भी संभावना है कि कर्ता उसको देखकर शोध दे। पर ऐसी शोधित प्रतियाँ भी प्राप्त नहीं होतीं। यदि प्राप्त हों भी तो बिना किसी उल्लेख के यह निश्चय करना कठिन है कि कर्ता ने उसका शोधन किया है। हस्तलेख कर्ता के लिए भी लिखे जाते थे और धनी महाजनों या राजाओं के लिए भी।

उस समय के किसी कवि के हृदय में स्वामित्व (कापीराइट) की भावना नहीं थी। वे अपनी रचना के प्रचलित-प्रसरित होने मात्र से संतुष्ट हो जाते थे। कोई धनी या राजा-महाराजा किसी रचना से रीझकर उस कवि या कर्ता का उसके जीवनकाल में सम्मान कर दे तो कर दे, अन्यथा उसके जीवनकाल के अनंतर कोई स्वामित्व (कापीराइट) नहीं रह जाता था। हस्तलेख की अनुलिपियाँ जिनके पास होती थीं वे ही उसके स्वामित्व (कापीराइट) का कुछ लाभ उठा लें तो उठा लें। अन्यथा 'लिखक' को ही उसमें आय होती थी। वे दो चार आने सैकड़े (अनुष्टुप्) के भाव से हस्तलेख लिख देते थे। अनुष्टुप् में

---

* प्रतापसाहि ने संवत् १८९४ में अलंकारचिंतामणि लिखी। उसी वर्ष उनके पठनार्थ उसकी अनुलिपि हो गई—इति श्रीकवींद्रकुलभूषणरतनसाहिसिरोमनि तस्यात्मज प्रतापसाहिविरचितायां अलंकारचिंतामणि अर्था-शब्दालंकारवर्ननो नाम संपूर्ण प्रकास। मिति श्रावण बदि ४ सुक्रे संवत् १८९४ लिषित प्रतापसाहिपठनार्थं चिरजीव बिहारीलाल पारीक्षतेन श्रीरामो जयति (खोज, ०६-९? ई)।

बत्तीस अक्षर होते हैं। किसी रचना के अक्षरों की गिनती करके और ३२ अक्षरों का भाग देकर अनुष्टुप् के शतकों का निश्चय कर लिया जाता था। ये 'लिखक' सुदर अक्षर तो अवश्य लिख सकते थे पर किसी रचना का अर्थ करने में समर्थ नहीं होते थे। मक्षिकास्थाने मक्षिका लिख देते थे। अंत में प्रायः लिख दिया करते थे कि 'यादृशं पुस्तकं दृष्टं तादृशं लिखितं मया। शुद्धं वा यदि वाऽशुद्धं मम दोषो न दीयताम्' आदि आदि।

हस्तलेख में चलनेवाली लिपियाँ प्रदेशभेद से भिन्न-भिन्न होती थीं। एक लिपि से दूसरी में उतारने में यदि मूल लिपि का कोई अक्षर ठीक न समझा गया तो भी शब्द का रूप बदल जाता था। किसी-किसी लिपि में मात्राओं की व्यवस्था नागरी की भाँति पूर्ण न होने से कठिनाई पडती थी। कैथी लिपि में दीर्घ इकार ही होता है, ह्रस्व उकार ही होता है। इस कारण यदि कैथी में अनुलिपि की गई तो फिर उस प्रति से अनुलिपि करने में भ्रम होने की संभावना रहती थी। कैथी से यदि नागरी में अनुलिपि हो तो शब्दों का वर्ण-विन्यास बदल जाने की संभावना रहती है। परिणाम यह होता था कि पाठांतर हो जाते थे। कई अक्षरों के रूपों में समानता होने से यदि एक अक्षर कुछ का कुछ पढ लिया गया तो पाठांतर हो जाता था। इसका विस्तार से विचार स्वयम् स्वच्छंद विषय है। उसकी बहुत अधिक सामग्री मैंने एकत्र की है। यदि अवसर मिला तो इस विषय पर स्वतंत्र पुस्तक कभी प्रस्तुत की जाएगी।

यहाँ जो कुछ कहा गया उससे यह निश्चय है कि लिखक के प्रमाद से मूल पाठ में अंतर पड जाया करता था। फिर उसकी परंपरा चलती थी। प्रदेशभेद से शब्दों के उच्चारण में भी अंतर होता था। इसलिए यदि मूल पाठ में कोई विशेष मात्रा होती थी तो वह इस देशभेद के कारण भी बदल जाती थी। किसी शब्द को ठीक से न समझने पर और लिखते समय अपने प्रदेश के संस्कारवश व्यक्तिगत ज्ञान-सीमा के कारण शब्दों में जाने-अनजाने परिवर्तन कर बैठना भी सहज था। इसका एकाध उदाहरण लीजिए। भिखारीदास से इसे न आरंभ करके तुलसीदास से आरंभ करता हूँ।

तुलसीदास के मानस का पाठ-शोधन करते समय कई ऐसी बातें सामने आई हैं जिनसे पाठ शोध के क्षेत्र में विशेष ज्ञानवर्धन की संभावना है। नागरी के प्राचीन हस्तलेखों में ब और व अक्षर में भेद करने का नियम दूसरा था। ब के लिए व ही लिखते थे। पर व के लिए नीचे बिंदी लगाकर व लिखा करते थे। ऐसा भी होता था कि कभी-कभी व के नीचे बिंदी न भी लगे। ऊपर या नीचे बिंदी लगाने की लिपिकों की विधि भी निराली थी। कोई-कोई तो पंक्ति के ऊपर

के बिंदुओं को गिनकर मनमाने स्थानों पर लगा देते थे। बहुत से छोड़ देते थे। यही स्थिति नीचे बिंदु लगाने की थी। पहले बिंदु और चद्रबिंदु दोनों का प्रचलन था। सत फकीरों की रचना के हस्तलेखों में अधिकतर बिंदु ही मिलते हैं पर साहित्यिक या सुपठित कवियों की सावधान लिखकों की लिखी प्रतियों में अधिकतर चद्रबिंदु। व अक्षर दो प्रकार का होता है—एक तो वास्तविक और दूसरे श्रुतिमात्र। प्राचीन काल में बहुत से प्रदेशों में स्वर के साथ व श्रुति बहुत थी। इसके अवशेष हस्तलेखों में बहुधा मिलते हैं। 'ओर' का 'वोर' प्रायः मिलता है। व श्रुति के कारण यदि शब्द का रूप अपरिचित हो जाए तो लेखक कभी-कभी कुछ का कुछ लिख देता था या शोधन कर देता था। मानस के प्रथम सोपान (बालकांड) में एक अर्धाली प्राचीन हस्तलेखों में यों है—

कासी मग सुरसरि कविनासा। मरु मारव महिदेव गवासा।

यहाँ कर्मनासा के लिए 'कविनासा' शब्द है। बाद के हस्तलेखों में यह 'क्रमनासा' हो गया है। 'कविनासा' में व श्रुतिमात्र है। उसका उच्चारण सप्रति 'कइनासा' होगा। यह 'कइनासा' 'कलिनाशा' का प्राकृत रूप है। जो 'कर्मनाशा' का अर्थ वही 'कलिनाशा' का अर्थ। इसे न समझने से 'कविनासा' का रूप 'क्रमनासा' हो ग'। व श्रुति को न समझने से 'कविनासा' रूप भी हो गया। ऐसी ही स्थिति जायसी की इस चौपाई में भी है—

कीन्हेसि तेहि पिरीत कविलासू।

यहाँ भी व श्रुतिमात्र है। 'कविलासू' का सप्रति उच्चारण 'कइलासू' होगा। इसलिए इस 'कविलासू' का अर्थ 'कविलासू' (कवि का लास) नहीं किया जा सकता।

कवि भी पाठातर करते थे। इसके प्रमाण मिलते हैं। यदि किसी कवि का एक ही छद भिन्न-भिन्न ग्रथों या भिन्न भिन्न प्रसगों में आता था तो ग्रथ या प्रसग के अनुरोध से उसमें पाठातर कर दिया जाता था। कवि अपने एक ही छद को विभिन्न नरेशों की प्रशस्ति में प्रयुक्त करता तो उसमें पाठभेद हो जाता था। केशवदासजी का एक ही छद रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचंद्र-चंद्रिका, वीरचरित्र, विज्ञानगीता और जहाँगीरजसचंद्रिका में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए या वर्णनों में पाठभेद से प्रयुक्त है। देव कवि के कुशल-विलास, भवानीविलास, भावविलास में विषय की समानता है और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए उसका नियोजन है, इसलिए उनमें पाठभेद होने की संभावना कवि द्वारा ही है। पद्माकर ने एक ही रचना को आलीजाप्रकाश और जगद्विनोद दो नामों से प्रचारित किया है। पहले वही रचना ग्वालियर

के आलीजा के लिए बनी, फिर जयपुर के जगतसिंह के नाम पर कर दी गई। इसलिए उसमें यत्रतत्र पाठभेद कवि द्वारा होना संभव है। कवि पाठभेद करते थे। पर लिखित प्रमाणों के न मिलने पर निश्चय करने में कठिनाई होती है। इसलिए यदि किसी कवि का एक ही छंद भिन्न भिन्न ग्रंथों या भिन्न भिन्न प्रसंगों में आए तो हस्तलेखों के आधार पर ही उनके पाठ का रूप होना चाहिए। उसमें सब ग्रंथों के रूपों से परिवर्तन न करना चाहिए। केशव-ग्रंथावली और भिखारीदास-ग्रंथावली का संपादन करने में हस्तलेखों की परंपरा पर ही ध्यान दिया गया है। किसी छंद के पाठभेद को एक सा करने का प्रयास नहीं किया गया। इसलिए यदि किसी एक छंद का पाठ एक ग्रंथ या प्रसंग में दूसरा और दूसरे ग्रंथ या प्रसंग में दूसरा हो तो समझ लेना चाहिए कि वह विभिन्न ग्रंथों के हस्तलेखों की परंपरा के कारण है।

जहाँ तक 'लिपिक' का पक्ष है वे जानबूझकर पाठांतर नहीं करते थे। कभी कभी कोई बोलता जाता था और लिपिक लिखता था। सुनने के प्रमाद से भी कुछ का कुछ लिख जाता था। अनेक हस्तलेखों के देखने से, जैसा पहले कहा जा चुका है, शाखाभेद दिखाई पड़ता है। यह शाखाभेद केवल 'लिपिक' के प्रमाद से ही हो ऐसा नहीं जान पड़ता। इसलिए यह मानना पड़ता है कि हस्तलेखों का संपादन या शोधन भी होता था। जैसा कि पहले कह आए हैं किसी ग्रंथ की मूल प्रति के शोधन का प्रथम प्रयास उसके कर्ता-निर्माता के ही द्वारा होता था। पर उसके प्रमाण अनुमानाश्रित हैं। जिन प्रतियों के संबंध में यह जनश्रुति है कि उसे कर्ता ने शोधा उनकी छानबीन मत के विरुद्ध ही साक्षी भरती है। मानस की कई प्राचीन प्रतियों के संबंध में ऐसा प्रवाद है, पर जाँच से उसमें सत्यता नहीं मिली।

प्राचीन काव्यों का शोधन या संपादन अनुलिपि के समय भी होता था। दरबारों में जब कोई ग्रंथ पहुँचता था तो उस दरबार के प्रमुख राजकवि उसे देखते थे और उसका शोधन करते थे। जो शब्द उनकी समझ में नहीं आते थे उन्हें कभी कभी बदल देते या भावार्थवाची शब्द रख देते थे। प्राचीन ग्रंथों में से कई की टीकाएँ हुई हैं। टीकाकार भी बड़े बड़े विद्वान् या मर्मज्ञ रहे हैं। उनके स्वीकृत पाठों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने शब्द को अपने ढंग से समझने और उसका रूप बदलने का प्रयास किया है। वे जहाँ पाठांतर करते थे वहीं बहुत से परंपराप्राप्त शब्दों का ठीक रूप और अर्थ भी देते थे। जो भी हो, संप्रति प्राचीन ग्रंथों का फिर से संपादन हो रहा है उनके संपादकों को यह

भी ध्यान में रखना चाहिए कि ग्रथों के सपादन के प्राचीन प्रयत्न भी हैं। वे वैज्ञानिक भले ही न कहे जायँ पर प्रयत्न पहले भी हुए हैं। परंपरा की गतिविधि और अनपेक्षित साहित्यप्रवाह के निराकरण के लिए सभाएँ तक होती रही हैं। सूरति मिश्र के प्रयास से आगरे में तत्सामयिक प्रमुख कवियों का एक समारोह हुआ था जिसमें हिंदी काव्यशास्त्र की परपरा में प्राचीन के त्याग और नवीन के सग्रह का विचार किया गया था। अन्य चर्चाओं से यहाँ प्रयोजन नहीं। भिखारीदास के ही ग्रथों के शोधन का विचार कीजिए। काशिराज के पुस्तकालय में भिखारीदास के चारो साहित्यिक ग्रथ एक ही जिल्द में सगृहीत किए गए हैं और छदार्णव के छदों का प्रस्तार छंदप्रकाश के नाम से जोडकर उसे समझाने का प्रयास किया गया है। काशिराज के किसी दरबारी कविराज ने इसे अवश्य देखा है। छंदार्णव में तो निश्चय ही सपादन किया गया है। पाठांतरों के देखने से स्थिति स्पष्ट हो जाएगी।

जब प्राचीन ग्रथ छापे में छपने लगे तो फिर उनका शोधन-सपादन हुआ। सपादन-सामग्री में छंदार्णव के शोधनेवाले दुर्गादत्तजी का उल्लेख हो चुका है। यह उस समय की चर्चा है जब प्रस्तरछाप का चलन था। मुद्रण का प्रसार होने पर बगवासी, भारतजीवन, नवलकिशोर, वेंकटेश्वर आदि अनेक प्रेसों में भी शोधन थोडा-बहुत होता था। फिर पढाई-लिखाई के विचार से लाला भगवानदीन, प० रामचद्र शुक्ल आदि के प्रयत्न सामने आए। अब शोध की दृष्टि प्रधान होने पर वैज्ञानिक सस्करणों की ओर ध्यान गया है।

इन सबकी मीमासा या छानबीन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि पहले शोधन-सपादन में अर्थ की दृष्टि प्रधान रहती थी और वैज्ञानिक शोध में शब्द की दृष्टि प्रधान है। वैज्ञानिक सपादन इस प्रयत्न में अधिक रहता है कि कवि-प्रयुक्त शब्द और उसके रूप तक पहुँचा जाए। उसमें अर्थ का विचार त्याग ही दिया जाय सो बात नहीं है। सोचा यह जाता है कि आज जिस शब्द को हम पहचान नहीं पाते हैं वह पहले प्रचलित रहा होगा। अनुसधान बतलाता है कि कई शब्द न समझने के कारण बदल दिए जाते हैं। मानस की एक चौपाई सप्रति यों प्रचलित है—

केहि न सुसग <u>बड़प्पन</u> पावा।

पर पुराने हस्तलेखों में इसका रूप यों है—

केहि न सुसंग <u>बडत्तनु</u> पावा।

जिस समय 'बडत्तन' प्रचलित था तुलसीदास उस समय के निकट पडते

नीचे मूलपाठ-लिखक से भिन्न किसी दूसरे लिखक अथवा शोधक ने संशोधित पाठ दे रखा है। संस्कृत के हस्तलेखों में एक तो ऐसी समस्या कम है, दूसरे बहुत प्राचीन ग्रंथों के संपादन में मूल पाठ और शोधित पाठ का माहात्म्य तभी है जब अन्य हस्तलेखों में वैसा मिले। हिंदी में मूल पाठ और शोधित पाठ से अनेक प्रकार के रहस्यों का उद्घाटन होने की संभावना है। इसलिए दोनों का संकलन अपेक्षित है। हिंदी में मानस के संबंध में तो यत्र तत्र प्राचीन हस्तलेखों के प्रसंग में द्विविध पाठों की चर्चा की गई है पर अन्य ग्रंथों के प्राचीन हस्तलेखों के संबंध में प्रायः उपेक्षा ही होती रही है। कहीं मूल पाठ गृहीत कर लिया गया है और कहीं शोधित। मानस के उन संस्करणों में भी यह छूट हो गई है जिनमें यत्र तत्र शोधित पाठ की चर्चा है। इस पर ध्यान न देने से मानस की उल्लिखित प्रतियों में पाठ यों स्वीकृत हुआ है—

बायस पलिअहिं अति अनुरागा।
होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥

प्राचीन हस्तलेखों में मूल पाठ 'पायस' है। 'बायस' शोधित है। 'पायस' को चाहे 'बायस' आगे चलकर स्वयम् तुलसीदास ने ही कर दिया हो पर 'पायस' पाठ ही पहले था यह हस्तलेखों के मूल पाठ के साक्ष्य पर कहा जा सकता है।

भिखारीदास-ग्रंथावली के पाठों का संग्रह जिन प्रतियों से किया गया है उनमें संशोधित पाठ कम स्थानों पर है। फिर भी यथास्थान उसका संग्रह किया गया है। अपेक्षित चिह्न (+) भी उसके साथ लगाया गया है। इस ग्रंथा-वली में पाठसंग्रह की पद्धति यह है कि मूल स्वीकृत पाठ का संकेत देकर तद्भिन्न पाठ पादटिप्पणी में दिया गया है। छंदसंख्या का उल्लेख करके क्रमशः पाठों का संकेत किया गया है। छोटे कोष्ठक में प्रतियों के नाम के संकेत दिए गए हैं। यदि पूर्वगामी हस्तलेख वही या वे ही हैं तो 'वही' लिखा गया है। यह सब ग्रंथ में यथास्थान देखा जा सकता है अपने सहकर्मी बंधुओं से दो स्थितियों में मतभेद होने के कारण उनका ग्रहण नहीं किया गया है। एक है मूल में अंक लगाकर नीचे पाठ देना। इससे पाठांतर कुछ संक्षेप में संकलित हो सकता है। पर एक तो केवल मूल पाठ से सरोकार रखनेवाले के नेत्र-मस्तिष्क को बारबार ठोकर लगती है, दूसरे यदि अंक टूटा या इधर-उधर हुआ तो पाठ से सरोकार रखनेवालों को भी परेशानी होती है। प्रतियों को '१,२,३' अंकों से या 'क, ख, ग' अक्षरों से संकेतित करने के बदले उनका

संक्षिप्त नाम रखना नहीं अच्छा लगा। इसमें इधर-उधर होने से, छूटने-टूटने से भी भ्रांति कम होने की संभावना है। नाम रखने में सबसे प्रथम उस हस्तलेख के लिपिक के नाम को संक्षिप्त किया गया है। लिपिक का नाम जहाँ नहीं है वहाँ ग्रन्था या उसके स्वामी के नाम या उपाधि का संक्षेप किया गया है। मुद्रित ग्रंथों में मुद्रण करनेवाले छापेखानों के नाम संक्षिप्त किए गए हैं। प्रस्तरछाप के लिए 'लीथो' ही नाम रख लिया गया है. छापेखाने का नाम नहीं रखा गया है। यदि दो लीथो की प्रतियाँ रही हैं तो एक में लीथो नाम दूसरी में छापेखाने का संक्षिप्त नाम रखा गया है, इति दिक्।

मूल पाठ की स्वीकृति में सबसे प्राचीन प्रति या प्रतियों के पाठों को वरीयता दी गई है। वहीं उन पाठों को अस्वीकृत किया गया है जहाँ लिपिक-प्रमाद की संभावना है अथवा अर्थ की संगति प्रसंगानुकूल किसी प्रकार नहीं बैठती। कभी कभी तो सब पाठ त्याग कर अपना कल्पित पाठ भी (प्रतियों का पाठ किसी प्रकार प्रसंगानुकूल न होने पर) रखा गया है। ऐसे स्थान पर या तो सभी प्रतियों के पाठ स्वल्पभेद सहित दिए गए हैं और क्रमशः प्रतियों के नामों का उल्लेख कोष्ठक में कर दिया गया है या स्वल्पभेद न होने पर कोष्ठक में 'सर्वत्र' दिया गया है। उदाहरणार्थ रससारांश के आरंभ में ही छठे छंद में 'स्वादवेत्ता' के स्थान पर सभी प्रतियों में 'स्वादवेदता' ही मिलता है। यहाँ 'वेदता' शब्द संज्ञा है, होना चाहिए विशेषण। आगे के 'रसिकजन' में सप्तमी नहीं लगती। इसलिए 'स्वादवेत्ता' ही प्रतियों में 'स्वादवेदता' हो गया होगा, 'स्वादवेत्ता' लिखा गया 'स्वादवेतता' फिर 'स्वादवेदता'।

छंदार्णव से एक साधारण उदाहरण लीजिए। द्वितीय तरंग के प्रथम छंद में दीर्घ स्वरों का उल्लेख करते हुए 'ई ऊ आ ए' के बदले 'आ ई ऊ ए' पाठ मुझे ठीक जँचा। दूसरे चरण में ह्रस्व स्वरों का क्रम 'अ इ उ' ही सर्वत्र है। इसलिए दीर्घ का भी क्रम वही होना चाहिए। छंदार्णव के संपादन में इतना अधिक श्रम करना पड़ा जितना कभी नहीं करना पड़ा था। इसका मुख्य कारण यह है कि इसमें छंदों के लक्षण सांकेतिक शैली से बहुत दिए हुए हैं। उस सांकेतिक शैली को ठीक ठीक न समझने के कारण कुछ का कुछ हो गया है। यद्यपि 'दास' ने लघु गुरु आदि के नाम गिनाते हुए इन सांकेतिक रूपों या नामों का उल्लेख कर दिया है, पर सामान्यतया उस पर दृष्टि नहीं जाती। जैसे गुरु (ऽ) के कई नामों में एक 'हार' है। द्विकल (।।) का नाम 'प्रिय, सुप्रिय, परम प्रिय या प्रिय' है। आदिलघु त्रिकल या लघुगुरु (।ऽ) के अनेक नामों में से उन्होंने 'ध्रुव' का व्यवहार बहुत किया है। ऐसे ही आदिगुरु त्रिकल या गुरु-

लघु (ऽ।) के लिए 'नद' का संकेत प्रायः आया है। दो गुरु (ऽऽ) को 'कर्ण' और चार लघु (।।।।) को 'द्विज' या 'विप्र' कहा है। बीस मात्रा के 'दीपकी' छंद का लक्षण किया गया 'द्वै दीपहि दीपकिय कहत कविजन है'। यहाँ 'द्वै दीप' में 'दीप' नामक दस मात्रा के छंद से तात्पर्य है। इस नीरस प्रसंग का अधिक विस्तार करना निष्प्रयोजन है। जिनकी पिंगल में अभिरुचि हो छंदार्णव के किसी संस्करण से इस संस्करण को मिला देखें।

सबसे अधिक समय लिया काव्यनिर्णय के चित्रोत्तर या चित्रालंकार ने। २१वें उल्लास से एक छंद अर्थात् ३०वें का ठीक ठीक अर्थ निकालने में मुझे कई दिनों तक दिवारात्रि मस्तिष्क को एकाग्र करना पड़ा। मेरी घोषणा है कि इसका ठीक अर्थ परंपरा में किसी को नहीं लगा है।

काव्यनिर्णय का मूल पाठ छप जाने के अनंतर मेरे व्रजभाषाविद् परम मित्र द्वारा संपादित महाकाय काव्यनिर्णय प्रकाशित हुआ। बड़ी आशा से मैंने उसकी ओर हाथ बढ़ाया, पर बीर कवि के वेलवेडियर प्रेस वाले संस्करण में जो अर्थ दिया गया है वही नाममात्र के हेरफेर से यहाँ भी मिला। बहुमूल्य समय इस साधारण से गोरखधंधे में लगाना बेकार है पर मन नहीं मानता, कर्तव्य मानने नहीं देता।

काव्यनिर्णय का वह छंद यहाँ उद्धृत किया जाता है—

को गन सुखद, काहे अंगुली सुलच्छनी है,
देत कहा घन, कैसो विरही को चंदु है।
जाले क्यों तुकारै, कहा लघु नाम धारै, कहा
नृत्य मैं विचारै, कहा फाँदो व्याध फंदु है।
कहा दै पचावै फूटे भाजन मैं भात, क्यों
वालावै कुस भ्रातु, कहा वृप बोलु मंदु है।
भू पै कौन भावै, खग-खेलै को नठावै, प्रिया
फेरै कहि कहा कहा रोगिन को वंदु है॥

'अरस तिलक' करके 'सर०' में इतना दिया है—'यगन, जव, वल, जवाल, लच, जलवा, वाल, लय, लवा, लवा, लवा, यवा, वाज, वाल, लवाय, वायल'। उक्त कवित्त के उत्तरों को स्पष्ट करने के लिए स्वयम् 'दास' ने आगे एक दोहा ही दिया है—

खचि त्रिकोन यलवाहि लिखि, पढौ अर्थ मिलि ज्यौंहि।
उतरु सर्वतोभद्र यह, वहिरलापिका यौंहि॥

त्रिकोण में 'यलवा' लिखकर इन्हें क्रमशः मिलाकर पढ़ो तो अर्थ मिले। अन्य स्थानों में इसका जो अर्थ किया गया है उसमें 'जलवाहि' में 'हि' को विभक्तिचिह्न न मानकर प्रहेलिका के उत्तर का एक अक्षर ही समझकर त्रिकोण यों खींचा गया है—

"टि०—कौन समूह सुखदाता है?=लहि अर्थात् प्राप्ति। अँगरी (कवच) किसकी सुलक्षणी है?=बाज पक्षी की। मेघ क्या देते हैं?=जल। विरही को चद्रमा कैसा है=ज्वाल। पाला को कौन नष्ट करता है?=यहि (सूर्य)। लघु नामधारी कौन?=वाय (पवन) जो दिखाई नहीं देते। नाच में विचार-णीय क्या है?=लय। व्याधा फदे में किसे फँसाता है?=लवा पक्षी। फूटे पात्र में क्या देकर भात पकाया जाता है?=हिल अर्थात् गीला आटा आदि। कुश भाई को किस प्रकार बुलाते थे?=हिय (प्यारे)। बैल की बोली कहाँ मद होती है?=हिवाल अर्थात् अत्यत शीत से। राजा को क्या सुहाता है?=बाल (स्त्री नवयौवना)। किस स्थान में पक्षी विहार करते हैं?=वाहिज अर्थात् शून्य स्थान में। प्यारी क्या कहकर लौटाती है?=वाहि (उसको)। रोगियों के लिए क्या वद है?=जलवाहि अर्थात् स्नान।"—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग (सन् १६२६)।

"समूह को सुखदाता कौन,—"लहि"=अर्थ-प्राप्ति, किसकी उँगलियाँ अच्छी हैं—"बाज"=बाज पक्षी की, मेघ क्या देते है="जल", विरही को चद्रमा कैसा लगता है—ज्वाल (सा)=अत्यत दुखद, तुसार (पाले) को कौन

जलाता—नष्ट करता है,—"अहि" = सूर्य, लघु (छोटा) नाम किसका ?—"वाय (वाहि) = वायु, पवन, हवा का, नृत्य में क्या विचारणीय ? "लय" = धुन-आवाज, फंदे में व्याध किसे फसाते हैं—लवा (पक्षी) को, फूटे पात्र (वर्तन) मे क्या लगाकर भात (चावल) पकाते है—"हिल" = गीला आटा लगाकर, भाई को कुश (श्रीराम पुत्र) क्या कहकर बुलाते हैं—"हिय" = प्यारे कहकर, बैल की बोली कब बद होती है—"हिवाल" = शीत के समय, राजा को कौन सुहाता है—वाल (बाल) = बाला, तरुणी-स्त्रियाँ, किस स्थान मे पक्षी विहार करते है—'वाहिज" = शून्य-एकात स्थान में, प्रियतमा (स्त्री) पति से क्या कहकर बोलती है—"वाहि" = उनको, रोगियों को क्या बद है—"जल-वाहि" = स्नान।" —कल्याणदास ब्रदर्स, वाराणसी (१९५६)।

दास ने केवल तीन अक्षरों का ही त्रिकोण माना है—
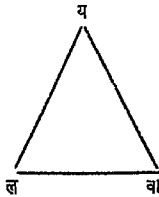
क्रमपूर्वक इसमें पद्रह प्रश्नों का उत्तर दिया है। इसलिए तीन अक्षरों के त्रिकोण में से प्रत्येक अक्षर से पाँच-पाँच उत्तर होते हैं। उत्तर पर आने के पूर्व यह भी जान लेना चाहिए कि चित्र में 'व ब' का अभेद है और 'य ज' का भी। 'य' अक्षर से उत्तर क्रमशः य, यवा (जवा), यल (जल), यवाल (जवाल), यलवा (जलवा) ये पाँच हुए। 'ल' अक्षर से इसी प्रकार ल, लय, लवा, लयवा (लइवा = लेवा), लवाय (लव + आय)। वा अक्षर से वा (वाँ), वाल (बाल), वाय (बाज), वालय (बालइ = बाले), वायल (बातल = वायुकारक)।

अब प्रश्न और उत्तर को मिलाइए—

१—को गन सुखद = कौन गण (मगण आदि) सुखद है—य (गण)।

२—काहे अगुली सुलच्छनी है = अगुली किस (लक्षण) से सुलक्षणी कही जाती है—यवा (जवा) से।

३—देत कहा घन = बादल क्या देता है—यल (जल)।

४—कैसो विरही को चंदु है = चंद्रमा विरही को कैसा (लगना) है—चवाल (लवाल)।

५—जालै क्यों तुकारै = 'जाल' (शब्द) को यदि तुकारें तो क्या कहेंगे—यलवा (जलवा)।

६—कहा लघु नाम धारै = लघु का (छंदशास्त्र या शब्दशास्त्र में क्या नाम धरते हैं (क्या कहते हैं)—ल।

७—कहा नृत्य में विचारै = नृत्य में क्या विचारे—लय।

८—कहा फाँदो व्याध फंदु है = व्याध (बहेलिये) ने फंदे (जाल) में क्या फाँदा (फँसाया) है—लवा।

९—कहा दै पचावै फूटे भाजन में भात = फूटे पात्र में क्या देकर (लगाकर) भात पकाया जाय—लयवा (लइवा = लेवा)।

१०—क्यों बोलावै कुस भ्रातु = कुश अपने (छोटे) भाई को कैसे बुलाते हैं—लवाय (लव आय = ऐ लव, आ)।

११—कहा वृषबोलु मंदु है = बैल की मंदी बोली क्या है—वा (वाँ)।

१२—नृपै कौन भावै = पृथ्वी पर कौन भाता (अच्छा लगना है) अथवा राजा को कौन अच्छा लगता है—वाल (बाल)।

१३—खग खेलें को नठावै = पक्षी के खेल को कौन नष्ट कर देता है—वाय (बाज)।

१४—प्रिया फेरै कहि कहा = प्रिया को क्या कहकर (अपनी ओर) फेरना (लौटाना) चाहिए—वालय (बालइ = बाले = ऐ बाले)।

१५—कहा रोगिन को बंदु है = रोगियों के लिए क्या बंद अर्थात् वर्जित है—वायल (वायुल या वातल = वायुकारक पदार्थ)।

यहाँ 'तुकारै' को न समझने के कारण 'तुपारै' कर दिया गया है। फिर 'जालै' को 'जारै' किया गया। 'अगुली' को अपने ढंग से बैठाने के लिए 'अँगरी' करना पड़ा। ये दोनों रूप पहले-पहल वेलवेडियर प्रेस के संस्करण में ही मिले। इन छंद के जो पाठ और अर्थ रखे-किए गए हैं उनका संकेत 'सर० वाले हस्तलेख से ही कुछ मिला है।

प्राचीन हस्तलेखों की लिपि के संबंध में कुछ विशेष श्रम करने की आवश्यकता है। ऐसा कर देने से आगे के लिए मार्ग सरल हो जाएगा। प्राचीन हस्तलेखों में 'ख' के लिए 'प' ही मिलता है। कुछ हस्तलेखों में 'ष' के दो प्रकार के उच्चारणों में से जहाँ मूल शब्द में 'ष' ही अर्थात् मूर्धन्य है वहाँ

'दन्त्य उच्चारण' के लिए 'स' लिखा है, 'ष' नहीं। 'त्रिसेस' लिखा है, 'त्रिसेष' नहीं। ऐसा न कर मैंने 'त्रिसेष' रूप ही ग्रहण किया है। अन्यत्र जहाँ मूल में 'ख' है 'ष' न लिखकर 'ख' ही रखा है। 'खग' को 'षग' न लिखकर 'खग' ही लिखा है। यदि किसी 'ष' का उच्चारण 'ख' करना है तो उसके नीचे बिंदी लगा दी है—ष़। 'व' 'ब' की चर्चा पहले की जा चुकी है। पर हस्तलेखों और परंपरा-प्रवाह से परिचित न होने के कारण प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर संपादन करने पर भी बहुत से शब्दों की 'वर्तनी' (स्पेलिंग) अब भी ठीक नहीं हुई है। निछावर करने के अर्थ में 'वारना' है अर्थात् 'व' है 'ब' नहीं। ऐसे ही बदनामी के अर्थ में 'चवाव' है, दोनों 'व' हैं। 'कवित्त' में 'व' ही है, 'ब' नहीं। मैंने इसका विशेष ध्यान रखा है, पर मेरी आँखों के दौर्बल्य और अक्षरशोधक की असावधानी से कहीं व्यतिक्रम हो तो मेरा दुर्भाग्य।

द्वित्व के संबंध में विलक्षण स्थिति है। महाप्राण वर्ण का द्वित्व ज्यों का त्यों है—'झलां जश् झशि' सूत्र से पूर्ववर्ण को अल्पप्राणत्व नहीं प्राप्त हुआ है। 'दु:ख' को हिंदी के प्राचीन हस्तलेख 'दुख्ख' ही लिखते हैं—'दुष्ष' रूप में—'दुक्ख' नहीं। ऐसा ही अन्यत्र भी समझें। ऐसे प्रसंग में कभी कभी एक ही महाप्राण सस्वर लिख देते थे—जैसे 'अछ' इसका तात्पर्य है 'अछ्छ'। चवर्गीय 'छ' का द्वित्व ठीक से न लिख पाने के कारण एक तो यह स्थिति होती है, दूसरे पूर्वग अक्षर पर का 'उदात्त' चिह्न हट जाने से भी ऐसा होता है। मेरी धारणा है कि जहाँ द्वित्व होता था वहाँ लिखने की एक विधि यह भी थी कि पूर्वगामी वर्ण पर उदात्त का चिह्न (खड़ी पाई) लगाते थे। 'अछ्छ' को लिखते थे 'अंछ'। कहीं कहीं यह उदात्त-चिह्न अनुस्वार में भी बदल जाता था। संस्कृत 'खड्ग' से 'खग्ग' हुआ। इसमें अनुस्वार देकर इसे 'खंग' भी लिखते हैं। मुझे लगता है कि 'खंग' में अनुस्वार का बिंदु उदात्त के चिह्न का स्थानापन्न है। रासो में वर्णों के जो द्वित्वरूप हैं और जिनके कारण कभी कभी अर्थ करने में भी कठिनाई पड़ती है वे यदि उदात्त-चिह्न से सहज कर लिए जायँ तो आधी कठिनाई दूर हो जाय। 'अमृत' को हिंदीवाले 'अम्रित' बोलते हैं। यहाँ भी 'अ' पर बल है, उदात्त का चिह्न है। इस चिह्न को 'म्' के अनुनासिक होने के कारण यदि बिंदी या अनुस्वार-चिह्न से व्यक्त करें तो भी कोई भेद नहीं होता, यह दूसरी बात है। 'प्रसन्न', 'अन्न' प्राचीन हस्तलेखों में बहुधा 'प्रसंन' 'अंन' लिखे हैं। चाहे 'स' पर की बिंदी को अनुस्वार समझिए चाहे उदात्त-चिह्न का घिसा रूप। रासो के जो हस्तलेख 'सभा' में सुरक्षित हैं उनमें कई स्थानों पर मुझे अनुस्वार-चिह्न से भिन्न खड़ी पाई के रूप में उदात्त का चिह्न मिला है। मानस

के भी किसी किसी हस्तलेख में कदाचित् यह रूप पाया जाता है। मैंने उदात्त-चिह्न का व्यवहार नहीं किया है, पर द्वित्व की लेखनप्रणाली, जहाँ तक हो सका है, त्यों की त्यों रखी है।

पुराने हस्तलेखों में सानुनासिकता बहुत मिलती है। 'मान' 'मान' या 'माँन' लिखा मिलता है। प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर संपादन करनेवाले कुछ सज्जन तो 'माँन' या 'मान' रूप को ही अपनाते हैं, कुछ छोड़ देते हैं। इस संबंध में वक्तव्य यह है कि हिंदी में अनुनासिक वर्णों का उच्चारण संस्कृत से भिन्न प्रकार का होता है। अनुनासिक वर्णों का हम हिंदीवाले जैसा उच्चारण करते हैं उसके फलस्वरूप आगे पीछे स्वर को वह रंजित कर देता है। 'मान' में 'म्+आ+न्+अ' है, पर हिंदी में अंत में आनेवाले अकारांत वर्ण का अकार विशेष स्थिति में हलका उच्चरित होता है। 'मान' का हिंदी उच्चारण होता है 'मान्'। 'न्' के कारण 'मा' का 'आ' रंजित हो जाता है और वह 'मान्' हो जाता है। यहाँ 'मान्' में 'न्' का प्रभाव इसलिए मानना पड़ता है कि 'दान' को भी 'दाँन' या 'दान' रूप में लिखते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि 'मा' का 'आ' कभी 'म्' के कारण रंजित नहीं होता। जब वह स्वर को रंजित करता है तो अकेला रहता है—'माँख', छिमाँ।

खड़ी बोली में 'माँ' माता के लिए इसी प्रकार रंजित होकर बना है। सप्तमी का 'में' या सर्वनाम 'मैं' में भी यही स्थिति है। इस प्रकार के रंजित रूप स्वीकृत नहीं किए गए हैं। पर 'में' 'मैं' में सानुनासिक स्वरों का प्रयोग किया गया है यद्यपि ये हस्तलेखों में कभी कभी बिना बिंदी के भी लिखे मिलते हैं। स्वर को सानुनासिक इसलिए कहता हूँ कि हिंदी में महापंडितों और महाजनों को यह भ्रांति हो गई है कि 'में' या 'मैं' में बिंदी इसलिए नहीं लगानी चाहिए कि इनमें 'म्' अनुनासिक वर्ण है, उसमें कैसी बिंदी। अँगरेजी में 'मई' महीने को 'मे' कहते हैं उसके उच्चारण और हिंदी के 'में' के उच्चारण में भेद है। वास्तविकता यह है कि एक स्थान पर 'ए' स्वर रंजित नहीं है और अन्यत्र रंजित है। संस्कृत में लक्ष्मी के पर्यायवाची 'मा' का उच्चारण माता के लिए प्रयुक्त 'माँ' से भिन्न प्रकार से करना पड़ता है। वहाँ 'आ' रंजित नहीं है।

प्राचीन हस्तलेखों में 'ड' और 'ढ' के नीचे बिंदी देने की पद्धति नहीं है। यथास्थान उनके उच्चारण में भेद है। यदि 'ड' या 'ढ' शब्द के आरंभ में आते हैं तो उनका उच्चारण जिस प्रकार का होता है उसी प्रकार का तब नहीं होता जब वे दो स्वरों के बीच आते हैं। 'डर, ढक्यो' में और 'उमड़, पढ़्यो' में उच्चारणभेद है। इसी को हिंदीवाले बिंदी देकर पृथक् करते हैं।

पर बिंदीवाला उच्चारण दो स्वरों के बीच ही होता है। वैदिक, ळ ळ्ह या मराठी के ऐसे ही अक्षरों के उच्चारण से और परिस्थिति से हिंदी के 'ड़ ढ़' का साम्य अवश्य है। यदि कोई स्वर रंजित हो जाए, सानुनासिक हो जाए तो उनका उच्चारण पश्चिम में नहीं बदलता, पूरब में बदल जाता है। 'मेंढ़क' पश्चिम में बोलते हैं पूरब में 'मेंढक'। 'छाँड्यो' और 'छाड्यो' रूप ही स्वीकार कर पछाहीं प्रवृत्ति को ठीक माना गया है। यद्यपि भिखारीदास पूरब के थे और पूरबीपन उनकी वर्तनी में क्या, व्याकरण तक में स्पष्ट मिलता है, पर ब्रजी की प्रवृत्ति के अनुरूप ही ये रूप रखे गए हैं।

मेरे परम मित्र कहते हैं कि ब्रजवालों को ही ब्रजी आ सकती है और मेरे अग्रज वैयाकरण भी ब्रजयात्रा की दुहाई देते हैं। आचार्य शुक्लजी ने ब्रजी की साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुरूप 'घोड़ो' रूप माना है। भाषाविज्ञान के पंडितों ने ब्रजबोली का विचार करते हुए आचार्य शुक्लजी की ही भाँति 'घोड़ो' रूप दिया। ब्रज में 'घोड़ा' बोलते हैं, ब्रजी के साहित्य में 'घोरो' लिखा और माना गया। हिंदी कवियों और आचार्यों के नगड़दादा केशवदासजी ने 'घोरौ' रूप ही स्वीकार किया है। वीरचरित्र में अनेकत्र इसके उदाहरण हैं—

(१) घोरौ जियै बरस बत्तीस।

(२) पाखर नाएँ घोरौ धीर।

(३) सो घोरौ करिकै हिय हेत।

अब बताइए प्राचीन ब्रजी के लिए किसको परम प्रमाण माना जाए—नगड़दादा को या परम मित्र को।

भिखारीदासजी ने ब्रजी के इस साहित्यिक रूप के ज्ञान के लिए ब्रजवास को आवश्यक नहीं माना। वे अवध में घर बैठे ही रूप गढ़ते रहे। फल यह हुआ कि 'हियरा' के 'हियरो' 'हीरो' ऐसे रूप भी उन्होंने धर दिए हैं, जब कि 'हियरा' आकारांत ही होता है, ओकारांत नहीं। 'घोड़ो' रूप माननेवाले आचार्य शुक्लजी ने भी 'हियरा' का आकारांत रूप ही माना। पर हरिऔधजी ने रस-कलस में 'हियरो' रूप रखा है। अवध के हरिऔध भी थे। वहीं से बैठे बैठे वैसा रूप मान लिया। इस ग्रंथावली में यथास्थान मुंशी भिखारीदास द्वारा स्वीकृत ओकारांत रूप दिए गए हैं। जब 'घोड़ो' के स्थान पर 'घोड़ा' रूप की दुहाई देनेवाले ब्रजवासी भी भिखारीदास के महाकाय काव्यनिर्णय में 'हियरो' रूप को ही मानते हैं तो मैंने तो केवल ब्रज की यात्रा ही की है, ब्रज में जमने

के नाम पर तो एक त्रिरात्र से अधिक वहाँ नहीं रहा। अब साहित्य के काम में जीवन के तीन पन बीत गए, चौथा पन आ पहुँचा।

जब तक अर्थ नहीं लगता तब तक ठीक पाठशोधन भी नहीं हो सकता। पाठशोध के लिए चित्रालंकार के उदाहरण ऐसे नीरस पद्यों का भी अर्थ लगाना पड़ा है। उसमें कहीं मतभेद भी हो सकता है, पर केवल अर्थ पर ही उसकी विधि अवलंबित नहीं है। वाणी-चित्र में तो उतनी कठिनाई नहीं है पर लेखनी-चित्र की जो पारंपरिक विधि है उसे बिना जाने ठीक चित्र भी नहीं बन सकते। उदाहरण के लिए २१वें उल्लास में 'बेन नटा सरसै' पाठ होना चाहिए। अक्षरशोधक ने 'बेन' को 'बैन' कर दिया। 'लाडन मान लसै' में 'लाडन' को 'लावन' कर दिया। चित्र में इनकी स्थिति देखकर ठीक-ठीक समझा जा सकता है।

शृंगारनिर्णय के २८२वें पद्य में प्रथम चरण यों है—

काहे कों कपोलनि कलित कै देखावती है
मकलिकापत्रन की अमल ह्योटि है।

इसमें 'मकलिका' को न समझकर 'भारतजीवन प्रेस' वाले संस्करण में 'कलिका हू' पाठ कर दिया गया है। 'मकलिका' रूप वस्तुतः 'मकरिका' से 'रलयोरभेदः' के कारण बना है। 'मकरिका' एक प्रकार की शृंगारी रचना होती थी जिसे स्त्रियाँ चंदन घिसकर कपोलों पर बनाया करती थीं। इसका अवशेष रामलीला और कृष्णलीला के स्वरूपों के सजाने में अब भी मिलता है।

कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो बड़े-बड़े कोशों में भी नहीं मिलते। 'अनावरी' शब्द का 'वस्त्र' अर्थ प्रसिद्ध कोशों में न मिलने पर भी मैंने वही माना। पीछे फैलन के कोश से पता चला कि रेशमी वस्त्र के लिए 'असावरी' शब्द चलता था। केशवदासजी ने भी रामचंद्रचंद्रिका में इसी अर्थ में इस शब्द का व्यवहार किया है—

असावरी मानिक कुंभ सोभैं असोकलग्ना वनदेवता सी।

इस 'अनावरी' को किसी किसी ने असावरी राग समझ लिया है। 'अनावरी' शब्द एक साथ तीन अर्थों में प्रयुक्त देखकर तो ठिठकना पड़ा, पर 'असावरी' को ज्यों ही 'असाँवरी' लिया त्यों ही तीनों अर्थ स्पष्ट हो गए—राग, रेशमी वस्त्र, असाँवली (गोरी)। भिखारीदास ने एक शब्द और प्रयुक्त किया है—यकंक, एकक एकंक, इकंक। तीन चार रूप इसके दिए हैं। इसका अर्थ 'निश्चय' है। पर किसी कोश में ऐसा अर्थ न होने के कारण इधर काव्यनिर्णय की टिप्पणी में किसी ने इसका अर्थ 'एकमात्र, केवल' करके काम

चलाया और उधर मानस के टीकाकार बडी कठिनाई में पडे। उन्होंने इस 'एक आँक' के लिए कई अटकल लगाए हैं—

एकहि आँक इहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं।

"निश्चय (निश्चयात्मिका बुद्धि द्वारा) यही है और (संकल्प-विकल्प वाले) मन में भी यही (संकल्प) है कि प्रातःकाल प्रभु के पास चलूँगा, प्रस्थान करूँगा।" यह अर्थ न करके अन्य अर्थों के लिए टीकाकारों को इसी से भटकना पडा है कि 'एकाक या एक आँक' के अवधीवाले अर्थ से वे परिचित नहीं, और कोश कुछ सहायता करते नहीं।

काव्यनिर्णय के पाँचवें उल्लास में शृगार के अपराग-वर्णन का यह दोहा है—

चदमुखिन के कुचन पर जिनको सदा बिहार।
अहह करै ताही करन चरवन फेरवदार॥

यहाँ 'चरवन फेरवदार' का पाठातर 'भारत' में 'चखन फैर बरदार' है और वेलवेडियर प्रेस वाली प्रति में 'चिरियन फैर बदार' रूप। कल्याणदासवाली प्रति में (पृष्ठ १०२) पूरा दोहा यों है—

'चद-मुखिँन के कुचॅन पै, जिनकौ सदाँ विहार।
अहह करे ताही करॅन, चखॅन फैर बरदार॥

अस्य तिलक

इहाँ करुनाँ रस कौ सिंगार-रस अग भयौ है, ताते रसवत अलकार है। वि०—प्रतापगढ की हस्तलिखित प्रति में इस दोहे का शीर्षक—"करुन रसवत् अलकार बरनन" लिखा है और प्रतापगढ न० ३ की प्रति में "शृगारवत्" लिखा है।"

स्थिति यह है कि किसी वीर के रणक्षेत्र पडे में हुए हाथों को शृगाली खा रही है। इसे देखकर कोई कहता है कि जो हाथ चद्रमुखियों के स्तनों पर सदा विहार करते थे, हा! उन्हीं हाथों को शृगाली (फेरव की दार) चर्वण कर रही—चबा रही है। यहाँ 'करुण रस' तो प्रधान रस है पर उसके अगरूप में शृगार रस आया है क्योंकि करुणा के प्रसंग में शृगार की स्थिति (चद्रमुखिन के कुचन पर जिनको सदा विहार) का स्मरण है। जब कोई रस किसी भाव आदि का अग होता है तो उसे 'रसवत् अलंकार' कहते हैं। जो रस अग होता है वह अलकार्य रूप में न आकर वहाँ 'अलकार' अर्थात् साधन रूप में आता है।

काव्यनिर्णय में ही नहीं रससारांश और शृगारनिर्णय में भी दास ने बहुत सी ऐसी बातें रखी हैं जिनसे उनके साहित्यशास्त्र के अनुशीलन-मनन

के परिपूर्ण अभ्यास का पता चलता है। यह समझना भ्रांति है कि इन्होंने श्रीपति के श्रीपतिसरोज या काव्यसरोज से बहुत सी सामग्री ज्यों की त्यों उठाकर रख ली है। वास्तविकता यह है कि काव्यनिर्णय काव्यप्रकाश और चंद्रालोक (कुवलयानंद) के आधार पर प्रस्तुत हुआ है। जिस प्रकार दास ने इन ग्रंथों के सहारे अपना यह ग्रंथ प्रस्तुत किया उसी प्रकार हिंदी में बहुत से ग्रंथ प्रस्तुत हुए जिनमें श्रीपति का उक्त ग्रंथ भी है। काव्यप्रकाश आदि से लक्षणों का उल्था ही नहीं उदाहरणों का उल्था भी अपने अपने ग्रंथों में इन्होंने प्रभूत परिमाण में दिया है। काव्यनिर्णय के किस उल्लास का कौन सा उदाहरण या छंद कहाँ से उल्था करके दिया गया है और आधार-पद्य क्या है इसे भी लाभप्रद समझकर परिशिष्ट में 'आधार-पद्य' के अन्तर्गत उन्हें प्रदर्शित किया गया है। काव्यनिर्णय में इनके अतिरिक्त अन्य छंदों के भी संस्कृत-मूल की संभावना है। इनके अन्य ग्रंथों के आधार पद्यों की सूची इसलिए नहीं दी गई कि उनकी संख्या नाममात्र को है।

इस प्रकार संपादन का कार्य करने में जो शैली ग्रहण की गई उसमें अधिक श्रम ही अपेक्षित नहीं है, विशेष समय भी अपेक्षित है। इसलिए जो समझते हैं कि प्राचीन ग्रंथों के संपादन में क्या रखा है उन्हें कभी संपादन का कार्य करके भुक्तभोगी बन लेना चाहिए।

× × × ×

ग्रंथ को शुद्ध रूप में प्रकाशित करने का भरपूर प्रयास किया गया है। पर हिंदी के मुद्रण-यंत्र और अक्षरशोधक किसी में वह रुचि ही अभी नहीं जगी है जो ऐसी कृतियों के मुद्रण-शोधन के लिए अनिवार्य है। इस ग्रंथ की पूर्णाहुति में कवि और कविता का संकलन आकलन करने का श्रम कई सज्जनों ने किया जिनमें से कुछ प्रमुख व्यक्तियों के नामों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। काव्यनिर्णय के संपादन में यों तो सहायता करनेवाले कई हैं पर दो व्यक्तियों का उल्लेख विशेष रूप से करना है। एक हैं मेरे पुराने मित्र श्रीश्रीदेवाचार्यजी और दूसरे हैं आकर-ग्रंथमाला के सहायक श्री[illegible] पांडेय, जिन्होंने काव्यनिर्णय का 'अभिधान' प्रस्तुत करने में मनोयोगपूर्वक सहायता की। पहलेवाले आचार्यजी धन्यवाद के पात्र हैं और दूसरे शिष्य होने से आशीर्वाद के भाजन।

इस ग्रंथावली के संपादन में जिन महानुभावों के ग्रंथों और सामग्री का थोड़ा या अधिक किसी प्रकार का उपयोग-प्रयोग किया गया उन सबके प्रति

मैं नतमस्तक करबद्ध कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उनकी सहायता का द्वार उन्मुक्त रहेगा। आशा है इस ग्रंथावली से हिंदी के सहृदय विदुषों का मनस्तोष होगा—

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, वाराणसी-१
रथयात्रा, २०१४ वि०

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

अनुक्रमणिका

काव्यनिर्णय

७

संकेत

काव्यनिर्णय

सर०—सरस्वती-भंडार (रामनगर काशिराज) का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८७१ ।

भारत—भारतजीवन प्रेस (बनारस) सं० १९५६ में मुद्रित प्रति ।

वेंक०—वेंकटेश्वर प्रेस (मुंबई) में सं० १९५५ में मुद्रित प्रति ।

बेल०—बेलवेडियर प्रेस (प्रयाग) में सं० १९८२ में मुद्रित प्रति ।

वही—पूर्वगामी संकेत ।

चिह्न

+—हस्तलेख में संशोधित पाठ ।

÷—हस्तलेख का मूल पाठ ।

×—अभावसूचक ।

.—अक्षरलोप-सूचक ।

०—शब्दलोपन-सूचक ।

[ ]—प्रक्षिप्त ।

‿—लघु-उच्चारण-सूचक ।

ष—ख ।

भिखारीदास

(ग्रंथावली)

द्वितीय खंड

काव्यनिर्णय

काव्यनिर्णय

१

(छप्पय)

एकरदन, द्वैमातु, त्रिचख, चौबाहु पंचकर।
पटआनन बरबंधु, सेव्य सप्तार्चिभालधर।
अष्टसिद्धिनवनिद्धिदानि, दसदिसि जसबिस्तर।
रुद्र इग्यारह सुखद, द्वादसादित्यओजवर।
जो त्रिसदवृंदबंदितचरन, चौदहबिद्यनि आदिगुर।
तेहि *दास* पचदसहूँ तिथिन, धरिय पोड़सो ध्यान उर ॥१॥

(दोहा)

जगतबिदित उदयाद्रि सो, अरवर देस अनूप।
रवि लौं पृथ्वीपति उदित, तहाँ सोमकुलभूप ॥२॥
सोदर तिनके ज्ञाननिधि, हिंदूपति सुभ नाम।
जिनकी सेवा सों लह्यो, *दास* सकल सुखधाम ॥३॥
अठारह सै तीनि हो, संवत आस्विन मास।
ग्रंथ *काव्यनिर्नय* रच्यो, बिजैदसैं दिन *दास* ॥४॥
बूझि सु *चंद्रालोक* अरु, *काव्यप्रकास*हु ग्रंथ।
समुझि सुरुचि भाषा कियो, लै औरौ कविपंथ ॥५॥

---

[१] बधु–बन्य (सर०)। निद्धि०–निधि प्रदानि (वही)। सुखद–सुबद (वेल०)। बिद्यनि–विघ्ननि (सर०)। षोडसो–षोड़सी (सर०, वेंक०)।

[२] सैं–तें (वेंक०)।

[४] हो–को (वेल०)। दसैं–दसमि (वेंक०, वेल०)।

[५] हु–सु (सर०, वेंक०)।

वही बात सिगरी कहैं, उलथो होत यकक।
सब निज उक्ति बनायहूँ, रहै स्वकल्पित संक ॥६॥
यातैं दुहूँ मिश्रित सज्यो, छमिहैं कवि अपराधु।
बन्यो अनबन्यो समुझिकै, सोधि लेहिंगे साधु ॥७॥

(कवित्त)

मो सम जु ह्वैहैं ते विसेष सुख पैहैं, पुनि
हिंदूपति साहिब के नीके मन मानो है।
एते पर तोष रसराज रसलीन,
वासुदेव से प्रबीन पूरे कविन बखानो है।
तातैं यह उद्यम अकारथ न जैहै, सब
भाँति ठहरैहै यह हौंहूँ अनुमानो है।
आगे के सुकबि रीझिहैं तौ कबिताई न तौ,
राधिकाकन्हाई-सुमिरन को बहानो है ॥८॥

(दोहा)

ग्रथ काव्यनिर्नयहि जो समुझि करहिंगे कंठ।
सदा बसैगी भारती, ता रसना-उपकंठ ॥९॥

काव्यप्रयोजन—(सवैया)

एकै लहैं तपपुंजनि के फल ज्यौं तुलसी अरु सूर गोसाँई।
एकै लहैं बहु संपति केसव भूषन ज्यौं बरवीर बड़ाई।
एकनि कौं जस ही सौं प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाईं।
दास कवित्तनि की चरचा बुधिवतनि कौं सुखदै सब ठाईं ॥१०॥

(सोरठा)

प्रभु ज्यौं सिखवै वेद, मित्र मित्र ज्यौं सतकथा।
काव्यरसनि को भेद, सुख-सिखदानि तियानि ज्यौं ॥११॥

---

[६] वही—वोही (सर०)। सब०—निज उक्तिहि करि बरनिये (भारत, वेल०)।
स्व-सु (भारत, वेंक०, वेल०)।

[८] जु—जे (भारत, वेल०)। से—सौं (वेंक०)। अनुमानो—यह जानो
(सर०)। [१०] के—को (सर०)।

[११] मित्र मित्र—मित्र कहै (भारत)। तियानि—तिया सु (वेल०)।

(सवैया)

सक्ति कबित्त बनाइबे की जिहि जन्मनछत्र मैं दीनी बिधातैं ।
काव्य की रीति सिख्यो सुकवीन सौं देखी सुनी बहुलोक की बातैं ।
दासजू जामैं एकत्र ये तीन्यौ बनै कविता मनरोचक तातैं ।
एक बिना न चलै रथ जैसैं धुरधर सूत कि चक्र निपातैं ॥१२॥

(सोरठा)

रस कवित्त को अंग, भूषन हैं भूषन सकल ।
गुन सरूप औ' रंग, दूषन करैं कुरूपता ॥१३॥

भाषा-लक्षण— (दोहा)

भाषा बृजभाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोइ ।
मिलै संसकृत पारस्यौ, पै अति प्रगट जु होइ ॥१४॥
बृज मागधी मिलै अमर, नाग जमन भाषानि ।
सहज पारसीहूँ मिलै, षटबिधि कबित बखानि ॥१५॥

(कवित्त)

सूर केसौ मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म
चिंतामनि मतिराम भूषन सु ज्ञानिये ।
लीलाधर सेनापति निपट नेवाज निधि
नीलकंठ मिश्र सुखदेव देव मानिये ।
आलम रहीम रसखानि सुंदरादिक
अनेकन सुमति भए कहाँ लौं बखानिये ।
बृजभाषा हेत बृजवास ही न अनुमानो
ऐसे ऐसे कविन की बानी हूँ सौं जानिये ॥१६॥

---

[१२] सिख्यो-सिखी (भारत, वेल०); सिखै (वेंक०) । सौं-तें (वेंक०) । देखी०—देखै सुनै (वेंक०) । तीन्यौ—तीनि (भारत, वेल०) ।

[१३] कवित्त—कबिता (भारत, वेंक०, वेल०) । सरूप-स्वरूप (सर०) । औ'—अरु (वेंक०) ।

[१४] भाषा०—ब्रजभाषा भाषा (वेंक०) । सुमति—सुकवि (भारत, वेल०) । प्रगट०—प्रगटी (वेंक०) । [१५] 'सर०' में नहीं है ।

[१६] सु—से (भारत, वेल०) । ज्ञानिये—दानिये (सर०) । सुंदरादिक—औ मुबारकादि बिबिध (भारत) । रसलीन और सुदर (वेल०) । बृजभाषा०—भाषाहेतु ब्रज लोकरीतिहूँ सो देखी सुनी बहु भाँति (भारत) । सौं—से (वेल०) ।

(दोहा)

तुलसी गंग दोऊ भए, सुकविन के सरदार।
इनकी काव्यनि मैं मिली, भाषा विविधि प्रकार ॥१७॥

(सवैया)

जानै पदारथ भूषन मूल रसांग परांगनि मैं मति छाकी।
त्यौं धुनि अर्थनि वाक्यनि लै गुन सब्द अलंकृत सौं रति पाकी।
चित्र कवित्त करै तुक जानै न दोषनि पंथ कहूँ गति जाकी।
उत्तम ताको कवित्त बनै करै कीरति भारतियौ अति ताकी ॥१८॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमारश्रीबाबू-
हिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये मंगलाचरणवर्णन
नाम प्रथमोल्लासः ॥१॥

२

अथ पदार्थनिर्णयवर्णनं-(दोहा)

पद वाचक अरु लाच्छनिक, व्यंजक तीनि विधान।
वातै वाचकभेद को, पहिलैं करौं बखान ॥१॥
जाति जदृच्छा गुन क्रिया, नाम जु चारि प्रमान।
सबकी संज्ञा जाति गनि, वाचक कहैं सुजान ॥२॥
जाति नाम जदुनाथ अरु, कान्ह जदृच्छा धारि।
गुन तैं कहिये स्याम अरु, क्रिया नाम कंसारि ॥३॥
रूप रंग रस गंध गनि, और जु निस्चल धर्म।
इन सबकौं गुन कहत हैं, गुनि राखौ यह मर्म ॥४॥

---

[१७] दोऊ-दुओ (भारत, वेल०)
[१८] त्यौं-त्यो (वेल०)। भारतियौ-भारती यौं (वेंक०, वेल०)।
[३] अरु-गनि (भारत, वेंक०)।
[४] और०-औरहु (भारत, वेल०)।

ऐसे सब्दन सों जहाँ प्रगट होइ संकेत।
तेहि वाच्यार्थ बखानहीं, सज्जन सुमति सचेत ॥ ५ ॥
अनेकार्थहू सब्द मैं, एक अर्थ की भक्ति।
तिहि वाच्यारथ कौं कहैं, सज्जन अभिधा सक्ति ॥ ६ ॥
कहूँ होत संजोग तेँ, एकै अर्थ प्रमान।
संख-चक्रजुत हरि कहैं बिस्न्वै होत न आन ॥ ७ ॥
असंजोग तेँ कहुँ कहैं, एक अर्थ कबिराइ।
कहैं धनंजय धूम बिनु, पावक जान्यो जाइ ॥ ८ ॥
बहुत अर्थ कौं एक कहुँ, साहचर्ज तेँ जानि।
बेनीमाधव के कहैं, तीरथ बेनी मानि ॥ ९ ॥
कहुँ बिरोध तेँ होत है, एक अर्थ को साज।
चदै जानि परै कहैं राहु ग्रस्यो द्विजराज ॥ १० ॥
अर्थप्रकरन तेँ कहूँ, एक अर्थ पहिचानि।
वृच्छ जानिये दल झरैं, दल साजैं नृप जानि ॥ ११ ॥
बाचक तेँ कहुँ पाइये, एकै अर्थ निपाट।
सरसुति क्यों कहिये कहैं बानी बैठो हाट ॥ १२ ॥
आन सब्द ढिग तेँ कहूँ, पैये एकै अर्थ।
सिखी पच्छ तेँ जानिये, केकी परै समर्थ ॥ १३ ॥
दास कहूँ सामर्थ्य तेँ, एक अर्थ ठहरात।
व्याल वृच्छ तोरयो कहैं, कुंजर जान्यो जात ॥ १४ ॥
कहूँ उचित तेँ पाइये, एकै अर्थ सुरीति।
तरु पर द्विज बैठो कहैं, होति बिहंग-प्रतीति ॥ १५ ॥

---

[५] जहाँ०—फुरै संकेतित जो अर्थ (वेल०)। तेहि०—ताको वाच्यारथ कहैं (वही)। सचेत—समर्थ (वही)।

[६] भक्ति—नक्ति (सर०), व्यक्ति (वेल०)।

[७] बिस्न्वै०—होत बिस्नु को ज्ञान (वेल०)। [८] कहैं—कहै (वेंक०)।

[१२] बाचक०—कहूँ लिंग तेँ पाइये एक अर्थ को ठाट (वेल०)। पाइये—जानिये (वेंक०)। सरसुति—सुरसति (सर०); सरस्वति (वेंक०); सरसइ (वेल०)।

[१५] एकै०—एक अर्थ की रीति (भारत, वेल०)। बैठो—बैठे (सर०)। होति—होत (भारत, वेंक०, वेल०)।

कहूँ देस-बल कहत हैं एक अर्थ कवि धीर।
मरु में जीवन दूरि है कहैं जानियत नीर ॥ १६ ॥
कहूँ काल तैं होत है, एक अर्थ की बात।
कुवलै निसि फूल्यो कहैं कुमुद, द्यौस जलजात ॥ १७ ॥
कहूँ स्वरादिक फेर तैं, एकै अर्थ-प्रसंग।
बाजी भली सु बाँसुरी, बाजी भलो तुरंग ॥ १८ ॥
कहूँ अभिनयादिकनि तैं, एकै अर्थ प्रकार।
इती देखियतु देहरी, इते बड़े हैं बार ॥ १९ ॥
जामैं अभिधा सक्ति तजि, अर्थ न दूजो कोइ।
यही काव्य कीन्हैं बनैं, ना तौ मिश्रित होइ ॥ २० ॥

अभिधा शक्ति–(दोहा)

मोरपच्छ को मुकुट सिर, उर तुलसीदल-माल।
जमुना-तीर कदंब-ढिग, मैं देख्यो नँदलाल ॥ २१ ॥

इति अभिधा शक्ति

अथ लक्षणाशक्तिभेद

मुख्य अर्थ के बाध सौं, सब्द लाच्छनिक होत।
रूढ़ि औ' प्रयोजनवती, द्वै लच्छना उदोत ॥ २२ ॥

रूढ़िलक्षणा-लक्षण

मुख्य अर्थ को बाध, पै जग में वचन प्रसिद्ध।
रूढ़ि लच्छना कहत हैं, ताको सुमति-समृद्ध ॥ २३ ॥

---

[१८] सु–न (वेल०)।
[१९] प्रकार–विचार (भारत, वेंक०)। इते–इतै (सर०)।
[२०] तजि–करि (वेल०)। यही–यहौ (वही)। ना०–न तौ मिश्रितै (सर०)।
[२१] देख्यो–देख्यौ (वेल०)।
[२२] के–को (सर०)। सौं।–तैं (भारत, वेल०)। रूढ़ि–रूढ़ी प्रयोजनोवती (वेंक०)।
[२३] को–के (वेल०)। प्रसिद्ध–प्रसिधि (सर०)। समृद्ध–समृद्धि (वही)।

यथा

फली सकल मनकामना, लूट्यो अगनित चैन।
आजु अचै हरिरूप सखि, भए प्रफुल्लित नैन ॥ २४ ॥

(कबित्त)

अँखियाँ हमारी दईमारी सुधि-बुधि-हारी,
मोहू तेँ जु न्यारी दास रहैँ सब काल मेँ।
कौन गहै ज्ञानै, काहि सौंपति सयानै कौन
लोक ओक जानै ये नहीँ हैँ निज हाल मेँ।
प्रेम पगि रहीँ महा मोह मेँ उमगि रहीँ,
ठीक ठगि रहीँ लगि रहीँ बनमाल मेँ।
लाज कोँ अचै कै कुलधरम पचै कै, बिथा-बृंदनि
सचै कै भईँ मगन गुपाल मेँ ॥ २५ ॥

अस्य तिलक

मनकामना वृच्छ नहीँ जो फलै। फलिबो सब्द वृच्छपर है। लच्छना सक्ति तेँ मनकामनाहूँ को फलिबो लीजियतु है। ऐसे ही ऐसे सब्दनि को या दोहा औ' कबित्त मेँ अधिकार है, सो जानि लीबो। २५ अ ॥

अथ प्रयोजनवती-लच्छणावर्णनं–(दोहा)

प्रयोजनवती लच्छना, द्वै बिधि तासु प्रमान।
एक सुद्ध गौनी दुतिय, भाषत सुकबि सुजान ॥ २६ ॥

अथ शुद्धलच्छणा

उपादान इक सुद्ध मेँ, दूजी लच्छन ठान।
तीजी सारोपा कहैँ, चौथी साध्यवसान ॥ २७ ॥

---

[२५] जु०–नियारी (वेल०)। बृंदनि–बंधन (वही)।

[२५ अ] 'वेल०' मैं नहीँ है। नहीँ–नहीँ है (भारत, वेंक०)। ऐसे ही–ऐसे (सर०)।

[२६] प्रयोजनवती०–लच्छन प्रयोजनवती (सर० ÷); लच्छन प्रयोजनवती सो (वही +); लच्छनउ प्रयोजनवती (भारत) ; प्रयोजनवती जु लच्छना (वेल०)। प्रमान–बखान (भारत)।

[२७] सुद्ध मैं–जानिये (वेल०)। लच्छन–लच्छित (वही)।

उपादान-लक्षणावर्णनं—(दोहा)

उपादान सो लच्छना, परगुन लीन्हें होइ।
कुंत चलत सब जग कहै, नर बिनु चलै न सोइ ॥ २८ ॥

यथा वा

जमुना जल कों जात हीं, डगरी गगरी-जाल।
बजी बाँसुरी कान्ह की, गिरीं सकल तिहि काल ॥ २९ ॥
खेलत बृज होरी सबैं, बाजे बजैं रसाल।
पिचकारी चलतीं घनी, जहँ तहँ उड़त गुलाल ॥ ३० ॥

अस्य तिलक

गगरी आपु सों नहीं जाति है, कोऊ प्रानी वाकों लय जातु है। ऐसे ही मुख्यार्थबाध तें उपादान लच्छना होति है, सो दूनों दोहा के प्रतिवाक्य में उदाहरन है। ३० अ ॥

अथ लच्छण-लक्षणावर्णनं—(दोहा)

निज लच्छन औरहि दिये, लच्छ-लच्छना-जोग।
गंगातटबासिन्ह कहैं, गंगाबासी लोग ॥ ३१ ॥

यथा वा

सुंदरि दिया बुझाइके, सोवति सौध मझार।
सुनत बाँसुरी कान्ह की, कढ़ी तोरिकैं द्वार ॥३२॥

अस्य तिलक

तोरिबो कँवार को चाहिये, द्वार कों कह्यो। बाँसुरी की धुनि सुन्यो, सो बाँसुरी कों कह्यो। यातें लच्छन लच्छना कहिये। ३२ अ ॥

---

[२८] सोइ—कोइ (सर०)।
[३० अ] वेंक०' में नहीं है। लय-लए (सर०); लिये (भारत, वेंक०)।
　　होति है—है (सर०)।
[३१] लच्छ—लच्छि (सर०)। बासिन्ह—बासी (भारत)।
[३२ अ] चाहिये—संभवतु है (भारत, वेंक०)।

अथ सारोपा-लक्षणावर्णनं-(दोहा)

औरै थापिये और कौं, क्योँहूँ समता पाइ।
सारोपित सो लच्छना, कहैँ सकल कविराइ ॥३३॥

यथा

मोहन मो दृग पूतरी वै छवि सिगरी प्रान।
सुधा चितौनि सुहावनी, मीचु बाँसुरी-तान ॥३४॥

अस्य तिलक

मोहन कौँ पूतरी थाप्यो, छवि कौँ प्रान थप्यो, तातेँ सारोपा लच्छना भई। ३४ अ ॥

अथ साध्यवसाना-लच्छणावर्णनं-(दोहा)

जाकी समता कहन कौं वहै मुख्य करि देइ।
साध्यवसान सु लच्छना, विषय नाम नहिँ लेइ ॥३५॥

यथा-(दोहा)

वैरिनि कहा बिछावती फिरि फिरि सेज कृसान।
सुन्यो न मेरे प्रान-धन चहत आज कहुँ जान ॥३६॥

अस्य तिलक

वैरिनि सखी कौँ कह्यो, कृसान फूल कौँ कह्यो, यातेँ साध्यवसान कहिये। ३६ अ ॥

अथ गौणी लच्छणा को भेद वर्णनं-(दोहा)

गुन लखि गौनी लच्छना, द्वै ही तासु प्रमान।
सारोपा प्रथमी गनो, दूजी साध्यवसान ॥३७॥

सारोपा गौणी, यथा

सगुनारोप सु लच्छना, गुन लखि करि आरोप।
जैसे सब कोऊ कहै, वृपभै गवई गोप ॥३८॥
सूर सेर करि मानिये, कायर स्यार विसेपि।
विद्यावान त्रिनयन है, कूर अंध करि लेखि ॥३९॥

---

[३३] सारोपित-सारोपा-(भारत, वेङ्क०)। वै-वा (वही)।
[३४ अ] थप्यो-थाप्यो (भारत, वेंक०)।
[३७] ही-विधि (वेल०)। प्रथमी-प्रथमै (भारत, वेल०); प्रथमा (वेंक०)।

गौणी साध्यवसान, यथा

गौनी साध्यवसान सो, केवल हौ उपमान।
कहा वृषभ सौं कहत हौ, वातें है मतिमान ॥४०॥

इति लक्षणा-शक्तिनिर्णय

अथ व्यंजना-शक्तिनिर्णय-वर्णनं–(सवैया)

वाचक लक्षक भाजन रूप हैं, व्यंजक कौं जल मानत ज्ञानी।
जानि परै न जिन्हैं तिन्ह के समुझाइवे कौं यह दास बखानी।
ये दोउ होत सव्यंगि अव्यंगि औ' व्यंगि इन्हैं विनु ल्यावै न वानी।
भाजन ल्याइय नीरविहीन न आइ सकै विनु भाजन पानी ॥४१॥

(दोहा)

व्यंजक व्यंजनजुक्त पद व्यंगि तासु जो अर्थ।
ताहि बुझावे की सकति है व्यंजना समर्थ ॥४२॥
सूधो अर्थ जु वचन को तिहि तजि और वैन।
समुझि परे तें कहत हैं सक्ति व्यंजना ऐन ॥४३॥

अथ अभिधामूलक-व्यंग्य-वर्णनं

सब्द अनेकारथनि वल, होइ दूसरो अर्थ।
अभिधामूलक व्यंगि तिहि, भाषत सुकवि समर्थ ॥४४॥

यथा

भयो अपत कै कोपजुत, कै बौरो इहि काल।
मालिनि आजु कहै न क्यों, वा रसाल की हाल ॥४५॥

लच्छनामूल व्यंग्य–(दोहा)

व्यंगि लच्छनामूल सो प्रयोजननि तें होइ।
होती रूढ़ि अव्यंगियै यह जानत सब कोइ ॥४६॥

---

[४१] औ'–यौं (भारत) ल्याइय–ल्याउ न (वही)।
[४२] व्यंजक०–व्यंजन व्यंजक (भारत)।
[४३] परे०–परै तेहि (भारत, वेङ्क०)। [४५] कै–को (भारत, वेङ्क०)।
[४६] 'वेङ्क०' में नहीं है। होती०–होति रूढ़ि अव्यंग है (भारत); होती रूढ़ि अव्यग्य है (वेङ्क०)।

गूढ़ अगूढ़ौ व्यंगि द्वै, होति लच्छनामूल।
छिपी गूढ़ प्रगटहि कहै, है अगूढ़ समतूल ॥४७॥

गूढ़ व्यंग्य, यथा–(सवैया)

आनन मैं मुसुकानि सुहावनि वंकुरता अँखियानि छई है।
वैन खुले मुकुले उरजात जकी थिथकी गति ठौनि ठई है।
दास प्रभा उछलै सव अंग सुरंग सुवासता फैलि गई है।
चंदमुखी तनु पाइ नवीनो भई तरुनाई अनंदमई है ॥४८॥

अस्य तिलक

याकौं पाइवे तैं तरुनाई कौं आनंद भयो है तौ और कोऊ पुरुष पावैगो ताकौं अति ही आनंद होइगो यह व्यंगि है। ४८ अ ॥

अगूढ़ व्यंग्य, यथा–(दोहा)

धन जोवन इन दुहुन की, सोहति रीति सुवेस।
मुग्ध नरनि मुग्धनि करै, ललित वुद्धि-उपदेस ॥४९॥

अस्य तिलक

धन पाए तैं मूरखहू वुधिवंत होइ जातु है, जोवन तैं नारी चतुरि होति है यह व्यंगि है। उपदेस सब्द लच्छना तैं सो वाच्यहू मैं प्रगट है। ४९ अ ॥

अथ अर्थ-व्यंजक-वर्णनं–(दोहा)

होत अर्थ-व्यंजकनि को, दस विधि सुभ्र विसेष।
पहिले वक्तिविसेष पुनि, है वोधव्य सु लेख ॥५०॥

---

[४७] इसके स्थान पर 'वेल०' में यह दोहा है—
कवि सहृदय जा कहँ लखैं, व्यग कहावत गूढ।
जाको सब कोई लखत, सो पुनि होइ अगूढ ॥
कहै–कहीं (सर० +, भारत) ; कहो (वेंक०); कहौं (वेल)।

[४८] वंकुरता०–वंकता नैनन्ह (वेल०)। थिथकी–तिय की (भारत)।

[४८ अ] और कोऊ-अब याकौं कोऊ (भारत) ; अब ई कोऊ और (वेंक०)।

[४९ अ] मूरखहू०–मूर्खहू वुद्धिवत है (भारत, वेंक०)। जोवन–और जुवा अवस्था पाए तैं (वही)। होति–है जाति (वही)। तैं सो–तैं और (भारत) ; सो मालूम होता है औ' (वेंक०)। मैं–तैं (भारत)।

[५०] वक्ति–व्यक्ति (वेल०)। अरु–पुनि (भारत, वेल०)।

काकुविसेषो वाक्य अरु, वाच्यविसेष गनाइ।
अनसंनिधि प्रस्ताव अरु देस काल नौ भाइ ॥५१॥

है चेष्टा विसेष पुनि, दसम भेद कविराइ।
इनके मिलै मिलै किये, भेद अनत लखाइ ॥५२॥

अथ वक्तृविशेष, यथा

अति भारी जलकुंभ लै, आई सदन उताल।
लखि स्रम-सलिल, उसास अलि, कहा बूझती हाल ॥५३॥

अस्य तिलक

इहाँ वक्ता नायका है, सो अपनी क्रिया छपावती है, सो व्यंगि तें जान्यो जातु है। ५३ अ॥

अथ बोधव्यविशेष, यथा—(दोहा)

चिंता जृंभ उनीदता विह्वलता अलसानि।
लह्यो अभागिनि हौं अली, तैं हूँ गहै सु जानि ॥ ५४ ॥

अस्य तिलक

इहाँ जासौं कहति है ताकी क्रिया व्यंजित होति है। ५४ अ॥

अथ काकु-विशेष-वर्णनं, यथा—(दोहा)

दृग लखिहैं मधु-चंद्रिका, सुनिहैं कलधुनि कान।
रहिहैं मेरे प्रान तन प्रीतम करौ पयान ॥ ५५ ॥

अस्य तिलक

इहाँ काकु तें बरजिबो व्यंजित होतु है। ५५ अ॥

अथ वाक्यविशेष-वर्णनं, यथा—(दोहा)

अब लौं ही मोही लगी लाल, तिहारी डीठि।
जात भई अब अनत कत, करत सामुहैं नीठि ॥ ५६ ॥

---

[५२] चेष्टा—चेष्टा सु निमेषहू (भारत, वेंक०, वेल०)।
[५४] जृंभ०—जृंभा नींद अरु व्याकुलता (वेल०)। लह्यो-लह्यौ (भारत, वेंक०, वेल०)। तैं हूँ—तौं हूँ (सर०), तहूँ (वेंक०)। गहै—गही (भारत, वेल०); गयो (वेंक०)।
[५५] करौ—करो (वेंक०)।

अस्य तिलक

इहाँ याकी वाक्य तैं यह व्यंजित होतु है की दूजी नायका कौं नायक लख्यो । ५६ अ ॥

अथ वाच्यविशेष-वर्णनं, यथा-(सवैया)

भौन अँध्यारहूँ चाहि अँध्यारो चँवेली के कुंज के पुंज बने हैं।
बोलत मोर करैं पिक सोर जहाँ तहाँ गुंजत भौंर घने हैं।
दास रच्यो अपने हीं विलास कौं मैनजू हाथनि सौं अपने हैं।
कूल कलिंदजा के सुखमूल लतानि के बृंद बितान तने हैं ॥५७॥

अस्य तिलक

इहाँ वाच्यार्थं सहेटजोग्य ठौर जानियो, विहार की इच्छा व्यंजित होति है । ५७ अ ॥

अथ अन्यसंनिधिविशेष-वर्णनं, यथा-(दोहा)

राजु करै गृह-काजु दिन, बीतत याही मॉंम ।
ईठि लहौं कल एक पल, नीठि निहारैं सॉंम ॥ ५८ ॥
इहि निसि धाइ सताइ लै, स्वेद-खेद तैं मोहि ।
काल्हि लालिहूँ के कियैं, सग न स्वाऊँ तोहि ॥ ५९ ॥

अस्य तिलक

इहाँ उपपति समीप है ताके सुनाए तैं परकीया जानी जाति है । ५९ अ ॥

अथ प्रस्तावविशेष-वर्णनं, यथा-(दोहा)

बौरी बासर बीततैं, प्रीतम आवनिहार ।
तकै दुचित कित, ह्वै सुचित, साजहि उचित सिंगार ॥ ६० ॥

[५६ अ] याकी-याके (भारत) । की-जो (भारत); कि (वेंक०) ।

[५७ अ] वाच्यार्थं०-वाच्यार्थं तें (भारत, वेंक०) । जानियो-जानो यौ (सर०) ।

[५८] करै-करो (भारत, वेंक०, वेल०) ।

[५९] लालि-लाल (वेंक०) । कियैं-करैं (भारत, वेंक०, वेल०) । स्वाऊँ-स्वावौं (वेल०) । 'वेल०' में यह वाच्यविशेष का दूसरा उदाहरण है ।

[६०] कित०-ह्वै सुचित कत (वेंक०); कित सुचित ह्वै (भारत, वेल०) ।

अस्य तिलक

इहाँ उचित सिंगार के प्रस्ताव तेँ यह जान्यो जातु है जो पर-पुरुष पै जान लगी है। ६० अ ॥

अथ देशविशेष-वर्णनं, यथा—(दोहा)

हौँ असकति ज्यौँ त्यौँ इतहि, सुमन चुनौँगी चाहि।
मालि विनै मेरी अली, और ठौर तूँ जाहि ॥ ६१ ॥

अस्य तिलक

इहाँ ठौर व्यभिचारजोग्य है तातेँ सखी को टारिबो व्यंजित होतु है। ६१ अ ॥

अथ कालविशेष-वर्णनं, यथा—(दोहा)

हौँ जमान हौँ जान दै कहा रही गहि फेंट।
हरि फिरि ऐहैं होवहीँ बनबागनि सौँ भेंट ॥ ६२ ॥

अस्य तिलक

इहाँ वसंत रितु है तातेँ कामोद्दीपन को भरोसो व्यंजित होतु है। ६२ अ ॥

अथ चेष्टाविशेष तेँ व्यंग्य-वर्णनं, यथा—(सवैया)

कसिबे मिस नीबिन के छिन वौ अँग अंगनि दास दिखाइ रही।
अपने ही भुजानि उरोजनि कौँ गहि जानु सौँ जानु मिलाइ रही।
ललचौँ हैँ लजौँ हैँ हँसौ हैँ चितै हित सौँ चित चाय बढ़ाइ रही।
कनसा करिकै पगु सौँ परिकै पुनि सूने निकेत मेँ जाइ रही ॥६३॥

अस्य तिलक

इहाँ चेष्टनि सौँ बिहार कौँ बुलाइबो व्यंजित होतु है। ६३ अ ॥

---

[६१] असकति–असक्त (भारत, वेल०)।
[६१ अ] व्यभिचार–संकेत (भारत)।
[६२] हौं०–नहीँ रहत तो (वेल०)। हरि–घर (वही)।
[६२ अ] होतु है–है (भा०)।
[६३] कसिबे०–सुन भोग्य नैन की सैनहि दै (वेल०)। अपने हीं०–सुरिकै मुरिकै दग सौं भरिकै जुग भौंहनि भाव बनाइ रही (वही)। 'वेल०' में तीसरा चरण दूसरा है। निकेत–मकेन (वेल०)।

अथ मिश्रितविशेष-वर्णनं–(दोहा)

वकता अरु बोधव्य सों वरन्यौं मिलितविसेप ।
यों ही औरौ जानिहैं, जिनके सुमति असेप ॥ ६४ ॥

यथा

इहि सज्जा अज्जा रहै, इहि हौं चाहतु सैन ।
हे रतौंधिहे बात यह, सैन समै भूलै न ॥ ६५ ॥

इहाँ वकता की चातुरी है औ' रतौंधी को वहानो बोधव्य की चातुरी है । ६५ अ ॥

अथ व्यंग्य तें व्यंग्य वर्णनं–(दोहा)

त्रिविधि व्यंगिहू तें कढ़े, व्यगि अनूप सुजान ।
उदाहरन ताके कहौं, सुनौ सुमति दै कान ॥ ६६ ॥

अथ वाच्यार्थ व्यंग्य तें व्यंग्य वर्णनं, यथा

अबै फिरि मोहिं कहहिगी, कियो न तूं गृह-काज ।
कहै सु करि आऊँ अबै, मुद्यो जात दिनराज ॥ ६७ ॥

अस्य तिलक

वाको आयसु मानि निहोरो दै कहूँ जायो चाहति है, यह व्यंग्यार्थ है दिन ही में परपुरुप-विहार कियो चाहति है यह दुसरी व्यगि है । ६७ अ ॥

अथ लक्षणामूल व्यंग्य तें व्यंग्य वर्णनं, यथा–(दोहा)

धनि धनि सखि मोहिं लागि तूँ, सहे दसन नख देह ।
परम हितू है लाल सौं, आई राखि सनेह ॥ ६८ ॥

अस्य तिलक

धृग धृग की ठौर धनि धनि कहति है यह लच्छनामूल व्यंगि है तातें अपराधप्रकासन है यह सो दुसरी व्यंगि है । ६८ अ ॥

---

[६४] वरन्यौं–भरन्यो (भारत, वेंक०, वेल०) । जिनके–जिनकी (वेल०) ।

[६५] सज्जा०–सज्या अर्जा (सर०) ; सय्या अत्ता (वेंक०) ।

[६७] जात–चहत (भारत) ।

[६८ अ] धनि धनि–वनि (सर०) । लक्षणामूल–लच्छना (वही) । यह सो–यह (भारत, वेंक०) दुसरी०–दूसरो व्यग्य (वही) ।

अथ व्यंग्य में व्यंग्यार्थ वर्णनं—(दोहा)

निहचल बिसनी-पत्र पर, उत बलाक इहि भाँति।
मरकत-भाजन पर मनौ, अमल संख सुभ काँति ॥ ६६ ॥

अस्य तिलक

वन निरजन है ताही तें बक निहचल हैं यह व्यंगि तातें चलिकै विहार कीजै प्रीतम सौं सुनायो यह व्यंगि तें व्यंगि। ६६ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये वाचकलाक्षणिकव्यंजक-
पदपदार्थवर्णन नाम द्वितीयोल्लासः ॥ २॥

३

अथ अलंकारमूल-वर्णनं—(दोहा)

कहूँ वचन कहु व्यंगि में, परै अलंकृत आइ।
तातें कछु संछेप करि, तिन्हैं देत दरसाइ ॥ १ ॥

अथ उपमालंकारवर्णनं

कहुँ काहू सम बरनिये, उपमा सोई मानि।
विमल बाल-मुख इंदु सो, यौं ही औरो जानि ॥ २ ॥
या सो वहै अनन्वया, मुख सो मुख छविजेय।
ससि सो मुख मुख सो ससी, यौं उपमाउपमेय ॥ ३ ॥
उपमा अरु उपमेय कौं, सम न कहै नहि और।
ताकौं कहत प्रतीप हैं, पंच प्रकार सु फेर ॥ ४ ॥

---

[१] वचन—कथन (भारत, वेंक०)। तातें—तेहि तें (वेंक०)। तिन्हैं—तिनहिं (वही)।

[२] कहुँ०—कहु कहू (भारत); कहूँ कहूँ (वेंक०)। मानि—मानु (वेंक०)। जानि—जानु (वही)।

[३] कहै—कहैं (भारत)। जेय—देय (वेंक०, वेंक०)। यौं—ज्यौं (वेंक०)।

अथ पाँचौ प्रकार प्रतीप, यथा–(सवैया)

चंद कहैं तिय आनन सो जिनकी मति वाके बखान सों है रली।
आनन एकता चंद लखैं मुख के लखें चंद-गुमान घटै अली।
दास न आनन सो कहौ चंद दई सों भई यह बात न है भली।
ऐसो अनूप बनाइकै आनन राखिबे कौं ससिहू की कहा चली ॥५॥

अथ दृष्टांतालंकारवर्णनं–(दोहा)

सम बिंबनि प्रतिबिंब गति, है दृष्टांत सुढंग।
तरुनी मो मो मन बसै, तरु मो बसै बिहंग ॥ ६ ॥
सामान्य तें विसेप दृढ़, है *अर्थांतरन्यास*।
तो रस बिनु औरं कहा, जल बिनु जाइ न प्यास ॥ ७ ॥
द्वै सु एक ही अर्थ बल, *निदरसना* की टेक।
सतनि असत सों माँगिबो, अरु मरिबो है एक ॥ ८ ॥
सम सुभाय हित अहित पर, *तुल्यजोगिता* चारु।
सम फल चाखै दाख सों, सीचनि काटनि हारु ॥ ९ ॥

अथ उत्प्रेक्षादिवर्णनं-(दोहा)

जहाँ कछू कछु सो लगै, समुझत देखत उक्त।
उत्प्रेक्षा तासों कहैं, पवन मनो बिपजुक्त ॥ १० ॥
चद मनो तम ह्वै चल्यो, जनु तियमुख ससि हेत।
दास जानियत दुरन कौं, रंग लियो सजि सेत ॥ ११ ॥
यह नहिं यह कहिये जहाँ, तत्सम वस्तु दुराइ।
सु है *अपन्हुति*, अधरछत करत न पिय, हिमि वाइ ॥ १२ ॥

---

[५] अथ–यथा (भारत, वेंक०)। पाँचौ०–पचो प्रतीप अलन्कार को कबित्त (वेंक०), पाँचौ प्रकार प्रतीप को सवैया–(भारत), अथा पाँचौ प्रतीप जथा कबित्त (सर०)। वाके–वाको (सर०); वाँके (भारत, वेल०)। कहौ–कहो (सर०+); कई (भारत, वेंक० वेल०)।
[६] सम०–साम बिंव (सर०)। मो मो-मैं मो (भारत, वेंक०, वेल०) मो–मैं (वही)। सतनि०-सत असंत (सर०+)। अरु–औ (भारत, वेंक०, वेल०)।
[९] तुल्य–तुल्ययोग्यता (भारत, वेंक०, वेल०)।
[१२] सु है–वहै (वेल०)। हिमि–हिय (वेंक०); हिम (वेल०)।

लच्छन नाम प्रकास है, सुमिरन भ्रम संदेह।
जदपि भिन्नहूँ हैं तदपि, उत्प्रेच्छहि को गेह ॥१३॥

यथा-(सोरठा)

समुझत नंदकिसोर, चंद निरखि तव वदनछवि।
लखि भ्रम रहत चकोर, चंद किधौं यह वदन है ॥१४॥

अथ व्यतिरेकालंकारवर्णनं-(दोहा)

व्यतिरेक जु गुन दोष गनि, समता तजै जयंक।
ज्यों सम मुख निकलंक यह, वह सकलंक मयंक ॥१५॥
आरोपन उपमान को, ताको रूपक नाम।
कान्ह कुँअर कारी घटा, बिज्जुछटा तूँ वाम ॥१६॥

अथ अतिशयोक्तिवर्णनं

अतिसयोक्ति अति वरनिये, और गुन बल भार।
दाबि सैल महि निमिष में, कपि गो सागर-पार ॥१७॥
है उदात्त महत्व अरु, संपति को अधिकार।
सुरपति छरियादार, अरु नगनजडित मगद्वार ॥१८॥
अधिक जानि घटि बढ़ि जहाँ है अधार आधेय।
जग जाके वोदर बसै, तिहि तूँ ऊपर लेय ॥१९॥

अथ अन्योक्त्यादिवर्णनं

अन्यउक्ति औरहि कहैं औरहि के सिर डारि।
सुक सेवँर को सेइबो, अजहूँ तजै विचारि ॥२०॥
व्याजस्तुति पहिचानिये, अस्तुति निंदा व्याज।
विरहताप वाकों दियो, भलो कियो ब्रजराज ॥२१॥
परजायोक्ति जहाँ नई, रचना सों कछु बात।
वहाँ ब्यालबिछावनो, जा तापत दुज-लात ॥२२॥

---

[१५] व्यतिरेक०—व्यतिरेक गुन (सर० -) ; व्यतिरेकै (सर०+)।
[१७] वरनिये—वरनि यह (सर०, वेंक०)। में—महँ (भारत, वेल०)।
[१८] सुरपति०—छरीदार जहँ इंद्र है (वेल०)।
[२०] तजै—तजहि (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२१] अस्तुति०—स्तुति निंदा के (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२२] जा०—जा तम्पत (सर०) ; जा तापस (भारत), पायो हिय (वेंक०), जासु हृदय (वेल०)।

कहै कहन की विधि मुकुरि, *कै आक्षेप* सुवेस ।
बिरह बरी को मैं नहीं, कहती लाल सँदेस ॥२३॥

अथ विरुद्धालंकारवर्णनं

है *विरुद्ध* अविरुद्ध मैं बुधिबल सजै बिरुद्ध ।
कुटिल कान्ह क्यों बस कियो, लली बानि तुव सुद्ध ॥२४॥
बिन कारन कारज प्रगट, *बिभावना* बिस्तारु ।
चितवतहीं घायल करै, बिन अंजन दृग चारु ॥२५॥
बिसेषोक्ति कारज नहीं, कारन की अधिकाइ ।
महा महा जोधा थके, टर्‌यौ न अंगद-पाइ ॥२६॥

अथ उल्लसादिवर्णनं

गुन औगुन कछु और तैं, और धरै *उल्लास* ।
सत परदुख तैं दुख लहैं, परसुख तैं सुख दास ॥२७॥
अलंकार *तदगुन* कहौं, संगति गुन गहि लेत ।
होत लाल तिय के अधर मुक्त हँसत फिरि सेत ॥२८॥
है *समान मिलितैं* गनौ, मिलित दुहू विधि दास ।
मिली कमल मैं कमल-मुखि, मिली सुबास सुबास ॥२९॥
है *बिसेष उनमिलित* मिलि क्यों हूँ जान्यो जाइ ।
मिल्यो कमल-मुख कमल-वन, बोलतहीं बिलगाइ ॥३०॥

अथ समालंकारवर्णनं

उचित बात ठहराइये, *सम* भूपन तिहि नाम ।
या कजरारे दृगनि बसि, क्यों न होहिं हरि स्याम ॥३१॥
भावी भूत प्रतच्छ हीं, *भाविक* को साजु ।
हमैं भयो सुरलोक-सुख, प्रभु-दरसन तैं आजु ॥३२॥
सो *समाधि* कारज सुगम, और हेतु मिलि होत ।
मिलिबे की इच्छा भई, नास्यो दिन-उद्योत ॥३३॥
कछु है होहि *सहोक्ति* मैं, साथहिं परे प्रसंग ।
बढ़न लगी नवबाल-उर, सकुच कुचनि के संग ॥३४॥

---

[२५] बिभावना–बिभावनाद (भारत) ।
[२६] मिलितैं–मिलितौ (भारत, वेंक०, वेज०) ।
[३४] परे–परै (भारत, वेल०) ।

है *विनोक्ति* कछु बिन कछू, सुभ कै असुभ चरित्र।
माया बिन सुभ जोग जप, न सुभ सुहृद बिन मित्र ॥३५॥
कछु कछु को बदलो जहाँ, सो *परिवृति* करि डीठि।
कहा कहौं मनमोहनै, मन लै दीन्ही पीठि ॥३६॥

अथ सूक्ष्मालंकारवर्णनं

संज्ञा ही बातैं कियें, सूक्षम भूषन नाम।
निज निज उर छ्वै छ्वै करी, सौं हैं स्यामा स्याम ॥३७॥
सभिप्राय विसेषननि, *परिकर* भूषन जानि।
देव चतुरभुज ध्याइये, चारि पदारथ दानि ॥३८॥

अथ स्वभावोक्तिवर्णनं

सूधी सूधी बात सौं, *सुभावोक्ति* पहिचानि।
हरि आवत माथे मुकुट, लकुट लिये वर पानि ॥३९॥
हेतुसमर्थन जुक्ति सौं, *काव्यलिंग* को अंग।
धृग धृग धृग जग राम बिनु फिरि फिरि कहत मृदंग ॥४०॥
इहै एक नहिं और कहिं *परिसंख्या* निरसंक।
एक राम के राज मैं, रह्यो चन्द सकलंक ॥४१॥
प्रश्नोत्तर कहिये जहाँ, प्रश्नउत्तर बहु बंद।
बाल अरुन क्यों नयन प्रिय, प्रिय प्रसाद नदचंद ॥४२॥

अथ संख्यालंकारवर्णनं

वस्तु अनुक्रम है जहाँ, *जथासंख्य* तिहि नाम।
रमा उमा बानी सदा, हरि हर बिधि सँग बाम ॥४३॥
कियें जँजीराजोर पद, *एकावली* प्रमान।
श्रुतिबसि मति मतिबसि भगति, भगतिबस्य भगवान ॥४४॥
तजि तजि आलस करम तें, जानि लेहु *परजाय*।
तनु तजि बाढ़ि दगनि गई थिरता दग तजि पाय ॥४५॥

इति अलंकार

[३९] आवत–आए (सर०)।
[४२] प्रिय–प्रिन (वेंक०)
[४४] जोर–जोरि (भारत, वेल०)। बसि–बस (भारत, वेंक०, वेल०)।
[४५] आलस–आलय (सर०, भारत, वेंक०, वेल०)। करम–कर्म (वेंक०)।

अथ संसृष्टिलक्षणं–(दोहा)

एक छंद में जहँ परै, अलंकार बहु दृष्टि।
तिल तंदुल से हैं मिले, ताहि कहैं ससृष्टि ॥४६॥

यथा–(कवित्त)

घन से सघन स्याम केस बेस भामिनी के,
ब्यालिनि सी बेनी भाल ऐसो एक भाल ही।
भृकुटी कमान दोऊ दुहुँन को उपमान,
नैन से कमल नासा कीर-मद घालही।
गरब कपोलनि मुकुर-समता को, सीप
स्रौन आगें, ओठ-आगें बिंब पक हाल ही।
मोतिन की सुषमा बिलोकियत दंतनि मैं
दास हास बीजुरी कौं देख्यो एक चाल ही ॥४७॥

अस्य तिलक

इहाँ केस पैं पूरनोपमा बेनी पैं लुप्तोपमा, भाल पैं अनन्वय, भृकुटि प उपमानोपमेय, नैन नासिका कपोल पैं तीन्यौ प्रतीप, स्रौन ओठ पैं चोथो प्रतीप कै दृष्टांत कै तुल्यजोगिता, दंतनि पैं औ' हास्य पैं निदर्सना भिन्न भिन्न पाइयतु है तातें संसृष्टि कहिये। ४७ अ ॥

पुनर्यथा

वी को मुख इंदु है जु स्वेद न सुधा को बुंद,
मोतीजुत नाक मानौ लीने सुक चारो है।
ठोड़ी रूप कूप है कि गाड़ोई अनूप है कि
अभिराम मुख छबिधाम को पनारो है।

---

[४६] से–सौं (सर०)। कहैं–कहीं (वही)।

[४७] बिंब०–बिबिवि यक (सर०), बिंम यक (वेंक०)।

[४७ अ] केस पैं–केस मे (सर०)। पूरनोपमा–पूर्णोपमालंकार (वेंक०)। लुप्तोपमा–लुप्तोपमालकार (वही)। अनन्वय–अनन्वय अलंकार (वही)। उपमानोपमेय–उपमानो उपमेय (सर०); उपमानोपमेय अलकार (वेंक०)। पैं–मैं (भारत)। तीन्यौ–तीनो (भारत, वेंक०)। प्रतीप०–प्रतीपालंकार है (वेंक०)। दतनि–दंत (भारत, वेक०)। संसृष्टि–ससृष्टि अलंकार (वेंक०)।

ग्रीवा छबि सीवों में ललित लाल-माल लखि,
आवत चकोर जानै अमल अँगारो है।
देखत उरोज सुधि आवत है साधुन के,
ऐसोई अचल सिव साहेब हमारो है ॥४८॥

अस्य तिलक

इहाँ मुख पैं रूपक, स्वेद पैं अपन्हुति, मोतीजुत नाक पैं उत्प्रेक्षा, ठोढ़ी पैं संदेह, ग्रीवा पैं भ्रांति, उरोजनि पैं सुमिरनालंकार पाइयतु है, तातैं यहू संसृष्टि है। ४८ अ ॥

अथ अलंकार-संकर-लक्षणं-(दोहा)

द्वै कि तीन भूषन मिलैं, छीर नीर के न्याय।
अलंकार संकर कहैं, तिहि प्रबीन कबिराय ॥४९॥
एक एक को अंग कहुँ कहुँ सम होहिं प्रधान।
कहूँ कहत संदेह में, संकर तीनि प्रमान ॥५०॥

अथ अंगांगिसंकरवर्णनं-(दोहा)

मिटत नहीं निसि वासरहु आनन-चंद प्रकास।
बने रहैं यातैं उरज पंकजकलिका दास ॥५१॥

अस्य तिलक

इहाँ रूपकालंकार काव्यलिंग-अलंकार को अंग है। ५१ अ ॥

अथ समप्रधानसंकरवर्णनं-(कवित्त)

सुजस गवावैं भगत नहीं सौं हेतु करैं,
चित अति ऊजरे भजत हरि-नाम हैं।
दीन के दुखन देखैं आपने सुखन लेखैं,
बिप्र पापरत तन मैन मोह-धाम हैं।

---

[४८] ऐसोई-ऐसई (वेंक०)।
[४८ अ] 'वेंक०' में 'अलंकार' शब्द अलंकार नाम के साथ अधिक है।
यहू-यह (भारत , याहू (वेंक०)।
[५०] कहत-रहत (भारत, वेंक०, वेल०)।
[५१] अगागि-अंगादि (मर०, भारत, वेल०)।
[५१ अ] है-है यातें अगागि शकर है (वेंक०)।

जग पर जाहिर हैं धरमनि वाहिर हैं,
देव-दरसन तें लहत विसराम हैं।
दासजू गनाए जे असज्जन के काम हैं,
समुझि देखौ एई सब सज्जन के काम हैं ॥५२॥

अस्य तिलक

इहाँ स्लेप, विरुद्ध, निदर्सना तीन्यौ प्रधान हैं। ५२ अ ॥

(दोहा)

ग्रंथ-गूढ़ वन तपनी, गौनी गनिका वाल।
इनकी सीमा तिलक है, भूमिदेव भुविपाल ॥५३॥

अस्य तिलक

इहाँ स्लेप, दीपक, तुल्यजोगिता तीन्यौ प्रधान हैं। ५३ अ ॥

अथ संदेहसंकर—(कवित्त)

कलप कमलवर बिंवन के वैरी, वंधु-
जीवन के वंधु लाल-लीला के धरन हैं।
सध्या के सुमन सूर-सुअन मजीठ ईंठ,
कौहर मनोहर की आभा के हरन हैं।
साहिव सहाव के गुलाव-गुड़हर-गुर,
ईंगुर-प्रकास दास लाली के लरन हैं।
कुसुम-अनारी कुरविंद के अंकुरकारी,
निंदक पवारी प्रानप्यारी के चरन हैं ॥५४॥

---

[५२] हेतु—प्रेम (भारत, वेंक०, वेल०)। ऊजरे—ऊजरो (सर०)। आपने-आपनो (भारत, वेल०)। मैन—मैं जु (वेंक०); मन (वेल०) मोहै—मोह (वेंक०, वेल०)

[५२ अ] हैं—हैं याते समप्रधान शंकर कहा (वेंक०)।

[५३] 'सर०' में छूट गया है।

[५३ अ] तीन्यौ—तीनौं अलकार (वेंक०)। हैं—हैं याते समप्रधान शकर कहा (वेंक०)।

[५४] लरन—सरन (भारत)। अनारी—अनार (वेल०)।

अस्य तिलक

इहाँ उपमा के, प्रतीप के, व्यतिरेक के, उल्लेख के चारों संदेह-संकर है, याको संकीर्न उपमान कहतु हैं। ५४ अ ॥

(दोहा)

चखु चोर बादी सुहृद, कलभ-कलपतरु जानु।
गुरु रिपु सुत प्रभु कारनौ, संकीरन उपमानु ॥५५॥

इति श्रीमत्सकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजाधिराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये अलंकारमूल-
वर्णनं नाम तृतीयोल्लासः ॥३॥

४

अथ रसांगवर्णनं, स्थायी भाव—(दोहा)

प्रीति हसी सोकौ रिसौ उत्साहौ भय मित्त।
घिन बिस्मय थिर भाव ये आठ बसैं सुभ चित्त ॥१॥

श्रृंगाररसादि रसपूर्णतावर्णनं

उचित प्रीति रचना-बचन, सो सिंगार रस जानि।
सुनत प्रीतिमय चित द्रवै, तब पूरन करि मानि ॥२॥
हसी भलो चित हसि उठै, जो रचना सुनि दास।
कवि पंडित ताकौं कहैं, यह पूरन रस हास ॥३॥

[५४ अ] 'वेंक०' में 'के' नहीं है, 'चारयौ' के अनंतर 'अलंकार' शब्द अधिक है। उपमान-उपमा (भारत); उपमा भी (वेंक०)। कहतु-कहत (सर०); कहते (वेंक०)।
[१] सोकौ०-अरु सोक रिस (वेल०), सोकै रिसौ (वेंक०)।
[२] करि०-परिमानि (भारत), परिमान (वेल०)।

सोक, चित्त जाके सुनैं--करुनामय ह्वै जाइ।
ता कविताई कौं कहैं, करुना रस कविराइ॥ ४॥
जो उत्साहिल चित्त मैं, देत बढ़ाइ उछाह।
सो पूरन रस बीर है, रचैं सुकबि करि चाह॥ ५॥
यौं रिस बाढ़ै रुद्र रस, भयहि भयानक लेखि।
घिन तैं है बीभत्स रस, अद्भुत बिस्मय देखि॥ ६॥
जा हिय प्रीति न सोक है, हसी न उत्सह-ठान।
ते बातैं सुनि क्यौं द्रवैं, दृढ़ ह्वै रहे पखान॥ ७॥
तातैं थाई भाव कौं, रस को बीज गनाउ।
कारन जानि बिभाव अरु, कारज है अनुभाउ॥ ८॥
बिभिचारी तैंतीस ये, जहँ तहँ होत सहाइ।
क्रम तें रंचक अधिक अति, प्रगट करैं थिर भाइ॥ ९॥
जानौ नायक नाइका, रस-सिंगार-बिभाव।
चंद सुमन सखि दूतिका, रागादिकौ बनाव॥१०॥
औरनि के न बिभाव मैं प्रगटि कह्यो इहि काज,
सबके न्यारे बिभाव हैं, औरौ हैं बहु साज॥११॥
सिंह बिभाव भयानकहुँ, रुद्र बीरहूँ होइ।
ऐसी सामिल रीति मैं, नेम कहै क्यौं कोइ॥१२॥
थंभ स्नेह रोमांच स्वरभंग कंप बैवर्न।
सब ही के अनुभाव ये सात्विक औरौ अर्न॥१३॥
भिन्न भिन्न बरनन करैं, इन सबकौं कबिराइ।
सब ही कौं करि एक पुनि, देत रसै ठहराइ॥१४॥
लखि बिभाव अनुभाव हीं, चर थिर भावै नेकु।
रस-सामग्री जो रमै, रसै गनै धरि टेकु॥१५॥

---

[४] सुनैं–सुनत (भारत, वेल०)। ह्वै–ह्वै (भारत, वेंक०, वेल०)।
[५] जो–सो (सर०)। [६] यौं-ह्वै (भारत, वेंक०, वेल०)।
[८] जानि–ज्ञानु (सर०)।
[११] कह्यो–कहे (वेल०)। इहि–यह (सर०); एहि (वेल०)।
[१३] बैवर्न–वैवर्न्य–(भारत)। औरौ–औरै (सर०)। अर्न–अर्न्य (भारत); सब अर्न (सर०)।
[१५] 'सर०' में छूट गया है।

थाई भाव ही, यथा–(कवित्त)

मंद मंद गौने सों गयंद-गति ग्वैने लगी,
　　बोने लगी विष सो अलक अहि-छौने सी।
लंक नवला की कुचभारनि दुनौने लगी,
　　होने लगी तन की चटक चारु सोने सी।
तिरछे चितौने सों विनोदनि वितौने लगी,
　　लगी मृदु बातनि सुधा-रस निचौने सी।
मौने मौन सुंदर सलौने पद दास लौने
　　मुख की बनक ह्वै लगन लगी टौने सी॥१६॥

विभाव ही, यथा

धीर धुनि बोलैं थँमि थँमि कर ग्वोलैं मटैं,
　　करत कलोलैं वारियाहक अकास मैं।
नृत्यत कलापी झिल्ली पिक हैं अलापी,
　　विरहीजन विलापी हैं मिलापी रस-रास मैं।
संपा को प्रकास बक-अवली को अवकास,
　　बूँदनि विकास दास देखिबे कों या समैं।
वनिता-विलास मन कीन्हो है मुनीपनि,
　　मुनीपनि की वास लहि फैली निज वास मैं॥१७॥

अनुभाव ही, यथा–(सवैया)

जी बँधि हो बँधि जात है ज्यों ज्यों सुजानातनीन कों आँचति छोरति।
दास कटीले ह्वै गात कँपैं विहँसौहैं लजौहैं लसै दृग लोरति।

---

[१६] सो–सौं (भारत, वेंक०, वेल०)। भारनि–भारन (वेंक०) ; भरनि (वेल०)। तिरछे–तिरछो (भारत, वेंक० वेल०)। चितौने–चितौन (वेंक०, वेल०)। मौने०–मौन मान (वेंक०), मौने मौने (बेल०)।

[१७] नृत्यत–नृत्तित (सर०)। को अवकास–अकास अरु (वेल०)। या०–पास मैं (भारत, वेल०) कीन्हो–कीन्हौ (भारत), कीन्हे (बेल०)। मुनीपनि०–मुनीसन्ह के नीप नीकी (वेल०)। लहि–ज्ञखि (भारत, वेंक०)। 'सर०' में तीसरा चरण चौथा है।

भौंह मरोरति नाक सिकोरति चीर निचोरति औ चित चोरति।
प्यारे गुलाब के नीर में बोरयो प्रिया लपटै रस-भीर में बोरति ॥१८॥

व्यभिचारी भाव (अपस्मार) वर्णनं-(दोहा)

को जानै कैसी परी, कहूँ बिहाल प्रवीन।
कहूँ तार तुंबर कहूँ, कहूँ सारि कहुँ बीन ॥ १९ ॥

अथ शृंगाररसवर्णनं

प्रीति नाइका नायकहि, सो सिंगार-रस ठाउ।
बालक मुनि महिपाल अरु, देव बिपै रतिभाउ ॥ २० ॥
एक होत संजोग अरु, पाँच बियोगहि थापु।
सो अभिलाप प्रवास अरु, बिरह असूया स्रापु ॥ २१ ॥

अथ संयोगशृंगारवर्णनं-(सवैया)

बिपरीत रची नँदनंद सों प्यारी अनंद के कंद सों पागि रही।
बिथुरे अलकै श्रम के झलकै तन ओप अनूपम जागि रही।
अति दास अघानी अनगकला अनुरागन ही अनुरागि रही।
तिरछौं तकिकै छबि सों छकिकै थिर ह्वै थकिकै हिय लागि रही ॥२२॥

अथ अभिलाषहेतुक वियोग-(दोहा)

सुनैं लखैं जहँ दंपतिहि, उपजै प्रीति सुभाग।
अभिलापै कोऊ कहै, काउ पूरबानुराग ॥ २३ ॥

यथा-(कवित्त)

आजु उहि गोपी की न गोपी रही हाल कछु,
हाल बनमाल के हिँडोरे मन झूलि गो।
अँखिया मुखंबुज मैं भौंर ह्वै समानीं, भई
बानी गदगद कद कदम सो फूलि गो।

---

[१८] जी०-जीव घौ ही (भारत)। है-है (वही)। लजौहीं-लजौहैं (वही)। लसै-लसौ (सर०); लसैं (भारत)। लोरति-लौं रति (भारत, वेल०)। भौंह-भौंहैं (भारत, वेल०)। बोरयो-बोरे (वेल०)। लपटै-पलटै (भारत, वेल०)।
[१९] कहूँ सारि-कहुँ सारी (भारत, वेल०)।
[२२] बिथुरे-बिथुरी (वेंक०)।
[२३] पूरबा०-पूरब अनुराग (वेंक०); पूरब अनुराग (वेल०)।

जा मग सिधारे नँदनंद ब्रजस्वामी दास
　　जिनकी गुलामी मकरध्वज कबूलि गो।
वाही मग लागी नेह-घट मैं गँभीर भरि,
　　नीर भरिबे को घट घाट ही मैं भूलि गो॥ २४॥

अथ प्रवासहेतुक वियोग—(दोहा)

प्रीतम गए विदेस जौं विरह-जोर सरसाइ।
वही प्रवास-वियोग है, कहैं सकल कविराइ॥ २५॥

यथा—(कवित्त)

चंद चढ़ि देखै चारु आनन, प्रवीन गति
　　लीन होवो मावै गजराजनि कौं ठिलि ठिलि।
वारिधर-धारनि तैं बारनि पै ह्वै रहै,
　　पयोधरनि छ्वै रहै पहारनि कौं पिलि पिलि।
दई निरदई दास दीन्हो है विदेस तऊ,
　　करौं न अँदेस तुव ध्यान ही मैं हिलि हिलि।
एक दुख तेरे हौं दुखारी, नत प्रानप्यारी,
　　मेरो मन तोसौं नित आवतो है मिलि मिलि॥ २६॥

विरहहेतुक, यथा—(सवैया)

नैननि कौं तरसैये कहाँ लौं कहाँ लौं हियो विरहागि मैं तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्राननि कौं कलपैये।
आवै यही अब जी मैं विचार सखी चलि सौतिहूँ के गृह जैये।
मान घटे तैं कहा घटिहै जु पै प्रानपियारे कौं देखन पैये॥२७॥

---

[२४] न गो—न गोइ (सर०)। भौंर—भोर (भारत); भार (वेंक०)। कट—कठ (भारत, वेङ्क०)। कर्दम—कर्दमन (सर०)। लागी—लागो (वेङ्क०)। भरि—भरी (सर०, भारत, वेंक०) भारी (वेङ्क०)। घट—घाट (वेंक०)। घाट ही—घाट हा (सर०); घाटहि (भारत, वेंक०, वेङ्क०)।

[२६] होनो—होव (वेङ्क०)। पै—यौं (भारत)। छ्वै—ज्वै (वेंक०)। दीन्हो—दीने (सर०)। नैं—सौं (वही)। तेरे—तेरो (भारत, वेंक०)। नत—नित (वेंक०)। आवतो—आवत (भारत, वेङ्क०)।

अक्षयाहेतुक वियोग, यथा—(कवित्त)

नींद भूख प्यास उन्हैं व्यापति न तापसी लौं,
  ताप सी चढ़ति तन चंदन लगाए तैं।
अति ही अचेत होत चैतहू की चाँदनी मैं,
  चंद्रक खवाए तैं गुलाबजल न्हाए तैं।
दास भो जगतप्रान प्रान को वधिक औ'
  कृसान तैं अधिक भयो सुमन विछाए तैं।
नेह के बढ़ाए उन एते कछु पाए, तेरो
  पाइबो न जान्यो वलि भौंहनि चढ़ाए तैं ॥ २८ ॥

शापहेतुक वियोग, यथा—(दोहा)

सवतैं माद्री-पांडु को स्राप भयो दुखदानि।
वसिबो एकहि भौन को, मिलत प्रान का हानि ॥ २९ ॥

बालविषे रतिभाव वर्णनं

चूमिबे के अभिलाषन पूरिकै दूरि तैं माखन लीने बुलावति।
लाल गुपाल की चाल बकैयन दास जू देखतहीं बनि आवति।
ज्यौं ज्यौं हँसैं बिकसैं दतियाँ मृदु आनन-अंबुज मैं छवि छावति।
त्यौं त्यौं उछंग लै प्रेम-उमग सौं नंद की रानी अनद बढ़ावति ॥३०॥

मुनिविषे रतिभाव वर्णनं

आजु बड़े सुकृती हमहीं, भयो पातकु हौंति हमारी धरा तैं।
पूरब ही कियो पुन्य बड़ोई भयो प्रभु को पगु धारिबो तातैं।
आगमु है सब भाँति भलोई विचारिये दास जू एती कृपा तैं।
श्रीरिपिराज तिहारे मिले हमैं जानि परी तिहुँ काल की बातैं ॥३१॥

---

[२८] तापसी—घाम सीं (वेल०)। प्रान को—प्रानऊ (वही)। भयो—भए (सर०)। उन—जोन्ह (सर०), वोन (भारत)। एते—एतो (वेंक०)।
[२९] भई—भयो (वेंक०, वेल०)।
[३१] हौंति—हानि (भारत, वेंक०, वेल०)। पूरब ही—पूरब है (भारत, वेंक०, वेल०)। पगु—रट (वही)। आगमु—आप को (वेंक०)। बिचारिये—बिचारियो (वही)। एती—याती (सर०)।

अथ हास्यरसवर्णनं (कवित्त)

काहू एक दास काहू साहिब की आस में,
कितेक दिन बीत्यो रीत्यो सब भाँति बल है।
बिथा जौ बिनै सों कहै उतरु यहाँ तौ लहै,
'सेवाफल है ही रहै यामें नहिं चल है'।
एक दिन हासहित आयो प्रभुपास, बन
राखे न पुरानो बास कोऊ गऊ थल है।
करत प्रनाम सो बिहसि बोल्यो 'यह कहा',
कह्यो कर जोरि 'देवसेव ही को फल है' ॥३२॥

अथ करुणरसवर्णनं

बातिचाँ हुतीं न सपनेहूँ सुनिबे की मो
सुनी मैं जो हुतीं न कहिबे की सो कहोई मैं।
रोवैं नर नारी पच्छी पसु देहधारी रोवैं,
परम दुखारी ऐसे सूलनि सह्योई मैं।
हाय अपलोक-ओक पंथहि गह्यो मैं
बिरहागिनि दह्यो मैं सोक-सिंधुनि बह्योई मैं।
हाय प्रानप्यारे रघुनंदन दुलारे तुम,
बन कों सिधारे प्रान तन लै रह्योई मैं ॥३३॥

अथ वीररसवर्णनं

देखत मदंध दसकंध अंधधुंध दल,
बंधु सों बलकि बोल्यो राजाराम बरिबंड।
लछन बिचछन सँभारे रहौ निज पच्छ,
देखिहौं अकेले हौं हौं अरि-अनी परचंड।

---

[३२] दास काहूँ–दास कहूँ (सर०)। आस–आसै (सर०, भारत, वेंक०)। बीत्यो–बीते (बेल०)। सब–सबै (भारत, बेल०)। जौ–औ (भारत)। कहै–करै (सर०)। यहाँ तौ–याही तैं (सर०); यहीतें (भारत); याही सो (बेल०)। हास०–दास पर (भारत)। सेव–सेवा (भारत , वेंक०, बेल०)।

[३३] सुनी–सुन्यो (भारत, वेंक०)। रोवैं नर–सारे नर (भारत)। रोवैं–सबै (बेल०)। मैं–पै (भारत, बेल०)।

आजु अन्हवावौं इन सत्रुन के स्रोनितनि
दास भनि वाढ़ी मेरे बाननि तृपा अखंड।
जानि पन सक्कस तरक्कि उठ्यो तक्कस,
करक्कि उठ्यो कोदंड फरक्कि उठ्यो भुजदंड ॥३४॥

अथ रौद्ररसवर्णनं—(सवैया)

क्रुद्ध दसानन बीस कृपाननि लै कपि रीछ अनी सरवट्टत।
लच्छन तच्छन रत्त किये द्दग लच्छ विपच्छ के सिर कट्टत।
मारु पछारु पुकारु दुहूँ दल रुंड झपट्टि दपट्टि लपट्टत।
रुद्र लरैं भट मथ्थनि लुट्टत जोगिनि खप्पर-ठट्टनि ठट्टत ॥३५॥

अथ भयानकरसवर्णनं—(कबित्त)

आयो सुनि कान्ह भूल्यो सकल हुस्यारपन,
स्यारपन कंस को न कहतु सिरातु है।
व्याल बलपूर औ' चनूर द्वार ठाढ़े तऊ,
भभरि भगाइ भयो भीतर ही जातु है।
दास ऐसी डर डरी मति है तहौंऊ ताकी,
भरभरी लागी मन, थरथरी गातु है।
खरहू के खरकत धकधकी धरकत,
भौन-कोन सकुरत सरकत जातु है ॥३६॥

अथ बीभत्सरसवर्णनं

वरषा के सरे मरे मृतकहु खात न
घिनात, करै कृमि-भरे माँसनि के कौर को।
जीवत वराह को उदर फारि चूसत है,
भावै दुरगंध यौं सुगध जैसे बौर को।

---

[३४] अन्हवावौं—अघवाऊँ (भारत, वेंक०, वेल०)। तक्कस—सक्कस (भारत, वेंक०)। 'भारत' में यह रौद्ररस का उदाहरण है।

[३५] कृपाननि—भुजानि सौं (भारत, वेंक०, वेल०)। विपच्छन—विपच्छिन (वेल०)। 'भारत' में यह वीररस का उदाहरण है।

[३६] वल—वर (सर०, भारत)। भयो—भए (सर०); गए (भारत); चलो (वेल०)। भीतर—नातर (सर०)।

देखत सुनत सुधि करतहू आवै घिन,
सजै सब अंगनि घिनावने ही डौर को।
मति के कठोर मानि धरम को तौर करै,
करम अघोर डरै परम अघोर को ॥३७॥

अथ अद्‌भुतरसवर्णनं

सिव सिव कैसो हुत्यो छोटो सो छबीलो गात,
कैसो चटकीलो मुख चंद सो सोहावनो।
दास कौन मानिहै प्रमान यह ख्याल ही में,
सिगरो जहान द्वैक फाल बीच ल्यावनो।
बार बार आवै यही जिय में बिचार, यह
बिधि है कि हर है कि परमेस पावनो।
कहिये कहा जू कछू कहत न बनि आवै,
अति ही अचंभा भरयो आयो यह बावनो ॥३८॥

अथ व्यभिचारीभाव-लक्षणं

निरवेद ग्लानि संका असूया औ' मद स्रम,
आलस दीनता चिंता मोह स्मृति धृति जानि।
ब्रीड़ा चपलता हर्ष आवेग औ' जड़ता,
बिषाद उत्कंठा निद्रा औं अपस्मार मानि।
स्वपन बिबोध अमरष अवहित्थ गर्व,
उग्रता औ' मति व्याधि उन्माद मरन आनि।
त्रास वो बितर्क व्यभिचारी भाव तैंतिस ये,
सिगरे रसनि के सहायक सो पहिचानि ॥३९॥

---

[३७] यौं–वो (भारत, वेंक०) ; सो (बेल०)। डौर–ठौर (बेल०)।

[३८] कैसो–कैसे (भारत)। हुत्यो–सोहै (बेल०)। फाल–पाल (भारत)। जिय–मन (बेल०)। इसके अनंतर 'बेल०' में ये दो दोहे अधिक हैं—

व्यभिचारीभावलक्षण–(दोहा)

जे न बिमुख ह्वै थाय के अभिमुख रहें बनाय।
ते व्यभिचारी बरनिये कहत सकल कबिराय॥
रहत सदा थिर भाव में प्रगट होत एहि भाँति।
ज्यौं कल्लोल समुद्र में त्यौं संचारी जाति॥

[३९] गर्ब–गानि (सर०, भारत, वेंक०)। सो–से (भारत, वेंक०, बेल०)।

(दोहा)

नाटक मैं रस आठई, कह्यो भरत-रिषिराइ।
अनत नवम किय सांत रस, तहँ निरवेदै थाइ ॥४०॥

अथ शांतरस-लक्षणं

मन विराग सम सुभ असुभ सो निरवेद कहंत।
ताहि वढ़े तैं होतु है, संत-हिये रस संत ॥४१॥

यथा—(सवैया)

भूख अघाने रिसाने रसाने हितू अहितूनि सौं स्वच्छ-मने हैं।
दूपन भूषन कंचन काँच जु मृत्तिका मानिक एक गने हैं।
सूल सौं फूल सौं साल प्रवाल सौं दास हिये सम सुक्ख सने हैं।
राम के नाम सौं केवल काम तई जग जीवनमुक्त वने हैं ॥४२॥

(दोहा)

सिंगारादिक भेद वहु, अरु विभिचारी भाउ।
प्रगट्यो *रससारंस* मैं, ह्याँ को करै वढ़ाउ ॥४३॥
भाव उदै सध्यौ सवल, सांत्यौ भावाभास।
रसाभास ये मुख्य कहु, होत रसहि लौं *दास* ॥४४॥

भाव-उदय-संधि-लक्षणं

उचित वात ततच्छन लखैं, उदै भाव को होइ।
वीचहि मैं द्वै भाव के, भाव-संधि है सोइ ॥४५॥

भाव-उदय, यथा—(सवैया)

देखि री देखि अलीसँग जाइ धौं कौनि है का घर मैं ठहराति है।
आनन मोरिकै नैननि जोरि अवै गई ओझल ह्वै मुसकाति है।
*दास*जू जा मुखजोति लखे तैं सुधाधर-जोति खरी सकुचाति है।
आगि लिये चली जाति सु मेरे हिये विच आगि दिये चली जाति है ॥४६

[४१] संत-हिये—शात हिये (वेल०)।
[४२] साल—माल (भारत, वेल०)। प्रवाल—पलास (वेंक०)।
[४४] कहु—हैं (वेल०)। सध्यौ—सात्यो (भारत)। सांत्यो—सातिहु (वेल०)।
[४६] है—कै (भारत, वेल०)।

भाव-संधि, यथा-(दोहा)

कंसदलन पर दौर उत, इत राधाहित जोर।
चलि रहि सकै न स्याम-चित, ऐंच लगी दुहुँ ओर ॥४७॥

भावशबल-लक्षणं

बहुत भाव मिलिकै जहाँ, प्रगट करैं इक रंग।
सबल भाव तासों कहैं, जिनकी बुद्धि उतंग ॥४८॥
हरि-संगति सुखमूल सखि, ये परपंची गाउँ।
तूँ कहि तौ तजि संक उत, द्दग बचाइ द्रुत जाउँ ॥४६॥

अस्य तिलक

उत्कंठा, संका, दीनता, धृति, अवहित्था आवेग को सबल है ।४६ अ॥

भावशांति, भावाभास लक्षणं-(दोहा)

भावसांति सो है जहाँ, मिटत भाव अन्यास।
भाव जु अनुचित ठौर है, सोई भावाभास ॥५०॥

भावशांति, यथा

बदन-प्रभाकर-लाल लखि, विकस्यो उर-अरबिंद।
कहाँ रहौ क्यौं निसि बस्यो, हुल्यो जु मान-मलिंद ॥५१॥

भावाभास, यथा

दरपन मैं निज छाँह सँग, लखि प्रीतम की छाँह।
खरी ललाई रोस की, ल्याई अँखियन माँह ॥५२॥

अस्य तिलक

नाहक को क्रोध भाव है तातैं भावाभास कहिये । ५२ अ ॥

---

[४७] पर-को (बेल०)।
[४६] पै-है (वेंक०)।
[४६ अ] सबल-सबलता (वेंक०)।
[५०] सो-सी (भारत)।
[५१] रहौ-रहै (भारत, वेंक०, बेल०)।
[५२] ल्याई-ल्याइ (सर०) ।
[५२ अ] नाहक को-नाहक (वेंक०)।

अथ रसाभास-वर्णनं-(दोहा)

सुधा सुरा दर तुव नजरि, तूँ मोहिनी सुभाइ ।
अछकन्ह देत छकाइ है, मार-मरन्ह कों ज्याइ ॥५३॥

अस्य तिलक

एक नाइका बहुत नायक कों बस करे तातें रसाभास । ५३ अ ॥

(दोहा)

भिन्न भिन्न जद्यपि सकल, रस भावादिक दास ।
रसै व्यंगि सबको कह्यो धुनि को जहों प्रकास ॥५४॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये रसाग-
वर्णनं नाम चतुर्थोल्लासः ।

५

अथ रस को अपरांग वर्णनं-(दोहा)

रस भावादिक होत जहँ, और और को अग ।
तहँ अपराग कहँ कोऊ, कोउ भूषन इहि ढग ॥१॥
रसवत प्रेया उर्जस्वी, समाहितालकार ।
भावोदयवत संधिवत, और सबलवत धार ॥२॥

---

[५३] दर-धर (भारत, वेँक०, बेल०) ।
[५३ अ] करै-करैं है (भारत, वेँक) ।
[५४] रसैं-रस्न (सर०)
[१] और०-जुगल परस्पर (बेल०) ।
[२] प्रेया-प्रेयो (भारत, वेँक०) । उर्जस्वी-उर्जस्वी , भार०, वेँक० ।
धार-मार (बेल०) ।

रसवतालंकार-लक्षणं

जहँ रस को कै भाव को, अंग होइ रस आइ।
तहि रसवत भूषन कहैं, सकल सुकवि-समुदाइ ॥३॥

अथ शांत रसवत-अलंकार-वर्णनं–(सवैया)

बादि छओ रस व्यंजन खाइबो बादि नवो रस मिस्रित गैबो।
बादि जराइ प्रजंक बिछाइ प्रसून घने परि पा पलुटैबो।
दासजू बादि जनेस मनेस धनेस फनेस गनेस कहैबो।
या जग मैं सुखदायक एक मयंकमुखीन को अंक लगैबो ॥४॥

शृंगाररसवत-वर्णनं–(दोहा)

चंदमुखिन के कुचन पर, जिनको सदा विहार।
अहह करै ताही करन, चरखन फेरवदार ॥५॥

अद्भुत रसवत-वर्णनं–(सवैया)

जाहि दवानल पान किये तेँ बढ़ी हिय मैं सरदी सरदे सोँ।
दान अघासुर जोर हरयो जु लरयो वतसासुर से बरदे सोँ।
बूड़त राखि लियो गिरि लै बृज देस पुरंदर बेदरदे सोँ।
हंस हमैं पर दे परदे सोँ मिलौं उड़ि ता हरि सोँ परदेसोँ ॥६॥

---

[३] होइ–होत (भारत, वेंक०, वेल० ; ।

[४] छओ–नवो (वेंक०)। जराइ–जराउ (भारत, वेंक०, वेल०)। प्रजंक–मयंक (वेंक०)। पा०–पाय लुटैबो (वेंक० वेल०); पाय लुटैबो (भारत)।

[५ अ] एक.. को अ–'सर०' में छूट गया है। को अंग–के अंग में (भारत वेंक०)। 'भारत, वेंक० ' में यह तिलक संख्या ५ अ के अंत में है।

[५] चरखन–चखन (भारत); चिरियन (वेल०)। फेरवदार–फेरवन्दार (भारत)।

[५ अ] अगु–अग भयो (भारत)। 'सर०' में ५ को ६ संख्या पर रखा है।

[६] जहि०–जो हिये (भारत)। हरयो–हयो (सर०); हत्यो (भारत)। सरदे–सदी (भारत, वेंक०)। मिलौं–मिलै (सर०. भारत); मिलैँ (वेंक०)। हरि–मान (सर०); को (भारत)।

(दोहा)

दुरैं दुरैं तकि दूर तैं, रावे आधे नैन।
कान्ह कँपित तुअ दरस तैं, गिरि डगुलात गिरैं न ॥१०॥

अस्य तिलक

इहाँ कंप भाव को सका भाव अंग है। १० अ॥

यथा—(सवैया)

पीत पटी कटि मैं लकुटी कर गुंज के पुंज गरैं दरसावै।
सौरभ-मंजरी कानन मैं सिखिपच्छनि सीस-किरीट बनावै।
दास कहा कहौं कामरि ओढ़ैं अनेक विधाननि नैन नचावै।
कारे डरारे निहारि इन्हैं सखि रोम उठैं अँखिया भरि आवै ॥११॥

अस्य तिलक

इहाँ अवहित्था भाव को निंदा भाव अंगु है। ११ अ॥

अथ ऊर्जस्वी-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

काहू को अँग होत रस भावाभास जु मित्त।
ऊर्जस्वी भूषन कहैं, ताहि सुकवि धरि चित्त ॥१२॥

यथा—(सवैया)

ऊधो वहाँई चलौ लै हमैं जहँ कूबरि कान्ह बसैं इकठोरी।
देखिये दास अघाइ अघाइ विहारे प्रसाद मनोहर जोरी।
कूबरी सौं कछु पाइये मंत्र लगाइये कान्ह सौं प्रेम की डोरी।
कूबर-भक्ति बढ़ाइये बृंद चढ़ाइये चंदन बंदन रोरी ॥१३॥

अस्य तिलक

सौति को मुख देखिवे की उत्कंठा, मंत्र लीवे की चिंता औरु कूबर की भक्ति ये तीन्यौ भावाभास हैं सो वीभत्स रस को अंगु है।१३अ॥

---

[११] पुंज०—माल हियैं (भारत, वेंक०, वेल०)। नैन—भौंहं (वही)। निहारि—निहारे (भारत, वेल०)।

[१३] रोरी—डोरी (भारत, वेंक०, वेल०)। कूबर—कूबरी (सर०)।

[१३ अ] को—की (सर०); के (भारत, वेंक०, वेल०)। लीवे—लेवे (भारत)।

यथा—(सवैया)

चंदन-पंक लगाइकै अंग जगावती आगि सखी बरजोरैं।
तापर दास सुबासन ढारिकै देति है बारि बयारि झकोरैं।
पापी पपीहा न जीहा थकै तुअ पी पी पुकार ककै उठि भोरैं।
देत कहा है दहे पर दाहि गई करि जाहि दई के निहोरैं ॥१४॥

अस्य तिलक

पपीहा सौं दीनता भावाभास है सो विषाद भाव प्रलाप दसा को अंगु है। १४ अ ॥

यथा—(कवित्त)

दारिद बिदारिबे की प्रभु के तलास तौ
हमारे इहाँ अनगन दारिद की खानि है।
अघ की सिकारी जौ है नजरि बिहारी तौ हौं
तन मन पूरन अघनि राख्यो ठानि है।
दास निज संपति सुसाहिब के काज आए,
होत हरषित पूरो भाग उनमानि है।
आपनी बिपति कौं हजूर हौं करत, लखि
रावरे की बिपति-बिदारन की बानि है ॥१५॥

अस्य तिलक

दानबीर को रसाभास है सो दीनता भाव को अंगु है। १५ अ ॥

अथ समाहितालंकार-वर्णनं—(दोहा)

काहू को अँग होत है, जहँ भावन की सौंति।
समाहितालंकार तहँ, कहँ सुकवि बहु भाँति ॥१६॥

यथा

राम-धनुष-टंकोर जहँ, फैल्यो सब जग सोर।
गर्भ स्रवहिं रिपुरानियाँ, गर्भ स्रवहिं रिपु जोर ॥१७॥

---

[१४] ककै-कैकै (सर०, वेंक०) ; बकै (भारत) ; करै (वेल०)।
[१५] के-को (भारत, वेल०)। इहाँ-ह्याँ ह्यां (सर०) ; यहाँ (भारत, वेंक०)। हौं०-होत न चैन (भारत)।
[१७] जहँ-सुनि (भारत, वेंक०, वेल०)। गर्भ स्रवहिं-गर्व स्रवहिं (वही)।
[१७ अ] गर्भ-गर्व (भारत, वेंक०)।

अस्य तिलक

भयानक रस को गर्भ भाव-सांति अंगु है। १७ अ॥

यथा–(सवैया)

जौ दुख सौं प्रभु राजी रहै तौ कहौ सुख-सिद्धिनि सिंधु चहाऊँ।
पै यह निंदा सुनौ निज स्रौन सौं कौन सौं कौन सौं मौन गहाऊँ।
मैं यहि सोच बिसूरि बिसूरि करौं बिनती प्रभु सौंफ पहाऊँ।
तीनिहु लोक के नाथ समत्थहूँ मैं ही अकेलो अनाथ कहाऊँ॥१८॥

अस्य तिलक

निंदा सुनिबे की कोप-सांति चिंता भाव को अंगु है। १८ अ॥

अथ भावसंधिवत्-लक्षणं–(दोहा)

भावसंधि अँग होइ जौ, काहू को अनयास।
भावसंधिवत तिहि कहैं, पंडित बुद्धिविलास॥१९॥

यथा

पिय-पराधु तिल-आधु, तिय साधु अगाधु गनै न।
जानि ललौंहैं होहिंगे, सौंहैं करति न नैन॥२०॥

अस्य तिलक

उत्तमा नाइका में क्रोध अवहित्था उत्कंठा लज्जा की संधि अपराग। २० अ॥

अथ भावोदयवत्-लक्षणं–(दोहा)

रस भावादिक को जु कहुँ, भावउदय अँग होइ।
भावोदयवत तिहि कहैं, दास सुमति सब कोइ॥२१॥

यथा

चलत तिहारे प्रानपति चलिहैं मेरे प्रान।
जगजीवन तुम बिन हमैं, धृग जीवन जग जान॥२२॥

---

[१८] सिंधु–दूरि (भारत, वेंक०, वेल०)। हूँ–हौं (भारत, वेल०); हैं (वेंक०)। अकेलो–अकेली (वही)।

[२०] पराधु–अपराध अगाध तिय साधु सुनेहु (वेल०)। ललौंहैं–लजौंहैं (भारत, वेल०)।

अस्य तिलक

इहाँ प्रवसत्प्रेयसी नाइका को ग्लानि भावउदै अंगु है। २२ अ ॥

अथ भावशबलवत्-लक्षणं-(दोहा)

भावसबल कहि दास जौ, काहू को अँग होइ।
भाव सबलवत तिहि कहैं, कवि पंडित सब कोइ ॥२३॥

यथा-(कवित्त)

मेरो पग झाँवतो हो भावतो सलोनो हौं
हसत कही बालम बिताई कित रतियाँ।
इतनो सुनत रूसि जात भयो, पीछे
पछिताइ हौं मिलन चली, गोए भेष भतियाँ।
दास बिनु भेट हौं दुखित फिरि आई सेज
सजनी बनाई बूझि आइबे की घतियाँ।
चार लागैं लागी मग जोहै हौं, कबार लागी,
हाइ अब तिनको सँदेसऊ न पतियाँ ॥२४॥

अस्य तिलक

इहाँ आठौ नाइका को सबल प्रोषितपतिका नाइका को अंगु है। २४ अ ॥

यथा-(कवित्त)

सुमिरि सकुचि न थिराति सकि त्रसति,
तरकि उग्र बानि सगलानि हरषाति है।
उनिदति अलसाति सोअति सधीर चौंकि,
चाहि चिंति स्रमित सगर्ब इरखाति है।
दास पियनेह छिन छिन भाव बिदलति,
स्यामा सविराग दीन मति कै मखाति है।

[२२ अ] प्रवसत्प्रेयसी-प्रवत्स्यत्प्रेयसी (भारत, वेंक०)। भावउदै-भाव (वही)।

[२४] मेरो-मेरे (वेंक०)। झाँवतो०-झाँवत हौ (भारत, वेल०); भाँवतो हो (वेंक०)। हौं०-एहो हँसि (भारत, वेल०)। भेट-भठ (सर०); भेंटे (वेंक०)।

[२४ अ] ०पतिका नाइका-०पतिका (भारत, वेंक०)।

जल्पति जकति कहँरति कठिनाति माति,
मोहति मरति बिललाति बिलखाति है ॥२५॥

अस्य तिलक

इहाँ प्रवासविरह को तेंतीसो विभिचारी अनु हैं । २५ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये रसभावअपरागवर्णन
नाम पंचमोल्लासः ॥ ५ ॥

६

अथ ध्वनिभेद-वर्णनं-(दोहा)

वाच्य अरथ तें व्यंगि में, चमत्कार अधिकार ।
धुनि ताही कौं कहत, सोइ उत्तम काव्य विचार ॥१॥

यथा-(कवित्त)

भौंर तजि कंचन कहत मखतूल औ,
कपोलनि कौं कंबु तें मधूकै मति भाति है ।
बिद्रुम बिहाइ सुधा अधरनि भाषै, कौल
परजै कुचनि करि श्रीफल की ख्याति है ।
कंचन निदरि गनै गात कौं चंपक-पात
कान्ह मति फिरि गई काल्हि ही की राति है ।

---

[२५] संकि-सक (भारत, वेङ्क०)। अनति-अलित (वही)। तरकि-तरति (सर०)। सगलानि-X (वही)। सोअति०-सोवमिन (वही) चिनि-चित्त (सर०, वेंक०); चित (वेल०)। जकति-जकाति (सर०)। माति-मति (भारत, वेंक०, वेल०)।

[१] सोइ-सो (भारत, वेंक०) है (वेल०)।

दास यौं सहेली सौं सहेली बतलाति सुनि,
सुनि उत लाजनि नवेली गड़ी जाति है ॥२॥

(दोहा)

धुनि को भेद दुभाँति को, भनै भारती-धाम।
अविवांछितो विवांछितो, वाच्य दुहुँन के नाम ॥ ३ ॥

अविवक्षितवाच्य-लक्षण

बकता की इच्छा नहीं, बचनहि को जु सुभाउ।
व्यंगि कढ़ै तिहि वाच्य को अविवांछित ठहराउ ॥ ४ ॥
अर्थांतरसंक्रमित इक, है अविवांछित बाच्य।
पुनि अत्यंततिरस्कृतो, दूजो भेद पराच्य ॥ ५ ॥

अर्थांतरसंक्रमितवाच्य-लक्षण—(दोहा)

अर्थ ऐसही बनत जहँ, नहीं व्यंगि की चाह।
व्यंगि निकारि तऊ करै, चमत्कार कविनाह ॥ ६ ॥
अर्थांतरसंक्रमित सो वाच्य जु व्यंगि अतूल।
गूढ़ व्यंगि यामैं सही, होति लच्छनामूल ॥ ७ ॥

यथा

सु मधु प्याइ प्रीतम कहै, प्रिया पियहि सुखमूरि।
दास होइ ता समय मो, सब इंद्रियदुख दूरि ॥ ८ ॥

---

[२] मति—भाँति (भारत, वेंक०, वेल०)। कौल—और (वेल०)। बरजै०—बरनै कमल कुच (वही)। को०—प्रात चंपक को (वही)। बतलाति—बतराति (भारत, वेंक०, वेल०)।

[३] अविवांछितो०—अविवक्षितो विवक्षितो (भारत, वेल०)। के—को (भारत, वेंक०, वेल०)।

[४] अविवांछित—अविवक्षित (भारत, वेंक०, वेल०)।

[५] अत्यंत०—अर्थांत तिरस्कृती (भारत)।

[७] यामैं—वामैं (भारत)। सही—कही (भारत, वेंक०)।

[८] प्याइ—प्याउ (वेल०)। ता०—ताही समय (वही)।

अस्य तिलक

मधु छुवे तेँ तुचा कौँ सुख होइ पीवे तेँ जीभ कौँ बोल सुने तेँ कान कौँ देखे तेँ दृग कौँ सुख मधुसुगंधि तेँ नासा को दुख दूरि होतु है ।८ अ॥

अत्यंततिरस्कृतवाच्य-लच्छन–(दोहा)

है अत्यंततिरस्कृत जु, निपट तजे धुनि होइ।
समय लच्छ तेँ पाइये, मुख्य अर्थ कौँ गोइ ॥ ९ ॥

यथा

सखि हौँ लई न सोच तुअ, तूँ किय मो सब काम।
अब आनहि चित सुचितई, सुख पैहै परिनाम ॥१०॥

अस्य तिलक

अन्यसंभोगदुखिता है, उलटी बात सब कहति है ।१० अ ॥

अथ विवच्छितवाच्यध्वनि–(दोहा)

कहै बिवच्छितवाच्य धुनि, चाहि करैँ कबि जाहि।
असंलच्छिक्रम लच्छिक्रम, होत भेद द्वै ताहि ॥११॥
असंलच्छिक्रम व्यंग्य जहँ, रसपूरनता चार।
लखि न परै क्रम जाहि, द्रवै सज्जन-चित्त उदार ॥ १२ ॥

[८ अ] छुवे–छूवे (वेंक०) । दृग–दृगनि (भारत, वेंक०) । मधु–मधु सुगंध मधु तेँ (भारत); सुगंध ते (वेंक०) । नासा–नाक (भारत, वेंक०) । सुख . को–× (सर०) : सुख होइ यौ पाँचो इंद्रि को (भारत) ।

[९] अत्यंत–अयोव (भारत. वेंक०) । तिरस्कृत०–तिरस्कृती (भारत, वेल०) । समय०–स्लन लच्छत (वेंक०) ।

[१०] सखि–सखि (सर०) । हौं०–हाल इन सोच तुव (वेंक०); तू नेकु न सकुच मन (वेल०) । तूँ०–किये सबै मन (वेल०) । आनहि–आनहु (सर०); आनै (वेल०) ।

[१० अ] 'वेंक०' मेँ छूट गया है । संख्या ११ का दोहा ही लिख दिया है ।

[११] कहै–कहा (वेंक०); वहै (वेल०) । बिवच्छित–बिवंछित (सर०); बिवंछित (भारत, वेल०) । करैँ–कहै (सर०) । असंलच्छि–असंलच्छ (भारत, वेंक०) । लच्छि–लच्छन (वही) ।

रस-भावनि के भेद की गनना गनी न जाइ।
एक नाम सबको कह्यो, रसव्यंगी ठहराइ ॥१३॥

अथ रसव्यंगि, यथा—(सवैया)

मिस सोइबो लाल को मानि सही हरें ही उठि मौन महा धरिकै।
पट टारि रसीली निहारि रही मुख की रुचि कौं रुचि कौं करिकै।
पुलकावलि पेखि कपोलनि में सु खिस्याइ लजाइ मुरी अरिकै।
लखि प्यारे विनोद सों गोद गह्यो उमह्यो सुखमोद हियो भरिकै ॥१४॥

अथ लक्ष्यक्रमव्यंगि-लक्षणं—(दोहा)

होत लक्ष्यक्रम व्यंगि मैं, तीन भाँति की व्यक्ति।
सब्द अर्थ की सक्ति है, अरु सब्दारथ सक्ति ॥ १५ ॥

अथ शब्दशक्ति-लक्षणं

अनेकार्थमय सब्द सौं, सब्दसक्ति पहिचानि।
अभिधामूलक व्यंगि जेहि, पहिले कह्यो बखानि ॥ १६ ॥
कहूँ वस्तु तें वस्तु की व्यंगि होत कविराज।
कहूँ अलंकृत व्यगि है, सब्दसक्ति द्वै साज ॥ १७ ॥

वस्तु तें वस्तु व्यंगि लक्षणं

सूधी कहनावति जहाँ, अलंकार ठहरै न।
ताहि वस्तुसंज्ञं कहें, व्यंगि होइ कै वैन ॥ १८ ॥

अथ शब्दशक्तिध्वनि वस्तु तें वस्तु व्यंगि, यथा

लाल चुरी तेरें अली, लागी निपटि मलीन।
हरियारी करि देउँगी, हौं तौ हुकुम अधीन ॥ १९ ॥

---

[१३] रस०–रसै व्यंगि (भारत, वेंक०) ; रसै व्यंग (वेल०)।
[१४] रसीली–लजीली (सर०)। सु०–खिसिआइ (वेल०)। सुख–मुद (सर०)।
[१५] सब्द–सर्ब्द व (सर०)। सब्दारथ–सब्द सुक्तिथ (वही)।
[१६] सौं–ज्यौं (सर०)। सक्ति–जो (वही)। जेहि–जहँ (भारत, वेंक०)।
[१८] सज्ञं०–सजोग है (भारत) ; सज्ञा कहँ (वेक०, वेल०)।
[१९] अली–लली (भारत, वेल०)। लागी–लागत (भारत वेंक०, वेल०)। हरियारी–हरिआरी (सर०)।

अस्य तिलक

एक अर्थ साधारन है, एक अर्थ में दूतत्व यह वस्तु तें वस्तु व्यंगि। १९अ॥

वस्तु तें अलंकार व्यंगि, यथा—(दोहा)

फैलि चल्यो अगनित घटा, सुनत सिंह घहरानि।
परे भोर चहुँ ओर तें, होत तरुनि की हानि॥ २०॥

अस्य तिलक

घटा जो है गज-समूह सो सिंह की गरजन तें भागि चले, तरुनि की हानि ह्वैबो उचित है यह समालंकार व्यंगि। २० अ॥

यथा—(कवित्त)

जानिकै सहेट गई कुंजनि मिलन तुम्हैं,
जान्यो न सहेट के बदैया ब्रजराज को।
सूनो लखि सदन सिंगार ज्यों अँगारो भयो,
सुख देनवारो भयो दुखद समाजको।
दास सुखकंद मंद सीतल पवन भयो,
तन तें ज्वलन उत कवन इलाज को।
बाल के विलापन बियोगानल-तापन को,
लाज भई मुकुत मुकुत भई लाजको॥२१॥

अस्य तिलक

इहाँ सब्दसक्ति तें अन्योक्ति उपमालंकार करिकै अन्योन्यालंकार व्यंगि जथासंख्यालंकार। २१ अ॥

अथ अर्थशक्ति-लक्षणं—(दोहा)

अनेकार्थमय सब्द तजि, और सब्द ले दास।
अर्थसक्ति सबकों कहैं, धुनि में बुद्धिविलास॥ २२॥

[१९ अ] दूतत्व—दूत्वत्व (सर०); दूतित्व है (भारत); दूतत्व है (वेंक०)।

[२०] चल्यो—चल्यौ (सर०); चलो (वेंक०); चली (वेल० । परे—परै भारत); परी (वेंक०)।

[२० अ] भागि—भाजि (वेंक०)। व्यंगि—व्यंग्य है (भारत, वेंक०)।

[२१] 'सर०' में नहीं है। मिलन०—मिलै के लिये (वेल०)। के—को (वेंक०)। सूनो—सूने (भारत, वेल०)। सिंगार—को गार (भारत)। बियोगानल०—बियोगनल तापन (भारत); बियोग सतापन (वेंक०)।

[२१ अ] 'सर०' में नहीं है। व्यंगि—काव्यलिंगालंकार (वेंक०)

वाचक लक्षक बस्तु को, जग-कहनावति जानि।
स्वतःसंभवी कहत हैं, कवि पंडित सुखदानि ॥ २३ ॥
जग-कहनावति तेँ जु कछु, कबि-कहनावति भिन्न।
तेहि प्रौढ़ोक्ति कहैं सदा, जिन्ह की बुद्धि अखिन्न ॥ २४ ॥
उज्जलताई कीर्ति की सेत कहै संसार।
तम छायो जग मैं कहै, खुले तरुनि के बार ॥ २५ ॥
कहै हास्यरस सांतरस, सेत बस्तु से सेत।
स्याम सिँगारो, पीत भय, अरुन रुद्र गनि लेत ॥ २६ ॥
बरनत अरुन अबीर सो, रबि सो तप्त प्रताप।
सकल तेजमय तेँ अधिक, कहैँ बिरह-संताप ॥ २७ ॥
साँची बातनि जुक्तिबल, झूठी कहत बनाइ।
झूठी बातनि कोँ प्रगट, साँच देत ठहराइ ॥ २८ ॥
कहै कहावै जड़नि सोँ, बातैं बिबिधि प्रकार।
उपमा मैं उपमेय को, देहिँ सकल अधिकार ॥ २९ ॥
योँ ही औरौ जानिये, कबिप्रौढ़ोक्ति-बिचार।
सिगरी रीति गनावते, बाढ़ै ग्रंथ अपार ॥ ३० ॥

(सोरठा)

बस्तु ब्यंगि कहुँ चारु, स्वतःसंभवी बस्तु तेँ।
बस्तु तेँ अलंकार, अलंकार तेँ बस्तु कहुँ ॥ ३१ ॥

---

[२३] बस्तु–सब्द (सर०)।
[२४] जु–जे (सर०)।
[२५] मैं–मो (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२६] हास्य–हास (सर०)। सांत–सत (वही)। पीत–प्रीति (वेंक०)। रुद्र–रौद्र (भारत, वेल०)।
[२७] बरनत०–बरन अरुन या नीर सोँ (भारत) ; करना अरुन० (वेंक०)। मय–म (वही)।
[२९] जड़नि–युक्ति (वेंक०)। मैं–को (सर०) ; मय (भारत)। को–मैं (सर०)।
[३०] गनावते–गनावतो (भारत)।
[३१] तेँ०–हि तेँ लकार (भारत, वेंक०, वेल०)। कहुँ–कह (भारत) ; कहैं (वेंक०)।

कहूँ अलकृत बात, अलंकार व्यंजित करै।
यौं ही पुनि गनि जात, चारि भेद प्रौढ़ोक्ति मैं ॥ ३२ ॥

अथ स्वतःसंभवी वस्तु तें वस्तुध्वनि, यथा–(दोहा)

सुनि सुनि प्रीतम आलसी, धूत सूम धनवंत।
नवल-बाल-हिय मों हरष, बाढ़त जात अनंत ॥ ३३ ॥

अस्य तिलक

आलसी है तो कहूँ जाइगो नहीं, धनवंत है औ' सूम है तौ दरिद्र की डर नाहीं, धूत है तौ कामी होइगो, सब बाकी चित्तचाही बात है यह वस्तु व्यंगि। ३३ अ ॥

स्वतःसंभवी वस्तु ते अलंकारव्यंगि, यथा–(दोहा)

सखि तेरो प्यारो भलो, दिन न्यारो ह्वै जात।
मोतें नहिं चलचीर कौं, पल बिलगात सोहात ॥ ३४ ॥

अस्य तिलक

आपु कौं वा तें बड़ी स्वाधीनपतका जनावति है, यह व्यतिरेकालंकार व्यंगि है। ३४ अ ॥

स्वतःसंभवी अलंकार तें वस्तुव्यंगि, यथा–(कवित्त)

गिलि गए स्वेदनि जहाँई तहाँ छिलि गए,
मिलि गए चंदन भिरे हैं इहि भाय सौं।
गाढ़े ह्वै रहे ही सहे सन्मुख तुकानि लौक,
लोहित लिलार लागी छीट अरि-घाय सौं।

---

[३२] मैं–के (वेल०)।

[३३] धूत–धूर्त (भारत, वेंक०, वेल०)। मों–में (वेंक०, वेल०)। बाढ़त–बाढ़ो (सर०)।

[३३ अ] आलसी–नायक आलसी (वेंक०)। औ'–वो (भारत, वेंक०)। की–को (भारत), का (वेंक०)। नाहीं–नहीं (भारत), नहीं है (वेंक०)। धूत–धूर्त (भारत); यातें सब भूषन वसन मिलैगो धूर्त (वेंक०)। सब–यातें सब (वेंक०)। है–है तातें (वेंक०)।

[३४ अ] वा तें–बात (भारत, वेंक०)।

श्रीमुख-प्रकास तन दास रीति साधुन की,
अजहूँ लौं लोचन तमीले रिस-ताय सों।
सोहै सरबंग सुख पुलक सुहाए हरि,
आए जीति समर समर महाराय सौं॥ ३५॥

अस्य तिलक

रूपक उत्प्रेक्षालंकार करिकै नायक को अपराध जाहिर करति है, यह वस्तु व्यंगि। ३५ अ॥

अथ स्वतःसंभवी अलंकार तें अलंकारव्यंगि, यथा-(दोहा)

पातक तजि सब जगत को, मो मैं रह्यो बजाइ।
राम तिहारे नाम को, इहाँ न कछू बसाइ॥ ३६॥

अस्य तिलक

मोही मैं पाप रह्यो यह परिसंख्यालकार, तिहारो नाम समर्थ है इहाँ कछू नहीं बसातो यह बिसेषोक्ति अलंकार व्यंगि सब तेँ मैं बड़ो पापी हौं यह व्यतिरेकालंकार। ३६ अ॥

इति स्वतःसभवी

अथ प्रौढ़ोक्ति वस्तु तें वस्तुव्यंगि, यथा-(सवैया)

दास के ईस जवै जस रावरो गावतीं देवबधू मृदु तानन।
जातो कलंक मयंक को मूँदि औ' घाम तेँ काहू सतावतो भान न।
सीरी लगैं सुनि चौंकि चितै दिगदंति तकैं तिरछे दृग आनन।
सेत सरोज लगै कै सुभाइ घुमाइकै सूँड मलैं दुहूँ कानन॥३७॥

अस्य तिलक

तिहारी कीर्ति सर्गहूँ दिगंतहूँ पहुँची, सीतल उज्जल है यह वस्तु व्यंगि। ३७ अ॥

---

[३५] भिरे–भरे (वेल०)। गाड़े–गाढे (वेंक०), गाढ़े (वेल०)। ही–हैं (वेल०)। सन्मुख०–सनमुख काम (वेल०)।

[३५ अ] नायक–नाइका (सर०); नायका (वेंक०)। को–की (सर०)। जाहिर–करिकै जाहिर (वही)। व्यगि–व्यंग्य है (वेंक०)।

[३६ अ] बडो०–बडो पापी हूँ (वेंक०)।

[३७] जवै–जगै (वेंक०)। तकैं–ककै (भारत, वेंक०)। तिरछे–तिरछो (सर०, भारत, वेल०)। सुभाइ–सुभाए (सर०), सुभाउ (भारत), सुहाय (वेंक०); सुभाय (वेल०)।

[३७ अ] सीतल–सीतल है (वेंक०)।

यथा—(दोहा)

करत प्रदच्छिन बाड़वहिं, आवत दच्छिन पौन।
विरहिनि वपु वारत बरहि, बरजनवारी कौन ॥ ३८ ॥

अस्य तिलक

तिहारे विरह मरति है, यहि वस्तु व्यंगि। ३८ अ ॥

अथ कविप्रौढ़ोक्ति वस्तु तें अलंकारव्यंगि, यथा—(दोहा)

निज गुमान दै मान कों, धीरज किय हिय थापु।
सु तौ स्यामछवि देखतहि, पहिले भाग्यो आपु ॥ ३९ ॥

अस्य तिलक

विना मनाए मान छुट्यो, यह विभावनालंकार व्यंगि। ३९ अ ॥

द्वार द्वार देखति खरी, गैल छैल नँदनंद।
सकुचि बीच दृग पच की, कसति कंचुकीबंद ॥ ४० ॥

अस्य तिलक

हर्षप्रफुल्लता तें बंद ढीलो भयो ताकों संकिकै छपावति है, यह व्याजोक्ति अलंकार व्यंगि। ४० अ ॥

अथ प्रौढ़ोक्ति करि अलंकार तें वस्तुव्यंगि, यथा—(दोहा)

'कहा ललाई तैं रही, अँखिया की मरजाद'।
'लाल भाल नख-चद-द्युति, दीन्ही इहै प्रसाद' ॥ ४१ ॥

अस्य तिलक

रूपकालंकार तें तुम परस्त्री पै रहे हौ, यह वस्तु व्यंगि। ४१ अ ॥

---

[३८] प्रदच्छिन०—प्रदच्छिवगुवाहि (सर०)।
[३८ अ] मरति है—के मारे हम विरहिनी लोग मरती हैं (वेंक०), यहि—यहि (सर०); यह (भारत, वेंक०)। वस्तु व्यंगि—व्यंग्य (भारत)।
[३९] गुमान०—गुनमान समान हो (वेंक०)। पहिले—ले (सर०)।
[३९ अ] छुट्यो—छूट्यो (भारत, वेंक०)।
[४०] खरी—खड़ी (भारत, वेंक०, वेल०)।
[४० अ] ढीलो०—ढीले भए (भारत); ढील भए (वेंक०)। अलंकार—लंकार (सर०)। व्यंगि—व्यंग्य ते व्यंग्य प्रौढोक्ति (वेंक०)।
[४१] तैं—लै (भारत, वेंक०, वेल०)। की—वे (वही)। द्युति—कछु (भारत)। इहै—इहौ (सर०), इन्हैं (भारत, वेंक०), यह (वेल०)।
[४१ अ] रहे हौ—रह्यौ है (सर०)। वस्तु—× (भारत)।

अथ प्रौढ़ोक्ति करि अलंकार तेँ अलंकारव्यंगि, यथा–(दोहा)

'मेरो हियो पपान है, तिय-दृग तीछन बान'।
'फिरि फिरि लागत ही रहैं, उठै बियोग कृसान' ॥ ४२ ॥

अस्य तिलक

रूपकालंकार तेँ समालंकार व्यंगि। ४२ अ ॥

यथा–(सवैया)

करै दासै दया वह बानी सदा कवि-आनन कौल जु बैठि लसै।
महिमा जग छाई नवौ रस की तनपोषक नाम धरै छ रसै।
जग जाके प्रसाद लता पर सैल ससी पर पंकजपत्र बसै।
करि भाँति अनेकनि यों रचना जु बिरंचिहु की रचना कों हँसै ॥ ४३ ॥

अस्य तिलक

रूपक रूपकातिसयोक्ति करिकै व्यतिरेकालंकार व्यंगि। ४३ अ ॥

यथा–(सवैया)

ऊँचे अवास बिलास करै अँसुवान को सागर कै चहुँ फेरै।
ताहू न दूरि लौँ अंग की ज्वाल कराल रहै निसिबासर घेरै।
दास लहै वह क्यों अवकास उसास रहै नभ ओर अभेरै।
है कुसलात इती इहि बीचु जु मीचु न आवन पावति नेरै ॥ ४४ ॥

अस्य तिलक

काव्यलिंग अलकार करिकै उत्तर बिसेषोक्ति अलंकार व्यंगि ।४४अ॥

इति अर्थसक्ति

अथ शब्दार्थशक्ति-लक्षणं–(दोहा)

सब्द अर्थ दुहुँ सक्ति मिलि, व्यंगि कढ़ै अभिराम।
कबि कोविद तिहि कहत हैं, उभै सक्ति यह नाम ॥ ४५ ॥

---

[४३] बैठि–बैठी (भारत, वेंक०, बेल०)। जाके–जाको (सर०)। बसै–लसै (सर०, भारत, वेंक०)।

[४४] फेरै–'फेरयो' 'घेरयो' आदि वुकांतरूप (भारत); 'फेरे' आदि रूप (बेल०)। तेँ–पै (बेल०)।

[४५] यह–इहि (भारत, वेंक०), एहि (बेल०)।

यथा—(कवित्त)

साँवा सुधरस जानो परम किसानो माधो,
पाप जंतु भाजै भ्रमि स्यामारुन सेत मैं।
देसी परदेसी बवैं हेम हय हीरादिक,
केस मेद चीरादिक श्रद्धा सम हेव मैं।
परसि हलोरै कै हलोरैं पहिले ही दास,
रासि चारि फलनि की अमर-निकेत मैं।
फेरि जोति देखिबे कौं हरवर दान देत,
अद्भुत गति है त्रिबेनीजू के खेत मैं॥ ४६॥

अस्य तिलक

इहाँ उभय सक्ति तैं रूपक समासोक्ति को संकर करिकै अतिसयोक्ति अलंकार व्यंगि। ४६ अ॥

अथ एकपदप्रकाशित व्यंगि—(दोहा)

पदसमूह रचनानि को वाक्य विचारौ चित्त।
तासु व्यंगि बरनौं सुनौं, पदव्यंजक अब मित्त॥ ४७॥
छंद भरे मैं एक पद, धुनिप्रकास करि देइ।
प्रगट करौं क्रम तैं बहुरि, उदाहरन सब तेइ॥ ४८॥

अर्थांतरसंक्रमितवाच्य पदप्रकास धुनि, यथा—(दोहा)

सुंदर गुन-मंदिर रसिक, पास खरो बृजराजु।
आली कौन सयान है, मान ठानिबो आजु॥ ४९॥

अस्य तिलक

आजु सब्द तैं घात की समय प्रकासित होतु है। ४९ अ॥

अथ अत्यंततिरस्कृतवाच्य पदप्रकास धुनि, यथा—(दोहा)

भाल भृकुटि लोचन अधर, हियो हिये की माल।
छला छिगुनिया छोर को, लखि सिरात दृग लाल॥ ५०॥

---

[४६] जंतु—जुन (भारत वेंक०)। भाजै—× (सर०)। भ्रमि—भ्राम (वही)। स्यामारुन—स्याम अरुन (वही)। हलोरै—हलोरि (बेल०)। पहिले०—मले देव (बेल०)।
[४७] बरनौं—बरन्यौं (भारत, वेंक०)। सुनौं—सुन्यो (वही)।
[४८] करौं—करी (सर०)।
[४९] खरो—खरे (बेल०)।

अस्य तिलक

सिराइबे तैं जरिबो व्यंजित करिकै अपराधु प्रकास्यो । ५० अ ॥

अथ असंलक्ष्यक्रम रसव्यंगि, यथा–(कवित्त)

जाती है तैं गोकुल गोपालहूँ पै जैबी नेकु,
आपनी जौ चेरी मोहिं जानती तूँ सही है।
पाइ परि आपु ही सौं पूँछबी कुसल-छेम,
मो पै निज ओर तैं न जाति कछु कही है।
दास जो बसंतहू के आगमन आए तौ'ब,
तिनसौं सँदेसनि की बातैं कहा रही है।
एतो सखि कीबी यह आममौर दीबी,
अरु कहिबी वा अमरैया राम राम कही है ॥ ५१ ॥

अस्य तिलक

वा सब्द तैं पिछिलो सजोग प्रकासित है । ५१ अ ॥

अथ शब्दशक्ति वस्तु तैं वस्तुव्यंगि, यथा–(दोहा)

जेहि सुमनहि तूँ राधिके, लाई करि अनुराग।
सोई तोरत साँवरो, आपुहि आयो बाग ॥ ५२ ॥

अस्य तिलक

तोरत सब्द तैं तोसौं आसक्त यह वस्तु व्यंगि । ५२ अ ॥

---

[५१] जाती–जाति (भारत, वेल०)। है–हौ (वेल०)। तैं–तूँ (भारत, वेंक०); औं (वेल०),। जैबी-जैबे (वेंक०; जैयो (वेल०)। पूँछबी–पूँछिबे (वेंक०); बूझियो (वेल०)। जौ०–जू बसंतहू (वेल०), मधुमासहू (भारत, वेंक०)। तौ'ब–तबै (भारत), तो (वेंक०), तौ न (वेल०)। तिनसौं०–पतियन सौं (वेंक)। सँदेसनि–सदेसोंनी (सर०), सँदेसनीक (भारत)। बातैं–बात (वेंक० वेल०)। एतो–एती (वेंक०)। सखि–सखी (भारत, वेंक०, वेल०)। आम मौर–अब बौर (भारत, वेंक०, वेल०)।

[५१ अ] पिछिलो–पहिलो (भारत, वेंक०)।

[५२] लाई–लायो (सर०)।

शब्दशक्ति वस्तु तें अलंकारव्यंगि वर्णनं–(दोहा)

लल अखंड घन झंपि महि, बरषत बरषाकाल।
चली मिलन मनमोहनै, मैनमई ह्वै बाल ॥ ५३ ॥

अस्य तिलक

मैनमई सब्द तें मोम को रूपक है। ५३ अ ॥

अथ स्वतःसंभवी वस्तु तें वस्तुव्यंगि–(दोहा)

मंद अमद गनौ न कछु, नंदनंद ब्रजनाह।
छैल छबीले गैल में, गही न मेरी बाँह ॥ ५४ ॥

अस्य तिलक

गैल सब्द तें एकांत मिलैगी यह व्यंगि। ५४ अ ॥

अथ स्वतःसंभवी वस्तु तें अलंकार वर्णनं–(दोहा)

मनसा बाचा कर्मना करि कान्हर सों प्रीति।
पारवती-सीता-सती रीति लई तूँ जीति ॥ ५५ ॥

अस्य तिलक

कान्हर सब्द तें व्यतिरेकालंकार व्यंगि। ५५ अ ॥

अथ स्वतःसंभवी अलंकार तें वस्तु वर्णनं–(दोहा)

हम तुम तन द्वै प्रान इक. आजु फुर्‌यो बलबीर।
लग्यो हिये नख रावरे, मेरे हिय में पीर ॥ ५६ ॥

अस्य तिलक

असंगति अलंकार तें, आजु सब्द तें तुम परस्त्री-बिहार कियो, नई भई, यह वस्तु व्यंगि। ५६ अ ॥

अथ स्वतःसंभवी अलंकार तें अलंकारव्यंगि–(दोहा)

लाल तिहारे दृगन की, हाल न बरनी जाइ।
सावधान रहिये तऊ, चित-वित लेत चुराइ ॥५७॥

[५३ अ] × (सर०)।
[५४] नें–× (सर०)। नंद–नंदनदन (भारत, वेल०), नंदनदंन (वेंक०)। नैं–नो (सर०)।
[५५] × (सर०)। तूँ–तुव (भारत, वेल०)।
[५६ अ] सब्द तें–× (भारत)। पर–नई (वेंक०)। भई–भावी (वही)।
[५७] की–को (वेंक०, वेल०)। न०–कही नहिं (भारत); न बरने (वेंक, वेल०)।

अस्य तिलक

रूपक विभावना करिकै, चोर तैं ये अधिक हैं यह व्यतिरेकालंकार व्यंगि। ५७ अ ॥

अथ कविप्रौढ़ोक्ति वस्तु तें वस्तुव्यंगि–(दोहा)

राम तिहारे सुजस जग, कीन्हो सेत इकंक।
सुरसरि-मग अरि अजस सौं, कीन्हो भेट कलंक ॥ ५८ ॥

अस्य तिलक

सुरसरि-मग तैं यह व्यंजित भयो जो जस को कलक न ह्वै सक्यो। ५८ अ ॥

अथ कविप्रौढ़ोक्ति वस्तु तें अलंकार वर्णनं–(दोहा)

कहत सुखागर बाल के, रहत बन्यो नहिं गेहु।
जरत बाँचि आई ललन, बाँचि पाति ही लेहु ॥ ५९ ॥

अस्य तिलक

जरत सब्द तैं व्याधि प्रकासित कियो, सँदेसे सौं मुकुर गई यह आक्षेपालंकार व्यंगि। ५९ अ ॥

अथ कविप्रौढ़ोक्ति अलंकार ते वस्तुव्यंगि वर्णनं–(दोहा)

हरि हरि हरि व्याकुल फरै, तजि सखानि को सग।
लखि यह तरल कुरंग दग, लटकन मुकुत सुरंग ॥ ६० ॥

अस्य तिलक

सुरग पद तैं तद्गुन अलंकार है, आसक्त ह्वैबो वस्तु व्यगि है ऐसो तेरोई काम है। ६० अ ॥

[५७ अ] ते०–तेरो (भारत)।

[५८] तिहारे–तिहारो (भारत, वेंक०, वेल)।

[५८ अ] ह्वै–धोइ (भारत)।

[५९] कहत०–बचन कहत मुख (वेल०)। रहत०–बन्यो रहत (वही)।

[६०] सखानि–सखीनि (वेंक०); सखियन (वेल०)। मुकुत–मुकुर (सर०)।

[६० अ] पद–X (सर०)। ऐसो०–ऐसो तेरोई काम (भारत); ऐसोई तेरो काम है यह प्रौढ़ोक्ति अलकार व्यंग्य (वेंक०)।

अथ कविप्रौढ़ोक्ति अलंकारव्यंगि–(दोहा)

बाल बिलोचन बाल तेँ, रह्यो चंद-मुख संग।
बिष बगारिबे को सिख्यो, कहौ कहाँ तेँ ढंग॥ ६१॥

अस्य तिलक

ससि-मुख रूपक तातेँ बिष बगरिबो बिषमालंकार व्यंगि। ६१ अ॥

अथ प्रबंधध्वनि, यथा–(दोहा)

एकहि सब्दप्रकास मैं, उभय सक्ति न लखाइ।
अब सुनि होति प्रबंधधुनि, कथाप्रसंगहि पाइ॥ ६२॥
बाहिर कढ़ि कर जोरिकै, रबि कौँ करौ प्रनाम।
मनइच्छित फल पाइकै, तब जैबो निज धाम॥ ६३॥

अस्य तिलक

जब न्हानसमै गोपिन को बस्त्र लयो है ता समै को कृष्न को बचन। ६३ अ॥

अथ स्वयंलक्षित व्यंगि वर्णनं–(दोहा)

वाही कहे बनै जु बिधि, वा सम दूजो नाहिँ।
ताहि स्वयंलक्षित कहैँ, व्यंगि समुझि मन माहिँ॥ ६४॥
सब्द वाक्य पद व्यंजको, एकदेस रस-बर्न।
होत स्वयंलक्षित तहाँ, समुझै सज्जन कर्न॥ ६५॥

अथ स्वयंलक्षित शब्द वर्णनं–(कवित्त)

पात फूल दावन के दीबे को अरथ धर्म
काम मोच्छ चारौ फल मोल ठहरावती।
देख्यो दास देवदुरलभ गति दैकै महा
पापिन को पापन की लूटि ऐसी पावती।

---

[६१] बगारिबे–बगारिबो (भारत, वेंक०)।
[६२] अब–अरु (भारत, वेंक०, बेल०)। प्रबंध–प्रसंग (भारत)।
[६३] कौँ–कै (सर०)। तब–तौ (भारत, वेंक०)। जैबो–जैयो (बेल०)।
[६३ अ] न्हान–नहान (भारत)। को कृष्न–की कृष्ण (भारत), कृष्ण (वेंक०)
[६४] बिधि–बुधि (भार०)।
[६५] व्यंजको–व्यंजकौ (भारत, वेंक०, बेल०)। रस–रद (वही)।

ल्यावत कहूँ तें तन जातरूप कोऊ ताकों
जातरूप-सैलहि की साहिबी सजावती।
संगति में बानी की कितेक जुग बीते देखि,
गंग पै न सौदा की तरह तोहि आवती ॥६६॥

अस्य तिलक

इहाँ बानी सब्द में चमत्कार है, और नाम सरस्वती के नाहीँ लहते। ६६ अ ॥

अथ स्वयंलक्षित वाक्य वर्णनं–(कवित्त)

सुनि सुनि मोरन को सोर चहूँ ओरन तें,
धुनि धुनि सीस पछतावी पाइ दुख कों।
लुनि लुनि भाल-खेत बई बिधि बालिन्ह कों,
पुनि पुनि पानि मीड़ि मारती वपुख कों।
चुनि चुनि सजती सुमन-सेज आली तऊ,
भुनि भुनि जाती अवलोकि वाही रूख कों।
गुनि गुनि बालम को आइबो अजहुँ दूरि,
हुनि हुनि देती बिरहानल में सुख कों ॥६७॥

अस्य तिलक

इहाँ पुनरुक्ति ही मैं चमत्कार है और तरह में नाहीं। ६७ अ ॥

अथ स्वयंलक्षित पद वर्णनं–(सवैया)

वार अँध्यारनि में भटक्यो हौं निकास्यो मैं नीठि सुबुद्धिनि सों घिरि।
बूड़त आनन-पानिप-नीर पटीर की आड़ सों तीर लग्यो तिरि।

---

[६६] पै–को (भारत, वेंक, वेल०)। दीवे०–अर्थ धर्म काम मोक्ष दीवे कहँ चारि (वेल०)। देख्यो–देखो (भारत, वेंक०, वेल०)। को–के (वही)। तन–मन (वेंक०)। ताकों–ताहि (वेल०)। सगति–मगनि (सर०)। की–के (भारत, वेंक०, वेल०)। गंग–गंगा (वही)। तरह–सरह (भारत, वेल०)।

[६६ अ] इहाँ–यहो (वेंक०)। नाहीं–नहीं (भारत, वेंक०)।

[६७] पानि०–हाथ मीजि (सर०)। अवलोकि०–अवलोके वाहि (भारत, वेंक०, वेल०)। देती–देति (भारत, वेल०)।

[६७ अ] ही–X (सर०)। नाहीं–नहीं (भारत, वेंक०, वेल०)।

मो मन बावरो यौं हीं हुत्यो अधरा-मधु-पान कै मूढ़ छक्यो फिरि।
दास कहौ अब कैसे कढ़ै निज चाड़ सौं ठोढ़ी की गाड़ पर्यो गिरि ॥६८॥

अस्य तिलक

इहाँ पटीर ही की आड़ भली जो डूबते को काठ मिलतु है, केसरि रोरी आदि नहीं भली। ६८ अ ॥

अथ स्वयंलक्षित पदविभाग वर्णनं—(दोहा)

हौं गँवारि गाँवहि बसौं कैसो नगर कहंत।
पै जान्यो आधीन करि, नागरीन को कंत ॥ ६९ ॥

अस्य तिलक

इहाँ नागरीन बहुवचन ही भलो, एकवचन नहीं। ६९ अ ॥

अथ स्वयंलक्षित रस वर्णनं—(दोहा)

क्रुद्ध प्रचंडी चंडिका, वक्कत नयन तरेरि।
मूर्छि मूर्छि भू पर परे, गव्वर रहे जो घेरि ॥ ७० ॥

अस्य तिलक

इहाँ रुद्ररस है, उद्धत ही बरन चाहिये। ७० अ ॥

दोहा

द्वै अविवक्षित वाच्य अरु, रसव्यंगी इक लेखि।
सब्दसक्ति द्वै, आठ पुनि अर्थसक्ति अवरेखि ॥ ७१ ॥

---

[६८] हो—हु (भारत); त्त (वेल०)। निकार्यो—निग्यायो (वेंक०)। पीर—नीर (भारत, वेंक०, वेल०)। कै—को (सर०)। कहौ—क्यो (सर०) : मनै (वेल०)।

[६८ अ] की—को (सर०)। भली—भलो (वही)। भली—भलो (वही)।

[६९] बसौं—बस्यौ (सर०) : बसी (भारत, वेल०)। जान्यो—जानो (सर०)। नागरीन—नगनारन (वही)।

[६९ अ] ही—ही मे (सर०)।

[७०] चंडिका-चंडिके (सर०)। वक्कत—वक्त न (वही)। गव्वर—सरग (भारत, वेल०)।

[७१] अविवक्षित—अविवक्षित (भारत, वेल०)। रस०—रचै व्यंगि (भारत, वेल०)। द्वै—है (भारत); द्वै (वेल०)। अर्थ०—अर्थयुक्ति (भारत)।

उभै सक्ति इक जोरि पुनि, तेरह सब्दप्रकास।
इक प्रबंधधुनि, पाँच पुनि, स्वयंलच्छि गुनि दास ॥ ७२ ॥
ए सब तैंतिस जोरि दस बक्ति आदि पुनि ल्याइ।
तैंतालीस प्रकासधुनि, दीन्हो मुख्य गनाइ ॥ ७३ ॥
सब बातनि सब भूपननि, सब संकरनि मिलाइ।
गुनि गुनि गनना कीजिये, तौ अनंत बढ़ि जाइ ॥ ७४ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्येनिर्णये ध्वनिभेद-
वर्णन नाम षष्ठोल्लासः ॥ ६ ॥

७

अथ गुणीभूतव्यंग्य-लक्षणं–(दोहा)

जा व्यंगारथ मैं कछू, चमत्कार नहिं होइ।
गुनीभूत सो व्यंगि है, मध्यम काव्यौ सोइ ॥ १ ॥

(सोरठा)

गनि अगूढ़ अपरांग, तुल्यप्रधानो अस्फुटहि।
काकु वाच्यसिद्धांग, संदिग्धो 'रु असुंदरो ॥ २ ॥
आठौ भेद प्रकासु, गुनीभूत व्यंगिहि गनौ।
लगै सुहाई जासु, वाच्यार्थहि की निपुनता ॥ ३ ॥

---

[७२] गुन–गुरु (वेंक०)।
[७३] बक्ति–व्यक्ति (भारत, बेल०); बक्र (वेंक०)।
[१] सो–ह्वै (सर०)।
[२] 'रु अ०–अरु (सर०)।
[३] भेद–भाँति (सर०)।

अथ अगूढ़व्यंगि-वर्णनं-(दोहा)

अर्थांतरसंक्रमित अरु, अत्यंततिरस्कृत होइ।
दास अगूढ़ो व्यंगि में, भेद प्रगट हैं दोइ ॥ ४ ॥

यथा

गुनवंतन में जासु सुत, पहिले गनो न जाइ।
पुत्रवती वह मातु तौ, वंध्या को ठहराइ ॥ ५ ॥

अस्य तिलक

जाको पुत्र निगुनी है वहै वंध्या है, यह व्यंगि सों प्रगट ही है। ५ अ ॥

अत्यंततिरस्कृतवाच्य-वर्णनं-(दोहा)

बंधु धंधु अवलोकि तुव, जानि परै सब ढंग।
बीस बिसे यह वसुमती, लैहै तेरे संग ॥ ६ ॥

अस्य तिलक

हे बंधु भलाई कर पृथ्वी काहू के संग नाहीं गई, यह व्यंगि है। ६ अ ॥

अथ अपरांग, यथा-(दोहा)

रसवदादि बरनतु किये, रसव्यंजक जे आदि।
ते सब मध्यम काव्य हैं, गुनीभूत कहि वादि ॥ ७ ॥
उपमादिक दृढ़ करन कों, सब्दसक्ति जो होइ।
ताहू कों अपरांग गुनि, मध्यम भाषत लोइ ॥ ८ ॥

यथा

सँग लै सीतहि लछिमनहि, देव कुवलयहि चाउ।
राजत चंद-सुभाव सो, श्रीरघुबीर-प्रभाउ ॥ ९ ॥

---

[४] है-भे (वेल०) । दोइ-तोइ (भारत) ।
[५] तौ-तव (भारत, वेल०) ।
[५ अ] है०-वहीं (सर०) । यह-व्यंजना (वही) ।
[६ अ] पृथ्वी-जगति (सर०) ।
[७] रस०-रसव्यंजन (भारत) । जे-जो (सर०) ।
[८] अपरांग०-अपरांगनी (भारत); अपरांग गनि (वेंक०) । लोइ-लोइ (भारत) ।
[९] सुभाव-सुभाय (सर०) ।

अस्य तिलक

इहाँ उपमालंकार सब्दसक्ति सौं दृढ़ करतु हैं। ९ अ ॥

अथ तुल्यप्रधान-लक्षणं-(दोहा)

चमत्कार मैं व्यंगि अरु, वाच्य बराबरि होइ।
वाही तुल्यप्रधान है, कहैं सुमति सब कोइ ॥ १० ॥

यथा

मानौ सिर धरि लंकपति, श्रीभृगुपति की बात।
तुम करिहौ तौ करहिंगे, वेऊ द्विज उतपात ॥ ११ ॥

अस्य तिलक

व्यंगि यह कि तुमहू द्विज हौ परसुराम मारहिंगे, सो वाच्य की बराबरि है। ११ अ ॥

(कवित्त)

आभरन साजि बैठौ ऐंठौ जनि भौंहैं लखि,
लालन कहैगो प्यारी कला जैसी चंद की।
सुंदरि सिँगारनि बनाइबे की ब्यौंत मैं,
तिलोतमै सी ठहरैहौ सौहैं सुखकंद की।
दास बर आनन-उदारता मैं देखिकै,
कहे ही जो कमल सो है बानी नँदनंद की।
यौं ही परखति जाति उपमा की पगति हौं,
सगति अजहुँ तजौ मान मतिमंद की ॥ १२ ॥

[९ अ] करतु-करते (वेंक०)।

[१०] वाही०-वहइ० (सर०) ; तुल्य प्रधान सुव्यग (वेल०)।

[११] वेऊ-बोऊ (भारत, वेंक०)।

[११ अ] कि-× (रस०)। मारहिंगे-मारैगो (वही)। की-× (भारत)। है-हौ (वही)।

[१२] कहैगो-कहौगे (भारत, वेल०)। की ब्यौंत मैं-की पीतमै (सर०), के ब्यौंत मैं (भारत, वेंक०); के ब्योतनि (वेल०)। ठहरैहौ-ठहरैहौं (भारत, वेंक०)। उदारता०-उदास मैं जु (भारत, वेंक०); उदास मैं हूँ (वेल०)। कहे०-कहौगे ज्यों (वही)। परखति-परति (सर०); परसति (वेल०)। पंगति-पातिन्ह (वेल०)। हौं-है (सर०); हो (भारत, वेंक०); को (वेल०)। तजौ-तजहु (सर०)।

अस्य तिलक

मान छोड़ाइबो वाच्य सोभा बर्निबो व्यंगि दोउ प्रधान हैं। १२ अ॥

अथ अस्फुट-(दोहा)

जाकौ व्यंगि कहे बिना, बेगि न आवै चित्त।
जौं आवै तौ सरल ही, अस्फुट सोई मित्त॥ १३॥

यथा-(कवित्त)

देखे दुरजन संक गुरुजन संकनि सौं,
हियो अकुलात दृग होत न दुखित हैं।
अनदेखे होति मुसुकानि बतरानि मृदु,
बानियै तिहारी दुखदानि बिमुखित हैं।
दास धनि ते हैं जे बियोग ही में दुख पावैं,
देखे प्रान-पी कौं होति जिय में सुखित हैं।
हमैं तौ तिहारे नेहु एकहू न सुख लाहु,
देखेहू दुखित अनदेखेहू दुखित हैं॥ १४॥

अस्य तिलक

निसक जगह मिलिबे की बिनै करति है। १४ अ॥

अथ काकाक्षिप्त-वर्णनं (दोहा)

सही बात कौं काकु तें, जहाँ नहीं करि जाइ।
काकाक्षिप्त सु व्यंगि है, जानि लेहु कबिराइ॥ १५॥

[१२अ] सोभा-सो भाव (भारत), स्वभाव (वेंक०)। प्रधान-प्रधान्य (सर०)।

[१३] बेगि-व्यंगि (भारत); व्यंग्य (वेंक०)। अस्फुट-स्फुट (वही)।

[१४] संक-मग (बेल०)। अकुलात-अकुलाति (भारत)। होत-होती (सर०); होति (भारत, वेंक०)। होति-होती (सर०, वेंक०), ह्वै ते (बेल०)। बतरानि-पतरानि (सर०)। बानियै-बानि पै (वेंक०)। दुखदानि-दृगदेनि (सर०)। कौं-के (भारत, बेल०)। तौ तिहारे-तजि हारे (सर०)। लाहु-लेहु (बेल०)।

[१४ अ] निसक-दर नापका निसक (वेंक०)।

[१५] सही-मौन (बेल०)। जहाँ-नहीं (भारत, वेंक०, बेल०)। काका०-काकुक्षिप्त सु (भारत); काक्वक्षिप्त सो (वेंक०); काकुक्षिप्त सो (बेल०)।

यथा

जहाँ रमै मनु रैनिदिन, तहाँ रहौ करि मौन।
इन बातनि परि प्रानपति, मान ठानती हौं न ॥ १६ ॥

मान किये ही है, नहिं कियो काकु है। १६ अ ॥

अथ वाच्यसिद्धांग-लक्षणं-(दोहा)

जा लगि कीजतु व्यंगि सो बातहि मैं ठहरात।
कहत वाच्यसिद्धांग को अर्थ सुमति-अवदात ॥ १७ ॥

यथा

बरपाकाल न लाल गृह गौन करौ केहि हेतु।
व्याल-वलाहक विप बरसि, विरहिनि को जिय लेतु ॥ १८ ॥

अस्य तिलक

विप जलहू कों कहिये पै व्यालहू को कह्यो है। तातैं वाच्य-सिद्धाग है। १८ अ ॥

यथा-(दोहा)

स्याम-संक पंकजमुखी, जकै निरखि निसि-रंग।
चौंकि भजै निज छाँह तकि, तजै न गुरुजन-संग ॥ १९ ॥

अस्य तिलक

स्यामता की सका व्यंजित होति है सो नायक की संका छोड़िकै प्रयोजन ही नायक परवाच्यसिद्धांग है। १९ अ ॥

अथ संदिग्धलक्षण-वर्णनं-(दोहा)

दोइ अर्थ सदेहमै, पै नहिं कोऊ दुष्ट।
सो संदिग्धप्रधान है, व्यंगि कहै कबि पुष्ट ॥ २० ॥

---

[१६] जहाँ०-जिहि मनु रमैतु रैनि (भारत), जहाँ रमै मन रैन (बेल०)। तहाँ-तहाँ (वही)। परि-पर (वेंक०, बेल०)।

[१६ अ] ही-हो (सर०)। नहिं०-नहिकिबो (वेंक०)।

[१७] को-की (भारत); तेहि (बेल०)। अर्थ-सकल (वही)।

[१८] न-नद (सर०)। बिरहिनि-बिरहिन (वेंक०)।

[१९] पै-ये (भारत)। को-X(सर०)।

[१९ अ] ही-नहीं (भारत)।

[२०] दोइ-होइ (भारत, वेंक०, बेल०)। मै-मैं (वही)। पै०-इन्है न (भारत)।

यथा

जैसे चंद निहारिकै, इकटक रहत चकोर।
त्यौं मनमोहन तकि रहे, तिय-बिंबाधर-ओर ॥ २१ ॥

अस्य तिलक

सोभा बरनन चूँबिबे को अभिलाष दोऊ संदेहप्रधान हैं। २१ अ ॥

अथ असुंदर-वर्णनं–(दोहा)

व्यंगि कहै बहुतक न पै बाच्य अर्थ तैं चारु।
ताहि असुंदर कहत कवि, करिकै हिये बिचारु ॥ २२ ॥

यथा

बिहग-सोर सुनि सुनि समुझि, पछवारे की बाग।
जाति परी पियरी खरी प्रिया भरी अनुराग ॥ २३ ॥

अस्य तिलक

नायक को सहेट बदि राख्यो सो आवै है यह व्यंगि कही सो वाच्यार्थ ही है तातैं चारु नहीं। २३ अ ॥

(दोहा)

एहि बिधि मध्यम काव्य को, जानि लेहु ब्यौहार।
तितनेहू सब भेद हैं, जितने धुनि-बिस्तार ॥ २४ ॥

अथ अवरकाव्य

वचनारथ रचना जहाँ, व्यंगि न नेकु लखाइ।
सरल जानि तेहि काव्य कौं, अवर कहैं कविराइ ॥ २५ ॥
अवरकाव्यहू मैं करै, कवि सुघराई मित्र।
मनरोचक करि देत है, वचन अर्थ कौं चित्र ॥ २६ ॥

---

[२१] रहत–तकत (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२१ अ] चूँबिबे–चूमिबे (भारत, वेंक०)।
[२२] कहै–चहै (सर०)। बहुतक–बहु जतन (भारत), बहु तकन (वेंक०); बहुतकन्द (वेल०)। तैं०–सचार (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२३ अ] आवै–आवी (भारत, वेंक०)।
[२४] तितने०–तितनेइ सब (भारत), तितने ही सब (वेंक०); जितने सबै (वेल०)। हू–ऊ (भारत)।
[२५] वचनारथ–वचनादिक (भारत)। रचना–चरना (सर०)।
[२६] 'सर०' में छूट गया है।

वाच्यचित्र–(कवित्त)

चंद चतुरानन-चखन के चकोरन के,
चंचरीक चंडीपति-चित चोपकारियै।
चहूँ चक्क चाख्यो जुग चरचा चिरानी चलै,
दास चाख्यो-फलद चपल भुज चारियै।
चोप दीजै चारु चरनन चित चाहिबे की,
चेरनि को चेरो चीन्हि चक्रन्ह निवारियै।
चक्रधर चक्वै चिरैया के चढ़ैया चिंता-
चूहरी कौं चित्त तैं चपल चूरि डारियै ॥ २७ ॥

यथा, अर्थचित्र–(सवैया)

नीर बहाइकै नैन दोऊ मलिनाई की खेह करै सनि गारो।
चातैं कठोर लुगाई करै अपनी अपनी दिसि ढेल सो डारो।
दास को ईस करै न मनो जु है वैरी मनोजु हुकूमतिवारो।
छाती के ऊपर व्याधि के भौन उठावतो राज सनेह तिहारो ॥ २८ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्री बाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये गुणीभूतादि-
व्यंग्यअवरकाव्यवर्णन नाम
सप्तमोल्लासः ॥ ७ ॥

---

[२७] चकोरन के–चकोरन को (भारत, वेल०)। चक्क–चक्र (भारत, वेंक०, वेल०)। फलद०–फल देत पल (भारत, वेल०)। चरनन–चरचन्ह (सर०)। की–को (वही)। चेरनि को–चेरनी को (भारत, वेंक०)। चक्रन्ह–चूकन (भारत); चूकन्ह (वेंक०); चूक को (वेल०)। चिरैया–रचैया (भारत); चिरी के (वेल०)। चढ़ैया–चढ़वैया (वही)। कौं–के (सर०)।

[२८] बहाइ–अहार (भारत)। ढेल-रेत (वही)। को–के (वेल०)। करै न०–के रैन (भारत); करन (वेंक०)। मनो जु०–मनै जहँ (वेंक०); मने जहँ (वेल०)।

८

(दोहा)

अलंकार-रचना बहुरि, करौं सहित-विस्तार।
एक एक पर होत जे, भेद अनेक प्रकार ॥ १ ॥
कवि-सुघराई कों कहैं, प्रतिभा सब कविराइ।
तेहि प्रतिभा को होतु है, तीनि प्रकार सुभाइ ॥ २ ॥
सब्दसक्ति प्रौढ़ोक्ति अरु स्वतःसभवी चारु।
अलंकार छवि पावतो, कीन्हे त्रिविधि प्रकारु ॥ ३ ॥
वड़े छंद मों एक ही, भूषन को विस्तारु।
करौ घनेरो धर्ममै, कै माला सजि चारु ॥ ४ ॥
और हेतु नहिं केवलै, अलंकार-निरवाहु।
कवि पंडित गनि लेत हैं, अवरकाव्य में ताहु ॥ ५ ॥
रुचिर हेतु रस को बहुरि, अलंकारजुत होइ।
चमत्कारगुन-जुक्त है, उत्तम कविता सोइ ॥ ६ ॥
अलकार रसवात गुन, ये तीनौं ह्वै जाहि।
और व्यंगि कछु नाहि तौ मध्यम कहिये ताहि ॥ ७ ॥

---

[१] जे–जहँ (वेल०) । भेद–जुक्ति (सर०) ।

[२] इसके अनतर वेंक' में यह अश अधिक है—अत्य तिलक। औ प्रतिमा जो है तिसको ग्रथकर्ता तीन प्रकार को कहा, एक प्रतिभा सब्दसक्ति से होती है, दूसरी प्रतिभा कविप्रौढोक्ति करिकै होती है, तीसरी प्रतिमा स्वत संभवी जानिये।

[३] पावतो–पावते (सर०)। कीन्हे–कीन्हो (भारत, वेंक०, वेल०) ।

[४] वड़े०–छंद मरे मैं (वेंक०) । एक ही–एक कहि (भारत) । मो–मैं (वेल०) । भूषन०–करि भूषन (वेल०) । मै–मनि (भारत, वेंक०); मैं (वेल०) । कै–इक (वही) ।

[५] और–अवर (भारत, वेल०) । अवर–और (सर०, वेंक०) ।

[६] गुन–जन (भारत) ।

[७] और–अवर (भारत, वेल०) । कहिये०–कहियो० (भारत) ; कविता आहि (वेल०) ।

(छप्पय)

उपमा पूरन अर्थि लुप्त उपमा 'रु अनन्वय।
उपमेयोपम अरु प्रतीप श्रौती उपमाचय।
पुनि दृष्टांत बखानि जानि अर्थांतरन्यासहि।
बिकस्वरो निदरसन तुल्यजोगिता प्रकासहि।
गनि लेहु सु प्रतिबस्तूपमा, अलकार बारह बिदित।
उपमान और उपमेय को, है बिकार समुझौ सु चित ॥ ८ ॥

अथ उपमालंकार-वर्णनं—(दोहा)

जहँ उपमा उपमेय है, सो उपमाबिस्तार।
होत आरथी श्रौतियौ, ताको दोइ प्रकार ॥ ९ ॥
बर्ननीय उपमेय है, समता उपमा जानि।
जो है आई आदि तैं, सो आरथी बखानि ॥ १० ॥

अथ आर्थी उपमा, यथा

समता समबाचक धरम बर्न्य चारि इक ठौर।
ससि सो निर्मल मुख, जथा पूरन उपमा डौर ॥ ११ ॥
ससि समता सो समबचन, निर्मलता है धर्म।
बर्न्य सुमुख इहि भाँति सौं, जानौ चारौ मर्म ॥ १२ ॥

पूर्णोपमा बहु धर्म तैं, यथा

सपूरन उज्जल उदित, सीतकरन अँखियान।
दास सुखद मन कौं, प्रिया-आनन चंद-समान ॥ १३ ॥

---

[८] अर्थि—अर्थ (भारत, वेंक०, वेल०)। उपमा रु०—उपमा अनन्य (भारत), उपमान० (वेंक०, वेल०)। बिकस्वरो०—बिकस्वर निदरसन सु (भारत); बिकस्वरो निदरसन और (वेल०)। समुझौ—समुझिय (सर०)।

[११] बर्न्य—बर्न (भारत, वेंक०)। डौर—गौर (भारत, वेंक०, वेल०)। इसके अनतर 'वेंक०' में यह अश अधिक है—अस्य तिलक। यहाँ ससि उपमान सो वाचक निर्मल धर्म मुख उपमेय ये चारो जहाँ रहैं तिनको पूर्णोपमा कहिये।

[१२] बर्न्य—बर्नि (सर०, वेंक०)। सुमुख—सुमुखि (सर०)। 'वेंक०' में यह अधिक है—तिलक।

यथा—(कवित्त)

कढ़िकै निसंक पैठि जाति झुंड झुंडन में,
　　लोगन कों देखि दास आँनद पगति है।
दौरि दौरि जाहि ताहि लाल करि डारति है,
　　अंग लगि कंठ लगिवे कों उमगति है।
चमक - झमकवारी　　ठमक - जमकवारी,
　　रमक - तमकवारी जाहिर जगति है।
राम असि रावरे की रन में नरन में,
　　निलज्ज वनिता सी होरी खेलन लगति है॥ १४॥

अथ पूर्णोपमामाला-वर्णनं—(दोहा)

कहुँ अनेक की एक है, कहुँ एक की अनेक।
कहूँ अनेक अनेक की, मालोपमा-विवेक॥ १५॥

अथ अनेक की एक

नैन कंज-दल से वड़े, मुख प्रफुलित ज्यों कंजु।
कर पद कोमल कज से, हियो कंज सो मंजु॥ १६॥

अथ एक की अनेक, यथा

जहँ एक की अनेक तहँ भिन्न धर्म तें कोइ।
कहूँ एक ही धर्म तें, पूरन माला होइ॥ १७॥

अथ भिन्न धर्म की मालोपमा, यथा

मरकत से दुतिवंत हैं, रेसम से मृदु वाम।
निपट महीन मुरार से, कच काजर से स्याम॥ १८॥

---

[१४] पैठि—बैठि (सर०)। ताहि—तेहि (वही)। रमक—दमक (भारत, वेल०)। 'वेंक०' में अधिक—तिलक। पूर्नोपमा का माला।

[१५] एक की—है एक (भारत, वेल०)।

[१६] कंज से—कंज सों (वेंक०)।

[१७] कोइ—जोइ (भारत, वेल०)।

[१८] निपट०—चिक्कन महिन (वेंक०)। से—सो (सर०)।

अथ एक धर्म तेँ मालोपमा–(सवैया)

सारद नारद पारद अंग सी छीरतरंग सी गंग की धार सी।
संकर-सैल सी चंद्रिका-फैल सी सारस रैल सी हंसकुमार सी।
दास प्रकास हिमाद्रिबिलास सी कुंद सी कास सी मुक्तिभँडार सी।
कीरति हिंदूनरेस की राजति उज्जल चारु चमेली के हार सी ॥१९॥

अथ अनेक अनेक की मालोपमा

पंकज से पग लाल नवेली के कदली-खंभ सी जानु सुढार हैँ।
चारि के अक सी लंक लगी तनु कंजकली से उरोज-प्रकार हैँ।
पल्लव से मृदु पानि जपा के प्रसूनन से अधरा सुकुमार हैँ।
चंद सो निर्मल आनन दासजू मेचक चारु सेवार से बार हैँ ॥२०॥

अथ लुप्तोपमा-वर्णनं–(दोहा)

समतादिक जे चारि हैँ, तिनमैँ लुप्त निहारि।
एक दोइ की तीनि, तौ लुप्तोपमा बिचारि ॥ २१ ॥

अथ धर्मलुप्तोपमा, यथा

देखि कंज से बदन पर, दृग खंजन से दास।
पायो कंचनबेलि सी बनिता-संग बिलास ॥ २२ ॥

अस्य तिलक

यामैँ काव्यलिंग को संकर है। २२ अ ॥

अथ उपमानलुप्त-वर्णनं–(दोहा)

सुबस करन बरजोर सखि, चपल चित्त को चौर।
सुंदर नंदकिसोर सो, जग मैँ मिलै न और ॥ २३ ॥

अथ वाचकलुप्त-वर्णनं

अमल सजल घनस्याम दुति, तड़ित पीतपट चारु।
चद बिमल मुख-हरि निरखि, कुल की काहि सँभारु ॥ २४ ॥

---

[१९] रैल–तार (बेल०)। के–कि (भारत); की (वेंक०)। प्रकार–उदार (भारत, बेल०)।
[२१] की– के (वेंक०)। तौ–लौँ (भारत, वेल०)।
[२२] पर–वर (भारत)। कंचन०–कजने वेल (सर०)।
[२३] को–की (भारत), के (वेल०)।
[२४] दुति–तन (भारत, वेंक०, बेल०)।

अथ उपमेयलुप्त-वर्णनं

जपा पुहुप से अरुनमै, मुकुतावलि से स्वच्छ।
मधुर सुधा सी कहति है, तिनतेँ दास प्रतच्छ ॥ २५ ॥

अथ वाचक-धर्मलुप्त-वर्णनं

लखि लखि सखि सारस नयन, इंदु बदन घन स्याम।
बिज्जु हास दारयो दसन, बिंबाधर अभिराम ॥ २६ ॥

अथ वाचक-उपमानलुप्त

हिय सियरावै बदन-छवि, रस बरसावैं केस।
परम घाय चितवनि करै, सुंदरि यहै अँदेस ॥ २७ ॥

अथ उपमेय-धर्मलुप्त-वर्णनं—(सवैया)

मनु डारत ईँगुर-पावड़े से सुमना से वगारत आइ गई।
जियरे मैं ठगौरी सी दैके भले हियरे विच होरी सी लाइ गई।
नहिँ जानिये को ही कहाँ की ही दासजू धन्य हिरन्यलता सी नई।
ससि सो दरसाइ सरे सी लगाइ सुधा सो सुनाइकै जात भई ॥ २८ ॥

अथ उपमेय-वाचक-धर्मलुप्त-वर्णनं—(दोहा)

तिहूँ लुप्त सो जो रहै, केवल ही उपमान।
ताही कौं रूपकातिसयउक्ति कहैं मतिमान ॥ २९ ॥

---

[२५] जपा—जया (नर०)। मै—मैं (वेंक०, बेल०)। दास—हास (भारत, बेल०)।

[२६] लखि०—लखि लखि (भारत); लखु लखि (बेल०)।

[२७] बरसावै—दरसावै (भारत, वेंक०, बेल०)। घाय—घाव (भारत, बेल०)। यहै—यही (भारत, वेंक०, बेल०)।

[२८] सुमना से—सुमना सो (भारत, वेंक०, बेल०)। भले—भलो (भारत), भली (वेंक०)। ही—है (भारत, बेल०)। ही—है (भारत, वेंक०, बेल०)। धन्य०—कंचनबेलि सी बाल (बेल०)। सरे सी०—सरे सो० (भारत, वेंक०); मुरी मुसुकाइ (बेल०)।

[२९] तिहूँ—तीहू (भारत)। सो०—ते और है (भारत) ते वोर है (वेंक०); जहँ होत हैं (बेल०)। ताही०—ताही कौं रूपातिसय० (भारत, वेंक०)· रूपकातिसय उक्ति वहँ बरनत हैं। (बेल०)।

यथा-(दोहा)

नभ ऊपर सर बीचिजुत, कहा कहौं बृजराज।
तापर बैठो हौं लख्यो, चक्रवाक जुग आज ॥ ३० ॥

अथ अनन्वय, उपमेयोपमा लक्षणं

जाकी समता ताहि कौं, कहत अनन्वय भेय।
उपमा दोऊ दुहुँन की, सो उपमाउपमेय ॥ ३१ ॥

अनन्वय, यथा

मिली न और प्रभा रती करी भारती दौर।
सुंदर नंदकिसोर सो, सुंदर नंदकिसोर ॥ ३२ ॥

उपमेयोपमा, यथा

तरलनयनि तुअ कचनि से, स्याम तामरस-तार।
स्याम तामरस-तार से, तेरे कच सुकुमार ॥ ३३ ॥

अथ प्रतीप-लक्षणं

सो प्रतीत उपमेय को, कीजै जब उपमान।
कै काहू विधि वर्न्य को, करौ अनादर ठान ॥ ३४ ॥

उपमेय को उपमान, यथा

लख्यो गुलाब प्रसून मैं, मैं मधुछक्यो मलिंदु।
जैसे तेरे चिवुक मैं, ललिता लीलाबिंदु ॥ ३५ ॥
छुटे सदा गति सँग लसैं, पानिपभरे अमान।
स्याम घटा सोहै अली, सुंदर कचन-समान ॥ ३६ ॥

---

[३०] बीचि-बीच (सर्वत्र)।

[३२] 'वेंक०' में 'अस्य तिलक' देकर खड़ी बोली में संपादक ने गद्य में अनन्वय को स्पष्ट किया है। यह अंश प्रथमसंपादक का ही है, अतः नहीं दिया जाता।

[३३] वेंक० में गद्य की व्याख्या प्रथमसंपादक की है जो नहीं दी जाती।

[३४] जब-जद (सर०)।

[३५] जैसे-जैसो (भारत, वेंक०)। तेरे-तेरो।

अनादरवर्ण्य-प्रतीप-वर्णनं, यथा—(कवित्त)

विद्या वर बानी दमयंती की सयानी
मंजुघोषा मधुराई प्रीति रति की मिलाई मैं।
चख चित्ररेखा के तिलोत्तमा के तिल लै,
सुकेसी के सुकेस सची साहिबी सोहाई मैं।
इंदिरा उदारता औ' माद्री की मनोहराई,
दास इंदुमती की लै सुकुमारताई मैं।
राधा के गुमान मैं समान बनिता न, ताके
हेतु या विधान एकठान ठहराई मैं ॥३७॥

यथा—(दोहा)

महाराज रघुराजजू, कीजै कहा गुमान।
दंड कोस दल के धनी, सरसिज्ञ तुम्हैं समान ॥ ३८ ॥

अथ लक्षण प्रतीप को

उपमा कौं जु अनादरै, वर्न्य आदरै देखि।
समता देइ न नाम लै, तऊ प्रतीपै लेखि ॥ ३९ ॥

उपमान को अनादर, यथा

बाग-लता मिलि लेइ किन, भौंरनि प्रेमसमेत।
आवति पद्मिनी ग्राम ढिग, फिर न लगैगी सेत ॥ ४० ॥

समता न दीबो, यथा

दुजगन को आस्रय बड़ो, देवन को प्रिय प्रान।
ता रघुपति आगे कहा, सुरपति करै गुमान ॥४१॥

---

[३७] दमयंती–की दमैती (सर०)। राधा–राधे (वही) मैं–यो (वही)।
[३९] वर्न्य-वर्न्नि (सर०); वरन (भारत); वर्न (वेंक०)।
[४०] समेत–समेति (भारत, वेल०)। लगैगी–लहैगी (भारत, वेंक०,वेल०)। सेत–नेति (भारत, वेल०)।
[४१] आलय–आसय (सर०)। प्रिय–तिय (वेंक०)। सुरपति–सुरतरु (वही)।

यथा—(कवित्त)

अलक पै अलिवृंद भाल पै अरध चंद,
भ्रू पै धनु नयननि पै वारौं कंज-दल मैं।
नासा कीर मुकुर कपोल बिंब अधरनि,
दाखो वारौं दसननि ठोढ़ी अंबफल मैं।
कंबु कंठ भुजनि मृनाल दास कुच कोक,
त्रिवली तरंग वारौं भौंर नाभिथल मैं।
अचल नितंबन पै जंघनि कदलि-खंभ,
बाल-पग-तल वारौं लाल मखमल मैं ॥४२॥

यथा—(दोहा)

सही सरस चंचल बड़े, मड़े रसीली बास।
पै न दुरेफनि इन दृगनि, सरिस कहौं मैं दास ॥४३॥

पुनः प्रतीप-लक्षणं

जहँ कीजत उपमेय लखि, उपमा व्यर्थ विचार।
ताहू कहत प्रतीप हैं, यह पाँचयो प्रकार ॥४४॥

यथा

जहाँ प्रिया-आनन उदित, निसि-बासर सानंद।
तहाँ कहा अरविंद है, कहा बापुरो चंद ॥४५॥
प्रभाकरन तमगुनहरन, धरन सहसकर राजु।
तव प्रताप ही जगत मैं, कहा भानु को काजु ॥४६॥

इति आर्थी उपमा।

अथ श्रौती उपमा-लक्षणं—(दोहा)

धर्म सहज के स्लेप लखि सुकवि सुरुचि सरि देइ।
श्रौती उपमा पूरनै, सुनै सुमति चित लेइ ॥४७॥

---

[४२] अरध—अर्ध (सर०)। भ्रू—भ्रुव (वही)। अंब—अम्रु (वही)।
[४३] मड़े—मढ़े (वेंक०, बेल०)।
[४४] पाँचयो—पाँचौ परकार (सर०)।
[४७] कै०—अस्लेषि (भारत)। लखि—करि (बेल०)। सुकवि—जहाँ (बेल०) सुरुचि—सवचि (भारत); सुकवि (बेल०)। सरि—कहि (वेंक०)। देइ—देत (बेल०)। पूरनै—ताहि को (वही)। सुनै०—कहत सदा सुभ चेत (वही)।

यथा

बुध गुन ऐगुन संग्रहैं, खोलैं सहित विचार।
ज्यौं हर-गर गोए गरल प्रगटे ससिहि लिलार ॥४८॥

श्लेष धर्म तें

ज्यौं अहिमुख विष सीपमुख मुकुत स्वातिजल होइ।
बिगरत कुमुख सुमुख बनत, त्यौं ही अच्छर सोइ ॥४९॥

यथा—(सवैया)

ऊपर ही अनुराग लपेटे जे अंतर को रँग है कछु न्यारो।
क्यौं न तिन्हैं करतार करै हरुवो अरु गुंजनि लौं मुँह कारो।
भीतर बाहिरहू जहँ दास वही रँग दूजो का नाहिं सँचारो।
ते गुनवंत गरू हैं करैं नित मूँगा ज्यौं मोतिन संग विहारो ॥५०॥

मालोपमा एक धर्म तें, यथा—(कवित्त)

दास फनि मनि सौं ज्यौं पंकज तरनि सौं ज्यौं,
तामसी रजनि सौं ज्यौं चोर उमहत हैं।
मोर जलधर सौं चकोर हिमकर सौं ज्यौं,
भौंर इंदीवर सौं ज्यौं कोबिद कहत हैं।
कोकिल बसंत सौं ज्यौं कामिनी सुकंत सौं ज्यौं,
संत भगवंत सौं ज्यौं नेमहि गहत हैं।
भिच्छुक भुआल सौं ज्यौं मीन जल-माल सौं ज्यौं,
नैन नँदलाल सौं त्यौं चायनि चहत हैं ॥५१॥

---

[४८] गुन०—अगुनो गुन (भारत, वेंक०)। ज्यौं—जौं (भारत)। प्रगटे—प्रगटै (भारत, वेंक०)

[४९] सोइ—तोर (वेंक०)।

[५०] लपेटे०—लपेटने (भारत, वेंक०); लपेटे जेहि (वेल०)। मुहँ—मुख (सर०)। जहँ—जे हैं (सर०), यह (भारत, वेंक०)। वही—वहै (वेल०)। दूजो०—दूसरो नाहिँ सँचारो (भारत)। गरू०—गरू है रहैँ (भारत); सदा गहये (वेल०)। नित—जग (वही)। ज्यौं—और (सर०)।

[५१] सुकंत—सुकंत (वेल०)।

मालोपमा भिन्न धर्म तेँ, यथा–(सवैया)

मित्र ज्यौँ नेहनिबाह करै कुलनारिनि ज्यौँ परलोक-सुधारिनि।
संपति-दानि सुसाहिब ज्यौं गुरु लोगनि ज्यौँ गुरुग्यान-पसारिनि।
दासजू भ्रातनि ज्यौँ बलदाइनि मातनि ज्यौँ बहुदुक्ख-निवारिनि।
या जग मैं बुधिवंतन कौँ वर विद्या बड़ी वित ज्यौँ हितकारिनि ॥५२॥

यथा–(कवित्त)

चद की कला सी सीतकरनि हिये की गुनि,
पानिपकलित मुकताहल के हार सी।
वेनी बर बिलसै प्रयागभूमि ऐसी, है
अमल छबि छाइ रही जैसी कछु आरसी।
दास नित देखिये सची सी सँग-उरबसी,
कामद अनूप कलपद्रुम की डार सी।
सरस सिँगार सुबरन बर भूषन सी,
वनिता की कविता है कविता उदार सी ॥५३॥

अथ दृष्टांतालंकार-लक्षणं–(दोहा)

लखि बिंब-प्रतिबिंब गति, उपमेयो उपमान।
लुप्त सब्द-बाचक किये, है दृष्टांत सुजान ॥५४॥
साधर्मो बैधर्म सो, कहुँ वैसोई धर्म।
कहूँ दूसरी बात तेँ जानि परै सोइ मर्म ॥५५॥

उदाहरण साधर्म्य दृष्टांत को

कान्हर कृपा-कटाच्छ की करै कामना दास।
चातिक चित मो चेततो, स्वाति-बूँद की आस ॥५६॥

---

[५२] वित–वितु (सर०), पितु (भारत, वेंक०)।
[५३] गुनि–गुन (सर०, भारत)। पानिप०–पानी पंकलित (भारत)। के–को (सर०)। छाइ–छाति (सर०); छाज (भारत); छाजि (वेंक०)।
[५४] लखि–लखी (भारत, वेंक०)। बिंब–बिंबा (बेल०)। है–यह (भारत)।
[५५] सो–से (बेल०)। वैसोई–बेसतइ (सर०), बिसेप है (बेल०)। दूसरी०–होत सामान्य (वही)। जानि०–जानत हैँ जे (वही)।
[५६] मो०–मैं चेत त्यौं (भारत); चित मैं चेत तो (वेंक०); मैं बसत है (बेल०)। की–को (सर०)।

यथा—(सवैया)

और सों केवऊ बोलै हँसै प्रिय, प्रीतम की तूँ पियारी है प्रान की।
केतो चुनै चिनगी पै चकोर के चोप है केवल चंदछदान की।
जौ लौं न तूँ तब ही लौं अली गति दास के ईस पै और तियान की।
भास तरैयन मैं तब लौं जब लौं प्रगटै न प्रभा जग भान की ॥५७॥

अथ माला, यथा

अरविंद प्रफुल्लित देखिकै भौंर अचानक जाइ अरैं पै अरैं।
वनमाल-थली लखिकै मृग-सावक दौरि विहार करैं पै करैं।
सरसी ढिग पाइकै व्याकुल मीन हुलास सों कूदि परैं पै परैं।
अवलोकि गुपाल कों दासजू ये अँखियाँ तजि लाज ढरैं पै ढरैं ॥५८॥

वैधर्म्य दृष्टांत, यथा—(दोहा)

जीवन-लाभ हमैं लखे, लाल विहारी काँति।
विना स्याम घन छनप्रभा, प्रभा लहै कहि भाँति ॥५९॥

अथ अर्थांतरन्यास-लक्षणं

साधारन कहिये वचन, कछु अवलोकि सुभाउ।
ताकों पुनि दृढ़ कीजिये, प्रगटि विसेष बनाउ ॥ ६० ॥
कै विसेष ही दृढ़ करौ, साधारन कहि दास।
साधर्मंहु वैधर्म तैं, है अर्थांतरन्यास ॥ ६१ ॥

---

[५७] प्रिय—पर (वेंक०, वेल०)। तूँ०—तु ही प्यारी (भारत)। केतो—केती (वेंक०, वेल०) पै—को (वेंक०, वेल०)। के—को (भारत); पै (वेंक०, वेल०)।

[५८] हुलास०—विलास से (सर०)।

[५९] लाल—स्याम (भारत, वेल०)।

[६०] सुभाउ—सुभाय (भारत, वेंक०, वेल०)। प्रगटि०—प्रगट विसेष बनाय (भारत), प्रगट विसेषि बताय (वेंक०), प्रगट विसेषहि ल्याय (वेल०)।

[६१] करौ—करो (वेंक०); करै (वेल०)। साधर्मंहु—साधर्मंहि (वही)। तैं—करि (वही)।

साधर्म्य अर्थांतरन्यास, सामान्य की दृढ़ता विशेष सौं

जाको जासौं होइ हित, वहै भलो तिहि दास।
जगत ज्वालमय जेठ ही, जी सौं चहै जवास ॥ ६२ ॥
वरजतहू जाचक जुरैं, दानवत की ठौर।
करी करन झारत रहैं, तऊ भ्रमत हैं भौर ॥ ६३ ॥

माला, यथा—(सवैया)

धूरि चढ़ै नभ पौनप्रसंग तें कीच भई जलसगति पाई।
फूल मिले नृप पै पहुँचै कृमि, काठनि संग अनेक विथाई।
चंदनसग कुदारु सुगध ह्वै नींवप्रसंग लहै करुआई।
दासजू देख्यो सही सव ठौरनि संगति को गुन-दोष न जाई ॥६४॥

वैधर्म्य, यथा—(दोहा)

जाको जासौं होइ हित, वहै भलौ तिहि दास।
सावन जग-ज्यावन गुनौ, का लै करै जवास ॥ ६५ ॥

माला, यथा—(सवैया)

पंडित पडित सौं सुखमंडित सायर सायर के मन मानै।
संतहि संत भनत भलो गुनवंतनि कौं गुनवंत बखानै।
जा पहँ जा सह हेतु नहीं कहिये सु कहा तिहि की गति जानै।
सूर कौं सूर सती कौं सती अरु दास जती कौं जती पहिचानै ॥६६॥

विशेष की दृढ़ता सामान्य तें साधर्म्य, यथा—(दोहा)

कैसे फूले देखिये, प्रात कमल के गोत।
दास मित्रउद्दोत लखि, सवै प्रफुल्लित होत ॥ ६७ ॥

---

[६२] भलो—भलै (भारत)।

[६३] की—के (भारत, वेल०)। भ्रमत०—भ्रमै तित मोर (सर०); तजत नहिं भौंर (वेल०)।

[६४] काठनि—काटनि (भारत); कौंटनि (वेल०)।

[६५] तिहि—हित (भारत, वेंक०, वेल०)।

[६६] पहँ—पर (वेल०)। सह—कहँ (वेंक०); कर (वेल०)। हेतु—प्रेम (वही)। वेंक० में आधुनिक 'अस्य तिलक' भी दिया है।

[६७] मित्र०—सु मित्र उदोत (भारत)।

वैधर्म्य, यथा

मूढ़ कहा गथ-हानि की सोच करत मलि हाथ।
आदि अंत भरि इंदिरा, रही कौन के साथ ॥ ६८ ॥

अथ विकस्वरालंकार-लक्षणं-(दोहा)

कहि विसेप सामान्य पुनि, कहिये बहुरि विसेष।
ताहि विकस्वर कहत हैं, जिनके बुद्धि असेप ॥ ६९ ॥

यथा-(सवैया)

देति सुकीया तुँ पी को सुखै निजु केती वगारतहूँ मति मैली।
दासजू ये गुन हैं जिनमें तिन ही की रहै जग कीरति फैली।
बात सही विधि कीन्हो भलो तिहि यों ही भलाइनि सों निरमैली।
काढ़ि अँगारन में गहि गारेहूँ देति सुवासना चंदन-चैली ॥७०॥

अथ निदर्शनालंकार-लक्षणं-(दोहा)

एक क्रिया तें देत जहँ, दूजी क्रिया लखाइ।
सत असतहु तें कहत हैं, निदरसना कविराइ ॥७१॥
सम अनेक वाक्यार्थ को, एक कहै धरि टेक।
एकै पद के अर्थ को, थापै यह वह एक ॥७२॥

वाक्यार्थ की एकता सत् की, यथा-(सवैया)

तीरथ-वोम नहाननि कै बहु दाननि दै तपपुंज तपै तूँ।
जोम कै सामुहे जंग जुरै दृढ़ होम कै सीस धरै अरपै तूँ।

---

[६८] वेंक० में आधुनिक 'तिलक' भी है।
[६९] के-की (वेल०)।
[७०] केती-काज (वेल०)। हूँ-ही (भारत, वेंक०); है (वेल०)।
मैली-पैली (सर०)। कीन्हो-की हौं (भारत)। भलो-भली (भारत, वेल०)। तिहि-चोहि (वेल०)। गहि-गाढ़ि (भारत, वेंक०, वेल०)।
गारेहूँ-नेगेहू (भारत, वेल०)।
[७१] सत०-संत असंतहु को कहत (भारत)। तैं-को (वेंक०); से (वेल०)। धरि-धटि (सर०)। कै-कर (वही)।

दासजू वेद पुराननि कौं करि कंठ मुखागर नित्य लपै तूँ।
घोस तमाम मैं जो इक जामहु राम को नाम निकाम जपै तूँ ॥७३॥

वाक्यार्थ की असत् असत् की एकता, यथा

प्रानविहीन के पाइ पलोट्यो अकेल ह्वै जाइ घने वन रोयो।
आरसी अंध के आगे धर्‍यो बहिरे सौं मतो करि ऊतरु जोयो।
ऊसर मैं वरस्यो वहु वारि पषान के ऊपर पंकज वोयो।
दास वृथा जिन साहिव सूम के सेवन मैं अपनो दिन खोयो ॥७४॥

वाक्यार्थ असत् सत् की एकता, यथा

जोगुनू भानु के आगे भली विधि आपनी जोतिन्ह को गुन गैहै।
माखियौ जाइ खगाधिप सौं उड़िबे की बड़ी बड़ी बात चलैहै।
दास जु पै तुकजोरनिहार कविंद उदारन की सरि पैहै।
तौ करतारहु सौं औ' कुम्हार सौं एक दिनो झगरो बनि ऐहै ॥७५॥

पुनः, यथा

पूरव तैं फिरि पच्छिम ओर कियो सुरआपगा-धारन चाहैं।
तूलन तोपिकै ह्वै मतिअंध हुतासन-धंध प्रहारन चाहैं।
दासजू देखौ कलानिधि-कालिमा छूरिन सौं छिलि डारन चाहैं।
नीति सुनाइ ये मो हिय तैं नँदलाल को नेह निवारन चाहैं॥ ७६ ॥

पदार्थ की एकता, यथा–(दोहा)

इन दिवसन मनभावतो, ठहरायो सविवेक।
सूर ससी कंटक कुसुम, गरल गंधवह एक ॥ ७७ ॥

---

[७३] तोम०–तोमन-ह्वाननि (भारत, वेंक०) ; तो मन न्हाननि (वेल०)। कै–को (भारत) ; कौ (वेल०)। धरै–धरो (सर०)। अरपै–उर पै (भारत), अरि पै (वेंक०, वेल०)।

[७४] वहिरे–बहिरो सो (सर०) ; बहिरो को (भारत)। करि–कहि (सर०)। मैं–माँ (भारत)।

[७५] जु पै–जबै (भारत, वेल०) ; जु वै (वेंक०)। दिनो–दिना (भारत, वेंक०, वेल०)। वेंक० में आधुनिक 'अस्थ तिलक' भी है।

[७६] धंध–दद (वेल०)। ये–कै (भारत, वेंक०, वेल०)। तैं–मैं (वही)।

[७७] गधवह–बाधवह (सर०)।

(सवैया)

ब्याल मृनाल सुडार कराकृति भावतेजू की भुजानि मैं देख्यो।
आरसी सारसी सूर ससी दुति आनन औनदखानि मैं देख्यो।
मैं मृग मीन ममोलन की छबि दास उन्हीं अँखियानि मैं देख्यो।
जो रस ऊख मयूख पियूष मैं सो हरि की बतियानि मैं देख्यो ॥७८॥

एक क्रिया तें दूजी क्रिया की एकता, यथा–(दोहा)

तजि आसा तन प्रान की, दीपहि मिलत पतंग।
दरसावत सब नरन कौं, परम प्रेम को ढंग ॥ ७९ ॥
पदुमिनि-उरजनि पर लसत, मुकुतमाल जुतजोति।
समुझावत यौं सुथल-गति, मुक्त नरन की होति ॥ ८० ॥

अथ तुल्ययोगितालंकार-वर्णनं

सम वस्तुनि गनि बोलिये, एक बार ही धर्म।
समफलप्रद हित अहित कौं, काहू कौं यह कर्म ॥ ८१ ॥
जा जा सम जेहि कहन कौं, वहै वहै कहि ताहि।
तुल्यजोगिता भूपनहि, निधरक देहु निबाहि ॥ ८२ ॥

सम वस्तुनि को एक बार धर्म

साँझ भोर निसि बासरहुँ, क्यौं हूँ छीन न होति।
सीतकिरन की कालिमा, बालबदन की जोति ॥ ८३ ॥

यथा वा–(सवैया)

थाह न पैये गभीर बड़े हैं सदा ही रहैं परिपूरन पानी।
राकै बिलोकिकै श्रीजुत दासजू होत उमाहिल मैं अनुमानी।
आदि वही मरजाद लिये रहैं है जिनकी महिमा जगजानी।
काहू के क्यौं हूँ घटाए घटैं नहिं सागर औ' गुनआगर प्रानी ॥८४॥

---

[७८] सुडार०–सुडाल० (भारत), सुढाल० (वेंक०); करीकर आकृति (वेल०)। ममोलन-मृनालन (भारत)।

[७९] को–कै (सर०)। 'वेंक०' में आधुनिक 'तिलक' भी है।

[८०] जुत–की (वेल०)।

[८२] जा०–जेहि जेहि के सम (वेल०)। निधरक–त्रय विधि (भारत, वेंक०)।

[८३] किरन–करनि (सर०); किरिनि (भारत, वेंक०)।

[८४] राकै–एकै (भारत, वेंक०, वेल०)। 'वेंक०' में 'भावार्थ' रूप में आधुनिक गद्यांश अधिक है।

हिताहित को फल सम, यथा

जे तट पूजन कौं बिसतारैं पखारैं जे अंगनि की मलिनाई।
जे तुव जीवन लेत हैं देत हैं जीवन जे करि आपु दिढ़ाई।
दास न पापी सुरापी तपी अरु जापी हितू अहितू बिलगाई।
गंग तिहारी तरंगनि सों सब पावैं पुरंदर की प्रभुताई ॥८५॥

(दोहा)

जो सींचै सर्पिष सिता, अरु जो हनै कुठाल।
कटु लागै तिन दुहुन कौं, इहै नींब की चाल ॥ ८६ ॥

समता को मुख्य ही कहिबो, यथा

सोवत जागत सुख दुखहु, सोई नंदकिसोर।
सोइ व्याधि बैदौ सोई, सोइ साहु सोइ चोर ॥ ८७ ॥
जाइ जोहारै कौन कौं, कहा कहूँ है काम।
मित्र मातु पितु बंधु गुरु, साहिब मेरो राम ॥ ८८ ॥

यथा—(कवित्त)

गुंबज मनोज के महल के सोहाए स्वच्छ,
गुच्छ छबिछाए गजकुंभ गजगामिनी।
उलटे नगारे तने तंबू सैल भारे मठ
मंजुल सुधारे चक्रवाक गतजामिनी।
दास जुग संभुरूप श्रीफल अनूप मन
घावरे करन घावरेन किल कामिनी।
कंदुक कलस बटे संपुट सरस मुकुलित
तामरस हैं उरोज तेरे भामिनी ॥ ८९ ॥

---

[८५] जापी०—जापिहु तू (सर०)।
[८६] इहै—वहै (भारत, वेंक०, वेल०) चाल—छाल (वही)।
[८७] बैदौ०—सो बैदहू (वेल०)। सोई चोर—स्वै० (सर०)।
[८८] कहूँ है—काहु से (भारत, वेल०)। मेरो—मेरे (वेल०)।
[८९] गत—गति (सर०, वेंक०)। घावरे—घायल (वेल०)। करन—करत (भारत, वेल०)। घावरेन—घावरन (सर०, वेंक०); घायलन (वेल०)। बटे—बैठे (भारत), बढ़े (वेंक०, वेल०)।

अस्य तिलक

यामें लुप्तोपमा को संदेहसंकर है। ८९ अ ॥

अथ प्रतिवस्तूपमा-वर्णनं—(दोहा)

नाम जु है उपमेय को, सोई उपमा नाम।
वाकौं प्रतिवस्तूपमा, कहै सकल गुनधाम ॥ ९० ॥
जहँ उपमा उपमेय को नाम, अर्थ है एक।
ताहू प्रतिवस्तूपमा, कहै सो बुद्धिविवेक ॥ ९१ ॥

यथा—(सवैया)

मुक्त नरो घने जामैं विराजत रात सितासित भ्राजत ऐनी।
मध्य सुदेस तें है ब्रह्मांड लौं लोग कहैं सुरलोकनिसेनी।
पावन पानिप सौं परिपूरन देखत दाहि दुखै सुखदेनी।
दास भरै हरि के मन काम कौं बीसबिसै यह बेनी सी बेनी ॥ ९२ ॥

(दोहा)

नारी छूटि गए भई, मोहन की गति सोइ।
नारी छूटि गए जु गति, और नरन की होइ ॥ ९३ ॥
लाल विलोचन अधखुले, आरससंजुत प्रात।
निंदत अरुन प्रभात कौं, विकसत सारस-पात ॥ ९४ ॥

पुनः लक्षणं

जहाँ बिंब-प्रतिबिंब, नहिं, धर्महि तें सम ठान।
प्रतिवस्तुपमा तेहि कहैं, दृष्टांतहि सो जान ॥ ९५ ॥

यथा—(सवैया)

कौन अचंभो जौ पावक जारै गरू गिरि है तौ कहा अधिकाई।
सिंधुतरंग सदैव खराई नई न है सिंधुरअंग कराई।

---

[९०] वाकौं०—वाहि प्रतीवस्तूपमा (भारत, वेल०); ताही० (वेंक०)। कहै—कहत (भारत, वेंक०, वेल०)। सकल—सुकवि (भारत, वेल०)।
[९१] कहै०—कहैं सुबुद्धि (भारत, वेंक०, वेल०)।
[९२] रात—राते (वेल०)। भ्राजत—भाजत (सर०)। ब्रह्माड—ब्रह्माड (सर०, वेंक०, वेल०); यह माँड (भारत)। सी—सु (वही)।

वस्तूत्प्रेक्षा-वर्णनं

वस्तुत्प्रेक्षा दोइ विधि, उक्ति अनुक्ति विषैन।
उक्तिविषै जग अनउक्ति, होत कविहि को चैन ॥ ४ ॥

उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

रैनि तिमहले तिय चढ़ी, मुख-छवि लखि नँदनंद।
घरी तीन उदयाद्रि तैं, जनु चढ़ि आयो चंद ॥ ५ ॥

अस्य तिलक

चंद्रमा चढ़िवो आश्चर्य नहीं है, यातैं उक्तविषया कहिये। ५ अ ॥

यथा वा

लसै बाल-उरोज यौं, हरित-कंचुकी-संग।
दल-तल-दबे पुरैनि के, मनौं रथंग विहंग ॥ ६ ॥

अस्य तिलक

पुरैनि-दल-तरे रथांग जो है चकवा ताको दबिवो आचरजु नहीं, तातैं उक्तविषया है। ६ अ ॥

यथा—(सवैया)

स्याम सुभाय मैं नेह-निकाय मैं आपहू ह्वै गए राधिका जैसी।
राधो करै अवराधो जु माधो मैं रीति प्रतीति भई तनमैं सी।
ध्यान ही ध्यान सौं ऐसो कहा भयो कोऊ कुतर्क करै यह कैसी।
जानत हौं इन्हैं दास मिल्यो कहुँ मंत्र महा परपिंड-प्रवेसी ॥ ७ ॥

अस्य तिलक

परपिंड-प्रवेसी मंत्र को मिलिवो आचरजु नाहीं। ७ अ ॥

---

[४] × (सर०)। को—की (भारत, वेल०)।

[५ अ] चद्रमा—चंद्रमा को (भारत, वेंक०)। उक्त—उक्ति (सर०, भारत, वेंक०)। कहिये—× (भारत), अलंकार कहिये जनु सब्द जो है सोई है उत्प्रेक्षा (वेंक०)।

[६ अ] है—मनो सब्द इतना उत्प्रेक्षा (वेंक०)।

[७] राधो—राधे (भारत, वेंक०, वेल०)। सौं—मैं (भारत, वेल०); लै (वेंक०)।

[७ अ] नाहीं—नहीं ॥ अनुक्तिविषया वस्तूत्प्रेक्षा (वेंक०)।

अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा–(सवैया)

चंचल लोचन चारु विराजत पास लुरी अलकै थहरै।
नाक मनोहर औ' नकमोतिन की कछु बात कही न परै।
दास प्रभानि भस्यो तिय-आनन देखत ही मनु जाइ अरै।
खंजन साँप सुआ सँग तारे मनौं ससि बीच बिहार करै॥ ८॥

अस्य तिलक

इन सबको चंद्र बीच बिहार करिबो आचरजु है, तातैं अनुक्त-विषया कहिये॥ ८ अ॥

पुनः, यथा–(सवैया)

दास मनोहर आनन बाल को दीपति जाकी दिपै सब दीपै।
औन सुहाए विराजि रहे मुकताहल सौं मिलि ताहि समीपै।
सारी मिहीन सौं लीन विलोकि बखानतु हैं कवि के अवनीपै।
सोदर जानि ससीहि मिलो सुत संग लिये मनौं सिंधु मैं सीपै॥ ९॥

अस्य तिलक

सीप को ससि सौं मिलिबो आचरजु है तातैं अनुक्तविषया कहिये, सोदर जानिबो हेतुसमर्थन है। ९ अ॥

हेतूत्प्रेक्षा-लक्षणं–(दोहा)

हेतु फलनि के हेतु द्वै, सिद्ध असिद्ध बखान।
होनी सिद्ध, असिद्ध कौं अनहोनी पहिचान॥ १०॥

सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा-वर्णनं–(सवैया)

जौ कहौ काहू के रूप सौं रीझै तौ और को रूप रिझावनवारी।
जौ कहौ काहू के प्रेम पगे हैं तौ और को प्रेम पगावनवारी।
दासजू दूसरी बात न और इती बड़ी वेर वितावनवारी।
जानति हौं गई भूलि गुपालै गली इहि चोर की आवनवारी॥ ११॥

[८ अ] इन–खंजन, साँप, सुगा इन (वेंक०)। को–को संग (भारत)। चंद्र–चद्रमा (भारत), चद्रमा के (वेंक०)। कहिये–है (भारत); है, ताते अनुक्तिविषया अलंकार है (वेंक०)।

[९] सौं मिलि–संजुत (सर०)। के–को (भारत), जे (वेल०)।

[११] वारी–वारो (वेंक०, वेल०)। दूसरी०–दूसरो भेव (वेल०)। इती०–इतो अवसेर लगावनवारो (वेल०)। गई–गयो (वही)। गुपालै०–गुपालहिं पथ इतै कर (वही)।

अस्य तिलक

गली को भूलिबो सिद्ध विषया है, अचरजु नहीं है। ११ अ॥

असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा-वर्णनं-(दोहा)

पूस दिनन में ह्वै रहै, अगिनि-कोन में भानु।
मैं जानौं जाड़्वै बली, सोऊ डरै निदानु॥ १२॥

अस्य तिलक

सूरज को डरिबो असिद्ध हेतु है। १२ अ॥

(दोहा)

विरहिनि के असुआन तें, भरन लग्यो संसार।
मैं जानौं मरजाद तजि, उमड़्यो सागर खार॥ १३॥

अस्य तिलक

सागर को उमड़िबो असिद्ध हेतु है। १३ अ॥

सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा-वर्णनं-(दोहा)

बाल अधिक छवि लागि निज नैननि अंजन देति।
मैं जानौं मो हनन कौं, बानानि विष भरि लेति॥१४॥

अस्य तिलक

बाननि मैं विष भरिबे में मारिबे को फल सिद्ध है। १४ अ॥

विरहिनि असुअन विधु रहै, दरसावत नित सोधि।
दास बढ़ावन कौं मनौं, पूनो दिननि पयोधि॥१५॥

अस्य तिलक

पून्यौ-दिननि में पयोधि को बढ़िबो सिद्ध फल है। १५ अ॥

---

[१२] रहै—रह्यो (वेंक०), रहै (वेल०)। मैं०—जानति हौं जाड़ो (भारत, वेल०); जानत हौं जाड़ो (वेंक०)। सोऊ—वाचौं (भारत, वेल०)।

[१२ अ] असिद्ध—आश्चर्य है यातें असिद्धिविषया (वेंक०)। हेतु रूप (भारत)।

[१३ अ] हेतु—हेतोक उत्प्रेक्षा (वेंक०)।

[१४ अ] को०—की फलसिद्धि (भारत)।

[१५] दरसावत—बरसावत (वेल०)।

[१५ अ] दिननि—दिन (भारत); बढ़िबो—बाढ़िबो (भारत, वेंक०)। सिद्ध—सिद्धि (वेंक०)।

असिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा-वर्णनं—(दोहा)

खंजरीट नहिँ लखि परत कछु दिन साची बात।
बाल-दृगनि सम होन कौँ, मनौँ करत तप जात ॥ १६ ॥

अस्य तिलक

खंजन को तप कौँ जैबो असिद्ध बिषय है। १६ अ ॥

लुप्तोत्प्रेक्षा-लक्षणं—(दोहा)

लुप्तोत्प्रेक्षा तिहि कहैँ, वाचक बिन जो होइ।
याकी विधि मिलि जाति है, काव्यलिंग मैँ कोइ ॥१७॥

यथा

बिनहु सुमनगन बाग मैँ भरे देखियत भौँर।
दास आजु मनभावती, सैल कियो यहि ओर ॥१८॥

बालम कलिका-पत्र अरु, खौरि सजे सब गात।
लाल चाहिवे जोगु यह, चित्रित चंपक-पात ॥१९॥

अस्य तिलक

मनौँ सब्द लुप्त है, सोई वाचक है। १९ अ ॥

उत्प्रेक्षा की माला—(कवित्त)

चौखँडे तेँ उतरि बड़े ही भोर बाल आई,
देवसरि आई मानो देवी कोऊ व्योम तेँ।
सोभा सोँ सफरि खरी तट सोहै भीगे पट,
बलित बरफ सोँ कनकवेलि मो मतेँ।
धोए तेँ दिठौनादिक आनन अमल भयो,
कढ़ि गयो मानहु कलंक पूरे सोम तेँ।
अलकन जल-कन धावै मनौँ आवै चली,
पति पै हरष रली तारा तम तोम तेँ ॥ २० ॥

[१६ अ] कौँ०—करिबो (भारत)।

[१९] लाल—बाल (वेल०)। चाहिवे—जोहिवे (भारत)।

[१९ अ] है—कहै (वेंक०)।

[२०] सफरि—सपरि (वेल०)। भीगे—भींगो (भारत, वेंक०, वेल०),। धावै—धायो (वेंक०), धाये (वेल०)। मनौँ०—अग्र आवैं चले आवैं पाँति तारन की मानौँ (वेल०)। हरष—हरषि (भारत, वेंक०)। रली—नली (सर०)।

अथ अपन्हुति-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

और धरम जहँ थापिये, साँचो धरम दुराइ।
औरहि दीजै जुक्तिबल, और हेतु ठहराइ॥ २१॥
नैटि और सौं गुन जहाँ, कहँ और में थापु।
भ्रम काहू कौं ह्वै गयो, ताकौं मिटवत आपु॥ २२॥
काहू पूछ्यो मुकरि करि, औरै कहै बनाइ।
मिसु करि और कथन छ विधि, होत अपन्हुति भाइ॥ २३॥
धरम हेतु परजस्त भ्रम, छेक कैतवहि देखि।
वाचक एक नकार है, सबमैं निहचै लेखि॥ २४॥

धर्मापन्हुति, यथा—(सवैया)

चौहरी चौक सौं देख्यो कलामुख पूरब तें कढ़्यो आवत है री।
ठाढ़ो सँपूरन चोखो भरो बिपु सो लहि धावन धूमै घनै री।
माँजि मिसी जम जोर दयो साइ दात बिचै विच स्याम लगै री।
चाइ चबाइ बियोगिनि कौं दुजराज नहीं दुजराज है वैरी॥२५॥

हेतु अपन्हुति—(दोहा)

अरी घुमरि घहरात घन, चपला चमक न जानु।
काम कुपित कामिनिन पर, धरत सान किरवानु॥ २६॥

---

[२२] नैं—की (वेल०)। थापु—वापु (भारत)। आपु—आयु (वही)।

[२३] पूछ्यो—पून्यो (भारत); पूछे (वेंक०); बूस्यो (वेल०)। करि—तिहि (भारत); कै (वेल०)। और०—औरो कथन पट (वेल०)। 'वेंक०' में 'अस्य तिलक' देकर आधुनिक व्याख्या भी जुड़ी है।

[२४] धरम—सुद्द (वेल०)। छेक०—छेका कैतव (सर०)। कैतवहि—कहत्वहि (वेंक०)। निहचै—निश्चय (भारत, वेंक०, वेल०)।

[२५] चौहरी—चौहरे (वेल०)। सौं—तें (वही)। देख्यो—देखो (भारत, वेल०)। कलामुख—कलाधर (वेल०)। ठाढ़ो—ढारयौ (सर०)। चोखो—चोखे (वही)। धावन—धाइनि (सर०); धावरि (भारत)। धूमै—धूम (वेल०)। जम—जुँह (वेंक०); द्विज (वेल०)। चाइ—चाउ (सर०); चाई (भारत); चाव (वेल०)। चबाइ—चपाइ (सर०); चबाई (भारत); चबाव (वेल०)। दुजराज है—द्विजराजि है (भारत, वेल०)।

[२६] किरवानु—किरपान (वेंक०)।

पर्यस्तापन्हुति–(सोरठा)

कालकूट विष नाहि, विषा है केवल इंदिरा।
हर जागत छकि जाहि, वा सँग हरि नींद न तजै ॥ २७ ॥

भ्रांतापन्हुति–(सवैया)

आनन है अरविंद न फूल्यो अलीगन भूल्यो कहा मड़रात हौ।
कीर तुम्हैं कहा वाइ लगी भ्रम बिंव के ओठन कौं ललचात हौ।
दासजू व्याली न बेनी बनाव है पापी कलापी कहा इतरात हौ।
बोलती बाल न बाजति बीन कहा सिगरे मृग घेरत जात हौ ॥२८॥

छेकापन्हुति

दच्छिन जातिन्ह के विच ह्वैकै हरैं हरैं चाँदनी में चलि आयो।
बास वगारिकै ढारि रसै लगि सीरो कै हीरो कियो मनभायो।
दासजू वा बिन या उदवेग सो प्रान वही यह जानि हौं पायो।
भेट्यो कहूँ मनरौन अली नहिं री सखि राति को पौन सुहायो ॥२९॥

कैतवापन्हुति

दास लख्यो टटको करिकै नट कोऊ कियो मिस कान्हर केरो।
याको अचंभो न ईठि गनो इहि दीठि को बाँधिबो आवै घनेरो।
मो चित में चढ़ि आपु रह्यो उतरै न उपाइ कियो वहुतेरो।
तैंहूँ कहै अरु हौंहूँ लख्यो यहि ऊपर चित्त रह्यो चढ़ि मेरो ॥३०॥

अपन्हुतिन की संसृष्टि–(कवित्त)

एक रद है न सुभ्र साखा वढ़ि आई,
लंबोदर में विवेक-तरु जो है सुभ्र वेस को।
सुंडादंड कैतव हथ्यार है उदंड यह,
राखत न लेस अघ बिघन असेप को।

---

[२८] फूल्यो–फूले (भारत, वेल०) । भूल्यो–भूले (वही) । हौ–है (सर०) । कहा–कहो (सर०) । वाइ–वाई (भारत) ; वाय (वेल०) । मृग–मिलि (सर०, भारत) ।

[२९] रसै–कैसे (सर०) । कै०–कियो हियरो (वेल०) ।

[३०] उपाइ–अपाए (सर०) । तैंहूँ –तू हू (भारत) ।

मद कहै भूलि ना भरत सुधाधार यह,
ध्यान ही तेँ ही को हद हरन कलेस को।
दास यह भिजन विचारो तिहूँ तापनि कोँ,
दूरि को करतवारो करन गनेस को ॥ ३१ ॥

स्मरण, भ्रम, संदेह लक्षणं—(दोहा)

सुमिरन भ्रम सन्देह यह, लच्छन प्रगटै नाम।
उत्प्रेक्षादिक है नहीं, तदपि मिलै अभिराम ॥ ३२ ॥

स्मरण, यथा

कछु लखि कछु सुनि सुधि करो, सो सुमिरन सुखकंद।
सुधि आवत ब्रजचंद की, निरखि सँपूरन चंद ॥३३॥

यथा—(सवैया)

लखे सुखदानि पखानि तेँ जानि मयूरनि देति भगाइ भगाइ।
मने कै दियो पियरे पहिराउ कोँ गोंड़ मेँ प्यारे लगाइ लगाइ।
मुलावती याके हिये तेँ हरीहि कथानि मेँ दास पगाइ पगाइ।
कहा कहिये पिय बोलि पपीहा व्यथा जिय देत जगाइ जगाइ ॥३४॥

भ्रांत्यलंकार, यथा—(दोहा)

ओढ़े लाली जरद की, कचनबरनी बाल।
चतुर चिरी-चित फँदि गयो, भ्रम्यो भूलि रँगजाल ॥३५॥

अस्य तिलक

यह रूपकसंकलित है। ३५ अ ॥

---

[३१] सुभ्र—फल (वेल०)। यह—वह (भारत, वेल०)। सुधाधार—सुधादास (सर०)।

[३२] यह—ये (भारत, वेंक०), को (वेल०)। है—मैं (भारत, वेंक०, वेल०)।

[३३] करो—करिय (भारत, वेंक०), किये (वेल०)।

[३४] सुखदानि—सुखिदानि (भारत)। पखानि—पयान (वेंक०)। भगाइ०—भगाइ भगाई (वेंक०)। याके—वाके (वेल०)। जिय—तन (वही)।

[३५] की—लखि (भारत, वेंक०)। रँगजाल—गो जाल (भारत)।

(दोहा)

बिल बिचारि प्रबिसन लग्यो, व्यालसुंड मैं व्याल।
ताहू कारी ऊख भ्रम, लियो उठाइ उताल ॥३६॥

अस्य तिलक

यह अन्योन्यसकलित है। ३६ अ ॥

यथा–(सवैया)

पंननि की किरनारि खरी री हरीरी लतानि कौं तूलि रही है।
नीलक मानिक आभा अनूपम सोसनि लालनि हूलि रही है।
हीरनि मोतिन की दुति दासजू बेला चमेली सी फूलि रही है।
देखि जराउ को आँगन राउ को भौंरन की मति भूलि रही है ॥३७॥

अस्य तिलक

इहाँ उदात्त अलंकार को संकर है, फुलवारी को रूपक व्यंगि है। ३७ अ ॥

यथा–(कवित्त)

देखत ही जाकौं बैरीबृ द-गजराजनि मैं,
धीर न धरत जस जाहिर जहान है।
गजमुकुतानि को खिलौना करि डारतु है,
उमँगि उछाह सौं करत जब दान है।
बाहन भवानी को पराक्रम बसत और
अंगनि मैं सूरता को प्रगट प्रमान है।
हिंदूपति साहिब के गुन मैं बखाने,
मृगराज जिय जानै की हमारो गुनगान है ॥३८॥

---

[३६] बिल–बिन (वेंक०)। व्यालसुड–करीसुड (भारत)।
[३७] किरनारि०–किरनाली० (भारत, वेंक०); किरनै लहरै (वेल०)। नीलक–नीलम (भारत, वेल०)।
[३७ अ] को रूपक–रूपक (वेंक०)।
[३८] जाकौं–जाके (भारत, वेंक०, वेल०)। मैं–के (भारत, वेंक०); की (वेल०)। धरत–रहत (भारत, वेंक०, वेल०) । जब–जबै (वेंक०, वेल०)। और–औरै (भारत, वेंक०), उरु (बेल०)। प्रमान–प्रमानु (सर०), गुमान (भारत)। की–कै (भारत, वेल०)।

अस्य तिलक

इहाँ सब्दसक्ति तेँ भ्रांति अलंकार है, प्रतीपालंकार ब्यंगि है । ३८ अ ॥

अथ संदेहालंकार-वर्णनं—(सवैया)

लखे वहि टोल मैं नौलवधू इक दास भए दृग मेरे अडोल ।
कहौँ कटि खीन की डोलनो डौल की पीन नितंब उरोज की तोल ।
सराहौँ अलौकिक बोल अमोल की आनन-कौल मैं रंग-तमोल ।
कपोल सराहौँ कि नील निचोल किधौँ विय लोचन लोल अमोल ॥३९॥

यथा—(दोहा)

तम-दुख-हारिनि रवि-किरन, सीतलकारिनि चंद ।
विरह-कतल-काती किधौँ, पाती आनँदकंद ॥४०॥

यथा—(कवित्त)

चारु मुखचंद को चढ़ायो विधि किंसुक की,
सुक नयो बिंबाधर-लालच-उमंग है ।
नेह-उपजावन अतूल तिलफूल कैधौँ,
पानिप-सरोवरी की उरमि उतंग है ।
दास मनमथ-साहि कंचन-सुराही-मुख,
बंसजुत पालकी कि पाल सुभ रंग है ।
एक ही मैँ तीनौ पुर ईस को है अंस कीधौँ,
नाक नवला की सुरधाम सुरसंग है ॥४१॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये उत्प्रेक्षादिअलंकारवर्णनं
नाम नवमोल्लासः ॥ ९ ॥

[३८ अ] भ्रांत्यलंकार—भ्रांतालंकार (सर०, वेंक०) ।

[३९] इक—मृदु (वेल०) । दास—सास (भारत), हास (वेल०) । भए०—मयो दृग मेरो (सर०); मैं मेरो मयो मन डोल (वेल०) । की—को (भारत, वेंक०, वेल०) । की—कै (भारत) । की—कै (वही) । कौल—कोप (वेल०) । बिय—पिय (सर०); बिनि (भारत, वेल०) । अमोल—कपोल (भारत, वेल०), कलोल (वेंक०) ।

[४०] दुख—देख (सर०) । रवि०—तमकि दृग (वही), रवि कि दृग (भारत) ।

[४१] किंसुक की—किंसुक कै (भारत, वेल०), किंसुकन (वेंक०) । सुक०—

१०

अथ व्यतिरेक-रूपकालंकार-वर्णनं–(दोहा)

व्यतिरेकहु रूपकहु के भेद अनेक प्रकार।
दास इन्हैं उल्लेखजुत, गनौ तीनि निरधार ॥ १ ॥

व्यतिरेकालंकार-लक्षणं

पोषन करि उपमेय को, दोषन दै उपमान।
नहिं समान कहिये तहाँ, है व्यतिरेक सुजान ॥ २ ॥
कहुँ पोषन कहुँ दोषनै, कहूँ कहूँ नहिं दोउ।
चारि भाँति व्यतिरेक है, यह जानत सब कोउ ॥ ३ ॥

अथ पोषन दोषन दुहुँन को कथन

लाल लाल उनमानि कै, उपमा दीजै और।
मृदुल अधर सम होइ क्यों, विद्रुम होइ कठोर ॥ ४ ॥

यथा–(सवैया)

सखि वामैं जगै छनजोति-छटा इत पीतपटा दिनरैनि मड़ो।
वह नीर कहूँ बरसै सरसै यह तौ रसजाल सदा ही अड़ो।
वह सेत ह्वै जातो अपानिप ह्वै इहि रंग अलौकिक रूप गड़ो।
कहि दास बराबरि कौन करै घन सौं घनस्याम सौं बीच बड़ो ॥ ५ ॥

पोषन ही को कथन–(दोहा)

प्रगट तीनिहूँ लोक मैं, अचल प्रभा करि थाप
जीत्यो दास दिवाकरहि, श्रीरघुबीर-प्रताप ॥ ६ ॥

किंसुक यों (वेंक०) । सरोवरी–सरोवर (भारत, वेक०, वेल०) । साहि–साही (वेंक०, वेल०) । बस०–बासजुत (वेंक०); बाँसजुत (वेल०) । पालकी–पान की (भारत) । कि–कै (भारत); को (वेल०) । पाल–खान (भारत) ।

[२] दोषन–दूषन (वेल०) । दै–करि (भारत, वेंक०) ।

[३] दोषनै–दूषनै (भारत, वेल०) । कहूँ०–कहँ कहूँ (भारत, वेल०) ।

[४] बिद्रुम०–बिद्रुम निपट (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[५] इहि–एहि (वेल०) । कहि–कह (भारत, वेल०) ।

[६] प्रगट–प्रबल (वेंक०) ।

कमलप्रभा नहिं हनत है, दृगनि न देत अनंद।
कै न सुधाधर तियवदन, क्यों गरवित वह चंद ॥१८॥

अस्य तिलक

यामें प्रतीप की व्यंगि है। १८ अ ॥

अभेद रूपक अधिकोक्ति, यथा–(सवैया)

है रति को सुखदायक मोहन यों मकराकृत कुंडल साजै।
चित्रित फूलन को धनुवान तन्यो गुन भौंर की भ्रांति को भ्राजै।
सुभ्र स्वरूपनि मैं गनौ एक बिवेक हनै तिय-सैन-समाजै।
दासजू आजु बने ब्रज मैं ब्रजराज सदेह अदेह बिराजै ॥१९॥

यथा–(दोहा)

बाँधन डर नृप सौं करै, सागर कहा बिचार।
इनको पार न सत्रु है, अरु श्री-संग निहार ॥२०॥

अस्य तिलक

इहाँ व्यंग्यार्थ में राम को बिष्नु को रूपक है, वस्तु तें अलंकार। २० अ ॥

अभेद रूपक हीनोक्ति, यथा–(दोहा)

सबके देखत व्योम-पथ, गयो सिंधु के पार।
पच्छिराज बिनु पच्छ को, वीर समीरकुमार ॥२१॥

---

[१८] हनत–हरत (भारत, वेल०)। है–कै (वेंक०)। न देत०–देत आनंद (भारत, वेल०)। वह–कहु (वेंक०)।

[१८ अ] व्यंगि–सव्यंग्य (वेंक०)।

[१९] यों–सो (वेंक०)। चित्रित–चिह्नित (सर०)। भ्रांति–पाँति (वेल०)। भ्राजै–भाजै (सर०)।

[२०] बाँधन–बंधन (भारत, वेंक०, वेल०)। डर–डुर (भारत)। सौं–को (भारत)। बिचार–बिचारि (वेंक०, वेल०)। पार न–पारनु (वेंक०)। श्री०–हरि गई न नारि (वेंक०, वेल०)।

[२० अ] राम को बिस्नु को–X (भारत, वेंक०)।

यथा–(सवैया)

कंज के संपुट हैं पै खरे हिय मैं गड़ि जात ज्यौं कुंत की कोर हैं।
मेरु हैं पै हरि-हाथन आवत चक्रवती पै बड़ेई कठोर हैं।
भावती तेरे उरोजनि मैं गुन दास लख्यो सब औरई और हैं।
संभु हैं पै उपजावैं मनोज सुवृत्त हैं पै परचित्त के चोर हैं ॥२२॥

अस्य तिलक

इहाँ व्यतिरेक रूपक को संकर है। २२ अ ॥

पुनः लक्षणं–(दोहा)

रूपक होत निरंग पुनि, परंपरित परिनाम।
अरु समस्तविषयक कहैं, विविध भाँति अभिराम ॥२३॥

निरंग रूपक, यथा

हरिमुख पंकज भ्रुव धनुष, खंजन लोचन मित्त।
बिंब अधर कुंडल मकर, बसे रहत मो चित्त ॥२४॥

परंपरित रूपक, यथा

जहाँ विषय आरोपिये, और वस्तु के हेतु।
स्लेष होइ कै भिन्न पद, परंपरित सो चेतु ॥२५॥
सब तजि दास उदारता, रामनाम उर आनि।
ताप तिनूका-तोम कौं, अग्निकिनूका जानि ॥२६॥

परंपरितमाला श्लेष तें, यथा–(कवित्त)

कुवलय जीतिबे कौं वीर बरिबंड राजैं,
करन पै जाइबे कौं जाचक निहारे हैं।
सितासित अरुनारे पानिप के राखिबे कौं,
तीरथ के पति हैं अलेख लखि हारे हैं।

---

[२२] है पै–हैं ये (भारत, वेल०), पै है (वेंक०)। खरे०–खड़ो हिय मैं (वेंक०)। हरि०–हर हाथ न (भारत०), हरि हाथ मैं (वेल०)। बड़ेई–बड़ोई (सर०)। तेरे–तेरो (वही)। हैं पै–पै (वही)। के–को (वही)।

[२३] पुनि–पै (वेंक०)। कहैं–कहूँ (वेंक०)।

[२४] भ्रुव–भ्रू (भारत, वेल०)। बिंब०–बिंबाधर (सर०)।

[२५] विषय–वस्तु (भारत०, वेंक०)।

[२६] उदारता–उदासिता (भारत०, वेंक०, वेल०)। कौं–कै (भारत)।

बेधिबे कौं सर मारि डारिबे कौं महा बिष,
मीन कहिबे कौं दास मानस बिहारे हैं।
देखत ही सुबरन हीरा हरिबे कौं,
पस्यतोहर मनोहर ये लोचन तिहारे हैं ॥२७॥

यथा वा, भिन्नपद

नीति मग मारिबे कौं ठग हैं सुभग मन,
बालक बिकल करि डारिबे कौं टोने हैं।
डीठि-खग फाँदिबे कौं लासाभरे लागैं हिय,
पाँजरे मैं राखिबे कौं खंजन के छौने हैं।
दास निज प्रान-नाथ अधर तैं बाहिर न
राखत हैं केहूँ कान्ह कृपिन के सोने हैं।
ग्यान तरिवर तोरिबे कौं करिवर जिय,
रोचन तिहारे प्रिय रोचन सलोने हैं ॥२८॥

माला रूपक, यथा

जच्छिनी सुखद मो उपासना किये की श्री जु,
सारस हिये की दारु-दुख की जु आगि है।
वपुष बरत की जु बरफ बनाई,
सीत-दिन की तुराई जो गुनन्ह रही तागि है।
दास दृग-मीनन की सरित सुसीली, प्रेम
रस की रसीली कन्न सुधारस पागिहै।
हाइ मम गेह-तमपुंज की उज्यारी,
प्रानप्यारी रवकंठ सौं कबहि कठ लागिहै ॥२९॥

---

[२७] मारि०—मोहि मारिबे (वेंक०)।

[२८] मन—जिय (बेल०)। लागैं—लग (सर०)। केहूँ—ज्यौंहू (वही)। तरिवर—तरुवर (भारत, बेल०); तरुवर (वेंक०)। जिय—मन (बेल०)। रोचन—लोचन (वेंक०)। प्रिय—तिय (भारत)।

[२९] श्री जु—सिरी (बेल०)। जु—सु (वही)। बनाई—बसाई (भारत, वेंक०, बेल०)। तुराई—रजाई (बेल०)। सुसीली—सुसीले (वेंक०), सुसेल्ही (बेल०)। रस की—रसिक (भारत, बेल०)।

यथा वा

अब तौ बिहारी के वे बानक गए री तेरी
तनद्युति-केसरि कौं नैन कसमीर भो।
श्रौन तुअ बानी-स्वातिबुंदन कौं चातिक भो,
स्वासन को भरिबो द्रुपदजा को चीर भो।
हिय कौं हरष मरुधरनि कौं नीर भो री,
जियरो मदन-तीरगन कौं तुनीर भो।
एरी बेगि करिकै मिलाप थिर थापु नत,
आप अब चाहतु अतन कौं सरीर भो ॥३०॥

परिणाम रूपक–(दोहा)

करत जु है उपमान ह्वै, उपमेयहि को काम।
नहिं दूषन उनमानिये, है भूषन परिनाम ॥ ३१ ॥
करकंजनि खंजनदृगनि, ससिमुखि अंजन देति।
बीजहास तें दासजू, मनविहंग गहि लेति ॥ ३२ ॥

समस्तविषयक रूपक-लक्षण

सकल वस्तु तें होत जहँ, आरोपित उपमान।
तहि समस्तविषयक कहँ रूपक बुद्धिनिधान ॥ ३३ ॥
कहुँ उपमावाचक कहूँ उत्प्रेक्षादिक होइ।
कहूँ लिये परिनाम कहुँ, रूपक रूपक सोइ ॥ ३४ ॥

उपमावाचक, यथा–(कवित्त)

नेम प्रेम साहि मति विमति सचिव चाहि,
दुकुल की सीवँ हाव भाव पील सरि जू।
पति औ' सुपति नैनगति ज्यौं तरल तुरी,
सुभासुभ मनोरथ रथ रहै लरि जू।

---

[३०] मदन०–मनोभव सरनि (भारत, वेंक०)। अतन कौं–अतन के (सर०)।
[३२] बीज–बिज्जु (भारत, वेल०)।
[३३] जहँ–है (भारत)।
[३५] सीवँ–सील (भारत, वेंक०)। ज्यौं–और (भारत, वेंक०, वेल०)। ज्यौं–त्यौं (भारत, वेल०)।

आठौ गाँठि धरम की आठौ भाव सात्विकी ज्यौं,
प्यादे दास दुहुँघा प्रबल भिरे अरि जू।
लाज औ' मनोज दोऊ चतुर खेलार उर,
वाके सतरंज कैसी बाजी राखी भरि जू॥ ३५॥

उत्प्रेक्षावाचक, यथा

धूसरित धूरि मानौं लपटी बिभूति भूरि,
मोतीमाल मानहुँ लगाए गंग गल सौं।
बिमल बघनहा बिराजै उर दास मानौं,
बालबिधु राख्यो जोरि द्वै कै भालथल सौं।
नीलगुन गूँदे मनिवारे अभरन कारे,
डौँरू कर धारे जोरि द्वैक उतपल सौं।
वाके कमला के पति गेह जसुदा के फिरैं,
छाके गिरिजा के ईस मानौं हलाहल सौं॥ ३६॥

अपन्हुतिवाचक, यथा

धावैं धुरवा री न दवारी अनवारी की है,
कारी कारी घटा न मतंग मदधारी है।
न्यारी न्यारी दिसि चारी चपला चमतकारी,
बरनैं अनारी ये कटारी तरवारी है।
भेरुा किलकारी दास दुदु न मरारी, पौन
दुंदुभि-धुकारी, तोप गाज डरारी है।
बिना गिरिधारी मार भारी मिस मैन,
ब्रजनारी-प्रानहारी देवदलनि उतारी है॥ ३७॥

---

[३६] गल–नल (भारत, वेंक० बेल०)। बिमल०–बंक बघनहिया (बेल०)। द्वै–द्वै (भारत, वेंक०)। गुन–गन (सर०)। गूँदे–गूँथे (बेल०)। डौँरू०–डौरुफ कर धारे जोरि द्वैक उत्पल नाल सो (सर०)। दर–दर (भारत, वेंक०)।

[३७] भेरुा–भेरी (भारत, वेंक०)।

रूपक रूपक, यथा

गिलि गए स्वेदनि जहाँई तहाँ छिलि गए,
मिलि गए चंदन भिरे हैं इहि भाय सौं।
गाढ़े ह्वै रहे ही सहे सन्मुख तुकानि लीक,
लोहित लिलार लागी छीट अरिघाय सौं।
श्रीमुख-प्रकास तन दास रीति साधुन की,
अजहूँ लौं लोचन तमीले रिसिताय सौं।
सोहैं सरबंग सुख पुलक सोहाए हरि,
आए जीति समर समर महाराय सौं ॥ ३८ ॥

यथा वा

केलिथल कुंड साजि समिध सुमनसेज,
बिरह की ज्वाल चाल बरै प्रति रोमु है।
उपचार आहुति कै बैठी सखी आसपास,
स्रुवा पल नैन नेह-अँसुवा अधोमु है।
वलिपसु मोद भयो निलपनि मंत्र ठयो,
अवधि की आस गनि लयो दिन नोमु है।
दास चलि वेगि किन कीजिये सफलकाम,
रावरे सदन स्याम मदन को होमु है ॥ ३६ ॥

परिणाम समस्तविषयक-(सवैया)

अनी नेह-नरेस की माधौ बने वनी राधौ मनोज को फौज खरी।
भटभेरो भयो जमुनातट दासजू सान दुहूँ की जु सान धरी।
उरजात चँडोलनि गोल कपोलनि जौ लौं मिलाप सलाह करी।
तौ लौं वाके हरौल भटाच्छन सौं री कटाच्छन की तरवारि परी ॥४०॥

---

[३८] गाड़े–गाढे (भारत, वेल०)। ही–हैं (वही)। सरबंग–सब अंग (वही)।

[३६] सखी०–सखिआन (भारत)। अधो०–अधोम है (वेल०)। भयो–भये (वही)।

[४०] राधौ–राधे (वेल०)। सान–साध (वही)। दुहूँ०–दुहूँन की सान (वही)। जु–ज्यौं (सर०)। तौ–तब (वेल०)। वाके–वीर (भारत); X (वेंक०); री (वेल०)।

अथ उल्लेखालंकार-वर्णनं-(दोहा)

एकहि में बहु बोध कै बहु गुन सों उल्लेख।
परंपरितमालानि सौं, लीन्हे भिन्न बिसेष॥ ४१॥

एक में बहुते को बोध, यथा-(सवैया)

प्रीतम प्रीतिमई उनमानै परोसिनि जानै सुनीतिनि सों ठई।
लाजसनी है बड़ीन भनी बरनारिन में सिरताज गनी गई।
राधिका कौं ब्रज की जुवती कहैं याहि सोहागसमूह दई दई।
सौती हलाहल सोती कहैं औ' सखी कहैं सुंदरि सील-सुधामई॥ ४२॥

एकै में बहुत गुन, यथा-(दोहा)

साधुन कौं सुखदानि है, दुर्जनगन-दुखदानि।
बैरिन विक्रम हानिप्रद, राम तिहारो पानि॥ ४३॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये
व्यतिरेकरूपकालंकारवर्णनं नाम
दशमोल्लास.॥ १०॥

११

अथ अतिशयोक्ति-अलंकार-वर्णनं-(दोहा)

अतिसयोक्ति बहु भाँति की, नद्दाचो तहँ ल्याइ।
अधिक अल्प सविसेपनो, पंच भेद ठहराइ॥ १॥

---

[४१] एकहि-एकै (भारत, वेंक०, वेल०)। लीन्हे-लीन्हो (वही)।
[४२] सुनीतिनि-सुनीतिहि (सर०)।
[४३] गन-को (वेल०)। बैरिन-विप्रन (वही)। हानि-दान (वही)
[१] उद्दाचो-अरु उदास (वेल०)। अधिक०-अधिकाल्पा (सर०)।

अथ अतिशयोक्ति-लक्षणं

जहँ अत्यंत सराहिये. अतिसयोक्ति सु कहंत।
भेदक सम्बंधो चपल. अक्रमाति अत्यंत ॥ २ ॥

भेदकातिशयोक्ति-(दोहा)

भेदकातिसयउक्ति जहँ, सु वहम ही सब बात।
जग तेँ यह कछु औरई, सकल ठौर कहि जात ॥ ३ ॥

यथा-(कवित्त)

भावी भूत वर्तमान मानवी न ह्वैहै ऐसी,
देवी दानवीन हूँ सोँ न्यारो एक डौरई।
या विधि की वनिता जौ विधना बनायो चाहै,
दास तौ समुझिये प्रकासै निज बौरई।
चित्रित करैगो क्योँ चितेरो यहि चाहि काल्हि,
परोँ दिन बीते दुति औरै और दौरई।
आजु भोर औरई पहर होत औरई है,
दुपहर औरई रजनि होत औरई ॥ ४ ॥

(दोहा)

अनन्वयहु की व्यंगि यह, भेदकातिसय उक्ति।
उतहि कियो थापित निरखि, परबीनन की जुक्ति ॥ ५ ॥

---

[२] सराहिये-सराहियो (सर०)। अक्रमाति-अक्रम अति (वही)।

[३] सु वहम ही-सुनहमही (सर०), सुनह मही (भारत), सुन हमही (वेंक०); मग मैं है (वेल०)।

[४] ह्वैहै-होइ (वेल०)। न्यारो०-न्यारे यह (भारत); न्यारो यह (वेंक०)। बनायो०-बनायी चहै (भारत), बनायो चहै (वेल०)। चित्रित०-कैसे लिखे चित्र को चितेरो चकि जात लखि दिन द्वैक (वेल०)। करैगो०-करै धौं क्योँ (भारत), करै क्योँ है (वेंक०)। यहि०-यह चालि कालि (भारत, वेंक०)। होत-आए (सर०)।

[५] 'सर०' मैं छूट गया है।

संबंधातिशयोक्ति-लक्षणं

संबंधातिसयोक्ति कौं, द्वै विधि बरनत लोग।
कहुँ जोग तेँ अजोग है, कहुँ अजोग तेँ जोग ॥ ६ ॥

योग्य तेँ अयोग्यकल्पना, यथा

छामोदरी उरोज तुअ, होत जु रोज उतंग।
अरी इन्हैँ या अंग मैं, नहिं समान को ढंग ॥ ७ ॥

यथा-(सवैया)

घाँघरो झीन सौँ सारी मिहीन सौँ पीन नितंबनि भार उठै खचि।
दास सुवास सिँगार सिँगारत बोझनि ऊपर बोझ उठै मचि।
स्वेद चलै मुखचंद तेँ च्वै डग द्वैक धरै महिं फूलन सौँ सचि।
जात है पंकज-पात बयारि सौँ वा सुकुमारि की लंक लला लचि ॥ ८ ॥

अस्य तिलक

कुच अंग मैं अमाइबे जोग है कह्यो न अमाइहै, नायिका चलिबे जोग्य है कह्यो न चलि सकैगी। ८ अ ॥

अयोग्य तेँ योग्यकल्पना-(दोहा)

कोकनि अति सब लोक तेँ, सुखप्रद रामप्रताप।
बन्यो रहत जिन्ह दंपतिन्ह, आठो पहर मिलाप ॥ ९ ॥

यथा-(कवित्त)

कंचनकलित नग-लालनि वलित सौध,
द्वारिका ललित जाकी दीपति अपार है।
ताके पर वलभी विचित्र अति ऊँची जासौँ
निपटै नजीक सुरपति को अगार है।

---

[६] कहुँ अजोग तेँ-कहूँ अजोगै (बेल०)।

[७] तुअ-तू (वेंक०)। जु०-उरोज (वही)। खचि-हचि (सर०)। जात-जातु (सर०, भारत); जाति (वेंक०)। की-को (भारत, वेंक०, बेल०)।

[८ अ] अमाइबे-अमाव (भारत); अमाव (वेंक०)। अमाइहै-अमात है (भारत, वेंक०)।

दास जब जब जाइ सजनी सयानी संग,
रुकमिनी रानी तहाँ करत बिहार है।
तब तब सची सुर-सुंदरी-निकर लै,
कलपतरु-फूल लै मिलत उपहार है॥१०॥

चपलातिसयोक्ति– (दोहा)

निपट उताली सौं जहाँ, बरनत हैं कछु काज।
सो चपलातिसयोक्ति है, सुनौ सुकवि-सिरताज॥११॥

यथा– (कवित्त)

काहू सोध दयो कंसराइ के मिलाइबे को,
लेन आयो कान्ह कोऊ मथुरा अलंग तें।
त्यौं ही कह्यो आली सो तौ गयो हरि ब्याब दयो,
मिलैं हम कहा ऐसे मूढ़ बिन ढंग तें।
दास कहै ता समै सोहागिनि को कर भयो
बलया-बिगत दुहूँ बातनि प्रसंग तें।
आधिक ढरकि गईं बिरह की छामता तें,
आधिक तरकि गईं आनँद-उमंग तें॥१२॥

पुनः

तेरे जोग काम यह राम के सनेही,
जामवंत कह्यो औधिहू को द्यौस दस द्वै रह्यो।
एती बात अधिक सुनत हनुमंत गिरि
सुंदर तें कूदिकै सुबेल पर ह्वै रह्यो।
दास अति गति की चपलता कहाँ लौं कहौं,
भालु-कपि-कटक अचंभा जकि ज्वै रह्यो।
एक छिन वारपार लगि वारापार के
गगन-मध्य कंचन धनुप ऐसो वै रह्यो॥१३॥

---

[१०] ताके०–जाकी बर (भारत, वेल०)। निकर०–न सग मैं (वेल०)। फूल–फलु (सर०)। मिलत–लै देती (वेल०)।

[११] उताली–सीघ्रता (वेल०)।

[१२] सोध०–कह्यो आय (वेल०)। तौ०–न गयो (भारत); गयो न (वेंक०)। हरि०–वह अब दैव (वेल०)। आधिक–अधिक (सर०, वेंक०, वेल०)।

[१३] सुनत–सुने ते (भारत)। लगि–लागी (भारत, वेल०)।

अस्य तिलक

यामैं उपमा को अंगांगी संकर है। १३ अ॥

पुनः–(सवैया)

चकि चौंकवी चित्रहु के कपि सौं लकि क्रूर-कथानि सुने जु डरै।
सुनि भूत पिसाचनि की चरचानि विमोहित ह्वै अकुलाइ परै।
चलिवो सुनि पाउ दुखै, तन घाम के नामहि सौं स्रम भूरि भरै।
तिहि सीय चह्यो वन को चलिवो हिय रे धृग तू न अजौं विहरै॥१४॥

अक्रमातिसयोक्ति–(दोहा)

अक्रमातिसयउक्ति जहँ, कारज कारन साथ।
भू परसत हैं साथ ही, वो सर अरु अरिमाथ॥ १५॥

यथा–(कवित्त)

राम असि तेरी असु वैरिन को कीन्हो हाथ,
तातैं दोऊ काज एक साथ ही छजतु हैं।
ज्यौं ही यह कोस कौं तजति है दयाल त्यौं ही,
वेऊ सब निज निज कोस कौं तजतु हैं।
दास यह धारा को सजति जब जब
तब तब वे सकल अंसुधारा कौं सजतु हैं।
याकौं तूं कँपाइकै भजावत है ज्यौं ज्यौं त्यौं त्यौं,
वेऊ कँपि कँपि ठौर ठौरनि भजतु हैं॥१६॥

अत्युक्ति, यथा–(दोहा)

जहाँ दीजिये जोग्य कौं, अधिक जोग्य ठहराइ।
अलंकार अत्युक्ति तहँ, बरनत हैं कविराइ॥१७॥

यथा–(सवैया)

एती अनाकनी कीबो कहा रघु के कुल मैं को कहाइकै नायक।
आपनो मेरो धौं नाम बिचारौ हौं दीन अधीन तूँ दीन कौं दायक।

[१३ अ] 'सर०' मैं छूट गया है

[१४] तिहि०–तेहि सौं पि (वेल०)। हिय०–हियरौ धिग (वही)।

[१६] हाथ–हाल (भारत, वेल०)। छजतु–सजतु (भारत, वेंक०, वेल०)।
है–हौ (वेल०)।

मैं हौं अनाथ अनाथनि मैं इक तेरोई नाम न दूजो सहायक।
मंगन तेरे को मंगन सौं कलपद्रुम आजु है मॉगिबे लायक ॥१८॥

यथा–(दोहा)

सुमनमई महि में करै, जब सुकुमारि विहार।
तब सखियों संगहि फिरैं, हाथ लिये कचभार ॥१९॥

अत्यंतातिशयोक्ति

जहॉं काज पहिले सधै, कारन पीछे होइ।
अत्यंतातिसयोक्ति तिहि, बरनत हैं सब कोइ ॥२०॥

यथा–(सवैया)

जातैं सबै हुते माह की राति निदाह के द्यौस को साजु सजावते।
फेरि विदेस को नाम न लेते जौ स्याम दसा यह देखन पावते।
दास कहा कहिये सुनिहौं सुनि प्रीतम आवते प्रीतम आवते।
जात भई पहिले वह ताप तौ पीछे मिलाप भयो मनभावते ॥२१॥

(दोहा)

अतिसयोक्ति सभावना सकर करो निबाहु।
उपमा और अपन्हुत्यो, रूपक उत्प्रेचाहु ॥२२॥

संभावना-अतिशयोक्ति, यथा–(कवित्त)

सागर सरित सर जहँ लौं जलासै जग,
सब मैं जौ केहूँ किल कज्जल रलावई।
अवनि अकास भूरि कागद गजाइ लै,
कलम कुस मेरु-सिर बैठक बनावई।

---

[१८] मैं को–बीच (वेल०)। बिचारौ०–बिचारिहौ (वेंक०)। दीन–हनी (भारत)। मैं हौं–हौं तौ (वेल०)। तेरे०–तेरो के (सर०); तेरो को (भारत), तेरे यौं (वेंक०)।

[१९] संगहि–सँगही (भारत, वेंक०, वेल०)।

[२१] भई–भयो (भारत, वेल०)। वह–तन (वही)। तौ–औ (वही)।

दास दिन रैनि कोटि कलप लौं सारदा,
　सहसकर ह्वै जौ लिखिबे ही चित लावई।
होइ हद काजर कलम कागदन को,
　गुपाल गुन-गान को तऊ न हद पावई ॥२३॥

उपमा-अतिसयोक्ति–(दोहा)

बुधिबल तें उपमान पर अधिक अधिकई होइ।
तब उपमा-अत्योक्ति है, प्रौढ़उक्ति है सोइ ॥२४॥

यथा–(सवैया)

दास कहै लसै मॉदो कुहू की अँध्यारी घटा घन से कच कारे।
सूरजबिंब में ईंगुर-बोरे बँधूक से हैं अधरा अरुनारे।
बाड़ौ की ऑंच तें ताए बुझाए महाविष के जम जी के सँवारे।
मारन-मंत्र से बीजुरी-सान लगे ये नराच से नैन तिहारे ॥२५॥

सापन्हुति अतिशयोक्ति–(दोहा)

जहँ दीजै गुन और को, औरहि में ठहराइ।
सापन्हुति अत्योक्ति तिहि, बरनत हैं कविराइ ॥२६॥

यथा–(सवैया)

तेरहीं नीके लख्यो मृग नैननि तोही कों सत्य सुधाधर मानैं।
तोही सौं होति निसा हरि कों हम तोही कलानिधि काम की जानैं।
तेरे अनूपम आनन की पदवी उहि कौं सब देत अयानैं।
तूही है बाम गोबिंद को रोचन चंदहि जौ मतिमंद बखानैं ॥२७॥

[२३] भूरि–भरि (भारत, वेंक०); होय (वेल०)। गजाइ०–कलपतरु कलम सुमेर (वेल०)। कर–करैं (सर०)। जौ–के (वेल०)। को–गो (सर०); की (भारत)।

[२४] तब०–सो उपमातिसयोक्ति (वेल०)।

[२५] लसै–लगै (भारत, वेंक०, वेल०)। ताए–ताप (भारत), तापे (वेल०)। जी के–आप (वेल०)। लगाए–लगे ये (भारत, वेल०)।

[२६] सापन्हुति०–अतिसयोक्ति सापन्हु (वेल०)।

[२७] तेरहीं–तेरोई (भारत, वेल०)। लख्यो–लगैं (भारत); लसैं (वेल०)। सत्य–नीके (भारत, वेंक०); सब (वेल०)। तेरे–तेरो (भारत, वेल०) है–हो (वेंक०)। रोचन–लोचन (भारत, वेंक०); रोचक (वेल०)।

अस्य तिलक

प्रजस्तापन्हुति में हेतु प्रगट करत है, यामें नाहीं। २७ अ ॥

रूपक-अतिशयोक्ति—(दोहा)

विदित जानि उपमान को, कथन काव्य में देखि।
रूपकतिसयउक्ति सो, वर्न एकता लेखि ॥२८॥

यथा

दास देवदुर्लभसुधा राहुसंक-निरसंक।
सकलकला कब ऊगिहै, विगतकलंक मयंक ॥२९॥

यथा—(सवैया)

चंद में ओप अनूप चढ़ै लगी रागनि की उमड़ी अधिकाई।
सोति कलिंदिजा की कछु होति है कोकनि के दरम्यान लखाई।
*दास*जू कैसी चँवेली खिलै लगी फैली सुवासहु की रुचिराई।
खंजन कानन ओर चले अवलोकि तुम्हैं हरि साँझ सोहाई ॥३०॥

उत्प्रेक्षा-अतिशयोक्ति, यथा

दास कहाँ लौं कहौं मैं वियोगिनि के तन तापनि की अधिकाई।
सूखि गए सरिता सर सागर औनि अकास धरा अकुलाई।
काम के वस्य भए सिगरे जग यातें भई मनो संभु-रिसाई।
जारिकै फेरि सँवारन कौं छिति के हित पावक ज्वाल बढ़ाई ॥३१॥

अथ उदात्त अलंकार—(दोहा)

संपति की अत्युक्ति कौं, सुकवि कहैं उदात।
जहँ उपलच्छन बड़ेन्ह को, ताहू की यह बात ॥३२॥

---

[२८] उपमान—उपमहि (भारत, वेंक०)।

[३०] खिलै—खिली (भारत) ; खुली (वेंक०)। फैली—फैलै (भारत)। अवलोकि०—अवलोकत हौ (भारत, वेंक०) ; अवलोकत ही (वेल०)।

[३१] औनि०—स्वर्ग अकास (भारत, वेंक०) ; स्वर्ग पताल (वेल०)। भए०—भयो सिगरो (वेल०)।

[३२] सुकवि०—सब कवि कहैं उदात (वेल०)।

[संपति की अत्युक्ति] यथा

जगत जनक बरनो कहा, जनक-देस को ठाट।
सहल महल हीरन बने, हाट बाट करहाट ॥३३॥

बड़न्ह को उपलच्छण

भूषित संभु स्वयंभु सिर, जिन्ह के पग की धूरि।
हठि करि पाँव झँवावती, तिन्ह सौं तिय मगरूरि ॥३४॥

यथा—(कवित्त)

महावीर पृथ्वीपति दल के चलत ढलकत
बैजयंती खलकत ज्यौं सुरेस को।
दास कहै बलकत बल महावीरन्ह के,
घलकत डर मैं महीप देस देस को।
फलकत बाजिन्ह के भूरि धूरिधारा उठै,
तारा ऐसो झलकत मंडल दिनेस को।
थलकत भूमि हलकत भूमिधर,
छलकत सातौ सिंधु दलकत फन सेस को ॥३५॥

अथ अधिकालंकार-वर्णनं—(दोहा)

अधिकारी आधेय की, जहँ अधार तैं होइ।
अरु अधार आधेय तैं, अधिक अधिक ये दोइ ॥३६॥

आधार तें आधेय-अधिकता

सोभा नंदकुमार की, पारावार अगाध।
दास बोछरे दृगनि मैं, क्यौं भरिये भरि साध ॥३७॥

आधेय तें आधार-अधिकता, यथा

बिस्वामित्र मुनीस की, महिमा अपरंपार।
करतलगत आमलक सम, जिन्ह कौं सब संसार ॥३८॥

---

[३३] बरनो-बरनौं (भारत)।
[३४] पाँव०-पाँ धुवावती (वेंक०)।
[३५] ज्यौ-ज्यौं (भारत, वेंक०); जी (वेल०)। बल०-महाबल बीरन्ह (भारत, वेल०); महाबल बीरन (वेंक०)। बाजिन्ह-बारन (वेल०)।
[३६] अधिकारी-अधिकाई (भारत, वेल०)।
[३७] बोछरे-ओछरे (भारत, वेल०); बोछरे (वेंक०)।

यथा—(सवैया)

सातौ समुद्र घिरी बसुधा यह सातौ गिरीस धरे सब ओरै ।
सात ही द्वीप सबै दरम्यान मैं होहिंगे खंड किते तेहि ठौरै ।
दास चतुर्दसै लोक प्रकासित है ब्रहमंड इकीस ही जोरै ।
एतेही मैं भजि जैहै कहाँ खल श्रीरघुनाथ सौं बैर बिथोरै ॥३९॥

अस्य तिलक

इहाँ व्यंग्यार्थ मैं राम को अमल अधिक है जग तैं । ३९ अ ॥

पुनः—(दोहा)

सुनियत जाके उदर मैं, सकल-लोक-बिस्तार ।
दास बसै तो उर कहूँ, सोई नंदकुमार ॥४०॥

अथ अल्पालंकार-वर्णनं

अल्प अल्प आधेय तैं, सूछम होइ अधार ।
छला छिगुनिया-छोर को, पहुँचनि करत बिहार ॥४१॥

यथा

दास परम तनु सुतनु-तनु, भो परिमान प्रमान ।
तहाँ न बसियत साँवरे, तुम तैं तनु को आन ॥४२॥

यथा—(सवैया)

कोऊ कहै करहाट के तंतु मैं काहू परागनि मैं उनमानी ।
ढूँढहु री मकरंद के बुंद मैं दास कहैं जलजा-गुन-ज्ञानी ।
छामता पाइ रमा ह्वै गई परजंक कहा करै राधिका रानी ।
कौल मैं दास निवास किये है तलास कियेहूँ न पावत प्रानी ॥४३॥

[३९] सबै–धरे (भारत, वेंक०) ।

[३९ अ] मैं–तैं (भारत, वेंक०) ।

[४०] कहूँ–सदा (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[४१] सूछम०–सूछम होइ आधार (भारत, बेल०); सूछम होइ अधार (वेंक०) । पहुँचनि–भुज मैं (वेल०) ।

[४२] परम०–परम लघु (वेंक०) । न०–बसतु हो (भारत, वेंक०, वेल०) । तनु–लघु (वही) ।

[४३] करहाट०–करहाटक (वेंक०) । ढूँढहु०–ढूँढि फिरे (वेल०) । जलजा०–जलजातन (भारत, वेंक०, बेल०) ।

अथ विशेषणालंकार-वर्णनं-(दोहा)

अनाधार आधेय अरु, एकहि तैं बहु सिद्धि।
एकै सब थल बरनिये, त्रिविधि बिसेषन-वृद्धि ॥ ४४ ॥

अनाधार आधेय, यथा

सुभदाता सूरो सुकवि सेत करै आचार।
विना देहहूँ दास ये, जीवत इहि संसार ॥ ४५ ॥

एकहि तें बहु सिद्धि, यथा

तिय तुव तरल कटाच्छ जे, सँहैं धीर उर धारि।
सही मानिये तिन्ह सह्यो, तुपक तीर तरवारि ॥ ४६ ॥

एकै सब थल बरनिबो, यथा

जल मैं थल मैं गगन मैं, जड़-चेतन मैं दास।
चर-अचरन मैं एक है, परमातमा-प्रकास ॥ ४७ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये अतिशयो-
क्त्यादिअलंकारवर्णन नाम एका-
दशमोल्लास. ॥ ११ ॥

१२

अथ अन्योक्त्यादि-अलंकार-वर्णनं-(दोहा)

अप्रस्तुतपरसंस अरु, प्रस्तुतअंकुर लेखि।
समासोक्ति व्याजस्तुत्यौ, आक्षेपहि अवरेखि ॥ १ ॥
परजाजोक्तिसमेत किय, पट भूषन इकठौर।
जानि सकल अन्योक्तिमय सुनहु सुकविसिरमौर ॥ २ ॥

---

[४५] सेत–सेतु (भारत, वेंक०, वेल०)। जीवत०–जीव तरहिं (भारत)।
[४६] मानिये०–मानु ते सहि चुके (भारत); मानि० (वेंक०)।
[४७] एक है–देखिये (भारत, वेंक०), एक ही (वेल०)।
[१] मय–मैं (भारत, वेल०)।
[२] है–द्वै (भारत)।

अप्रस्तुतप्रशंसा के भेद–(दोहा)

कारजमुख कारनकथन, कारन के मुख काज।
कहुँ सामान्य विसेप है, होत ऐसेही साज ॥ ३ ॥
कहूँ सरिस-सिर डारिकै, कहै सरिस सों बात।
अप्रस्तुतपरसंस के, पाँच भेद अवदात ॥ ४ ॥
कवि-इच्छा जिहि कथन की, प्रस्तुत ताकों जानु।
अनचाहेहुँ कहे परै, अप्रस्तुत सो मानु ॥ ५ ॥
अप्रस्तुत के कहत, जहँ प्रस्तुत जान्यो जाइ।
अप्रस्तुतपरसंस तेहि, कहँ सकल कविराइ ॥ ६ ॥
दोऊ प्रस्तुत देखिकै, प्रस्तुतअंकुर लेखि।
समासोक्ति प्रस्तुतहि तें अप्रस्तुत अवरेखि ॥ ७ ॥
इनमें स्तुति-निंदानिमैं, व्याजस्तुति पहिचान।
सबमें यह जोजित किये, होत अनेक विधान ॥ ८ ॥

अथ अप्रस्तुतप्रशंसा, कारजमुख कारन को कथन–(कवित्त)

न्हान समै दास मेरे पायनि पर्‌यो है सिंधु,
तट नररूप ह्वै निपट बेकरार में।
मैं कही तूं को है, कह्यो बूझत कृपा कै तौ,
सहाय कछु करौ ऐसे संकट अपार में।
हौं तौ बड़वानल बसायो हरि ही को मेरी
विनती सुनावौ द्वारिकेस-दरबार में।
बृज की अहीरिन की अँसुवावलित आइ,
जमुना जरावै मोहिं महानल-झार में ॥ ९ ॥

---

[४] कहै–कहत (भारत, वेंक०)। पाँच–पच (वही)।
[५] अनचाहेहुँ०–अनचहिहूँ सु० (भारत) ; अनचाहितहूँ कहि० (वेंक०); अनचाहो कहिवे परो (वेल०)।
[६] जहँ–हीं (वेल०)। कहँ–कहहिं (भारत, वेंक०) ; कहत (वेल०)।
[७] देखिकै–होत जहँ (वेल०)।
[८] निंदानि०–निंदा मिलें (भारत, वेंक०, वेल०)।
[९] है–हो (सर०)। बूझत–बूझतो (वही) ; बूझती (भारत, वेंक०)। हौं तौ–मैं हौं (भारत, वेंक०)।

अस्य तिलक

ए सब कारज कह्यो सो अप्रस्तुत है, गोपिन को विरह कारन है सोई प्रस्तुत है सो कह्यो। ९ अ ॥

अथ अप्रस्तुतप्रशंसा, कारनमुख कारज को कथन-(सवैया)

जोति के गंज में आधो वराइ विरंचि रची वृषभानकुमारी।
आधो रह्यो फिरि ताहू में आधो लै सूरज-चंद-प्रभानि में डारी।
दास द्वै भाग किये उबरे को तरैयन में छवि एक की सारी।
एकहि भाग तें तीनिहुं लोक की रूपवती जुवतीनि सँवारी॥ १० ॥

अस्य तिलक

या कथा कारन तें कारज जो है नाइका ताकी सोभा बरन्यो। १० अ ॥

अथ अप्रस्तुतप्रशंसा, सामान्यमुख विशेष को कथन

या जग में तिन्हें धन्य गनौ जे सुभाय पराए भले कहँ दौरैं।
आपनो कोइ भलो करै ताको सदा गुन माने रहैं सब ठौरैं।
दासजू है जौ सकै तौ करैं बदले उपकार के आपु करोरैं।
काज हितू के लगे तन-प्रान के दान तें नेकु नहीं मुँह मोरैं॥ ११ ॥

अथ अप्रस्तुतप्रशंसा, विशेषमुख सामान्य को कथन

दास परस्पर प्रेम लख्यो गुन छीर को नीर मिले सरसातु है।
नीरै बेचावत आपने मोल जहाँ जहँ जाइकै छीर बिकातु है।
पावक जारन छीर लगैं तब नीर जरावत आपनो गातु है।
नीर की पीर निवारिबे कारन छीर घरी ही घरी उफिनातु है॥ १२ ॥

तुल्यप्रस्ताव में तुल्य को कथन-(दोहा)

तुँ ही विसदजस भाद्रपद, जग कौं जीवन देव।
रुचै चातिकै कातिकै, बुंद स्वाति के हेत॥ १३ ॥

[९अ] ए-यह (भारत वेंक०)।
[१०] द्वै-दु (वेल०)
[१०अ] जो है-जेहि (भारत)।
[११] आपनो०-आपनकँ जो (भारत, वेंक०)। कहँ-मन (वेल०)।
[१२] लख्यो-लख्यो (भारत. वेंक०, वेल०)। को-के (वही)। छीर-आर (भारत, वेल०)। निवारिबे-निवारन (वेल०)।
[१३] कौं-कै (वेल०)।

शब्दशक्ति तेँ

गुनकरनी गज को धनी, गारो धरै सुसाज।
अहो गृही तिहि राज सोँ, सुधै आपनो काज ॥ १४ ॥

यथा–(सवैया)

दासजू याको सुभाय यहै निज अंक मैं डारि* कितै नहिँ मारै।
को हरुवो अरु को गरुवो को भलो को बुरो कबहूँ न विचारै।
और कोँ चोट सहाइबे काज प्रहार सहै अपने उर भारै।
आइ परो खल खाली के बीच करै अब को तुअ छोह छोहारै ॥१५॥

प्रस्तुतांकुर, कारन कारज दोऊ प्रस्तुत–(दोहा)

दास उसासनि होतु है, सेत कमलवन नील।
राधे-तन-आँचन अली, सूखत अँसुवा-भील ॥ १६ ॥

अस्य तिलक

इहाँ विरह को तेज अँसुवा को अधिकार दोऊ बर्नत हैँ। १६ अ ॥

यथा–(सवैया)

आरज आइवो आली कह्यो भजि सासुहे तेँ गई ओट मैं प्यारी।
एकही ऐँडी महावरिही श्रम तेँ दुहुँ फैली खरी अरुनारी।
दास न जानै धौँ कौने है दीबो चितै दुहुँ पाइनि नाइनि हारी।
आपु कह्यो अरी दाहिने दै मोहिँ जानि परै पग बाम है भारी ॥१७॥

अस्य तिलक

इहाँ अंग की सुकुमारता पाय की ललाई सब प्रस्तुत है। १७ अ ॥

यथा–(कवित्त)

सिंघिनी औ' भृंगनी की ता ढिग जिकिरि कहा,
बारहू सुरारहू तेँ खीन चित्त धरि तूँ।
दूर ही तेँ नेसुक नजरि भार पावतहीँ,
लचकि लचकि जात जी मैं ज्ञान करि तूँ।

---

[१४] गारो०–गरो धरै सुभ (भारत)। सधै०–साधै अपनो (वेंक०)।
[१५] याको–याके (भारत, वेंक०); जाको (वेल०)। कितै०–कितेकन्ह (वेल०)।
[१६] भील–हील (सर०, वेंक०)।
[१६अ] अँसुवा–आँसू (भारत, वेंक०)। बर्नत–प्रस्तुत (भारत)।
[१७] सासुहे–सामहे (सर०)। आपु–आपी (भारत); आली (वेंक०)।

तेरो परिमान परिमान के प्रमान है पै,
दास कहै गरुआई आपनी सँभरि तूँ।
तूँ तौ मनु है रे वह निपट ही तनु है रे,
लंक पर दौरत कलंक सौं तौ डरि तूँ॥ १८॥

अस्य तिलक

इहाँ कटि को बनंनु मनु को बरजिबो दोऊ प्रस्तुत हैं। १८ अ॥

अथ समासोक्ति-लच्छणं–(दोहा)

जहँ प्रस्तुत में पाइये, अप्रस्तुत को ज्ञान।
कहुँ वाचक कहुँ स्लेप तेँ समासोक्ति पहिचान॥१९॥

यथा–(सवैया)

आनन में झलके श्रम-सेद लुरैं अलकैं बिथुरी छबिछाई।
दाम उरोज घने थहरैं छहरैं मुकतानि की माल सोहाई।
नैन नचाइ लचाइ कै लंक मचाइ बिनोद बचाइ कुराई।
प्यारी प्रहार करै करकंज कहा कहौं कंदुक-भाग-भलाई॥२०॥

अस्य तिलक

कंदुक पुरुष सो जान्यो जातु है ए काम सब विपरीति कैसो जान्यो जातु है यह समासोक्ति है। २० अ॥

यथा–(दोहा)

सैसव हति जोबन भयो, अब या तन-सिरदार।
छीनि पगनि तेँ दृगनि दिय, चंचलता-अधिकार॥२१॥

अस्य तिलक

सैसव जोबन दोऊ नृप पग दृग दोऊ आमिल चंचलता टहल सो जान्यो जातु है। २१ अ॥

---

[१८] मृगिनी–मृगिनो (भारत, वेंक०, वेल०)।
[१८अ] बनंनु–बनंन (वेंक०)।
[२०] सेद०–सीक० (सर०); सीकर पीं (भारत); सीकर औ (वेल०)।
[२०अ] सो–× (भारत, वेंक०)।
[२१अ] 'भारत' में छूट गया है।

श्लेष तेँ, यथा—(सवैया)

बहु ज्ञान-कथानि लै थाकिहौँ मैँ कुलकानिहू को बहु नेम लियो।
यह तीखी चितौनि के तीरनि तेँ भनि दास तुनीर भयोई हियो।
अपने अपने घर जाहु सबै अब लौँ सखि सीख दियो सो दियो।
अब तौ हरि-भौँह-कमाननि हेत हौँ प्राननि कौँ क़ुरबान कियो ॥२२॥

अस्य तिलक

भौँह-कमान पर प्रान नेवछावरि कीबो यह प्रस्तुत है क़ुरबान कमान को म्यानहू जान्यो जातु है। २२ अ ॥

अथ व्याजस्तुति-लक्षणं—(दोहा)

अप्रस्तुतपरसंस अरु, व्याजस्तुति की बात।
कहूँ भिन्न ठहरात अरु, कहूँ जुगल मिलि जात ॥२३॥
स्तुति निंदा के व्याज कहुँ, निंदा स्तुति के व्याज।
अस्तुति अस्तुति-व्याज कहुँ, निंदा निंदा साज ॥२४॥

निंदाव्याज स्तुति, यथा—(कवित्त)

भौँर-भीर तन भननाती मधुमाखी सम,
कानन लौँ फाटी फाटी आँखी बाँधी लाज की।
व्यालिनि सी बेनी खीन लंक बलहीन, श्रम
लीन होति संक लहि भूपन-समाज की।
दास परचित्तन्ह की चोर ठहराइ उरजन
पाई पदवी कठोर-सिरताज की।
कौन जानै कौने धौँ सुकृत की भलाई बस,
भामिनी भई तूँ मनभाई बृजराज की ॥२५॥

---

[२२] भयोई—भरोई (सर०)।
[२२अ] पर—कौँ (भारत, वेंक०)। कीबो—कियो (वही)। कमान को—को कमान (वही)।
[२३] की—कवि (सर०)।
[२४] अस्तुति०—स्तुति अस्तुति के (भारत, वेल०); स्तुति स्तुति (वेंक०)।
[२५] फाटी०—फाटि फाटि (भारत, वेल०)। बाँधी—बँधी (भारत, वेंक०, वेल०)। सक०—सकलहि (भारत, वेंक०)। पर०—परचित्तहूँ० (भारत); चित्तचोर ठहरायो उरजन जग पाई तब पदवी (वेल०)। (वेल०)। उरजन—उरजानि (वेंक०)।

स्तुतिव्याज निंदा, यथा

गोरस को बेचिबो बिहाइकै गँवारिनि
अहीरिनि तिहारे प्रेम पालिबे कौं क्यौं अरै।
एते पर चाहिये जौ रावरे के कोमल
हिये कौं नित आपने कठोर कुच सौं दरै।
दास प्रभु कीन्ही भली दीन्ही यौं सजाइ अब,
नीके निसिबासर बियोगानल मैं जरै।
हौ जू ब्रजराज सब राजन के राज, तुम
बिनु आजु ऐसी राजनीति कहौ को करै ॥२६॥

स्तुतिव्याज स्तुति-वर्णनं–(दोहा)

दास नंद के दास की, सरि न करै पुरहूत।
विद्यमान गिरिवरधरन, जाको पूत सपूत ॥ २७ ॥
अमल कमल की है प्रभा, बाल-बदन को डौर।
वाको नित चुंबन करै, धन्य भाग तुअ भौंर ॥ २८ ॥

अस्य तिलक

पहिले में दोऊ प्रस्तुत हैं प्रस्तुतअंकुर में मिलतु है, दूजे में बदन प्रस्तुत है अप्रस्तुतप्रससा में मिलतु है। २७ अ ॥

निंदाव्याज निंदा-वर्णनं, यथा–(दोहा)

नहिं तेरो यह बिधिहि को दूषन काग कराल।
जिन तोहूँ कलरवहु कौं, दीन्हो बास रसाल ॥ २९ ॥
दई निरदई सौं भई, दास बड़ोयै भूल।
कमलमुखी को जिन्ह कियो, हियो कठिनई-मूल ॥ ३० ॥

व्याजस्तुति अप्रस्तुतप्रशंसा सों मिलित

बात इती तोसौं भई, निपट भली करतार।
मिथ्यावादी काग कौं, दीन्हो उचित अहार ॥ ३१ ॥

---

[२६] यौं–जो (वेल०)। कहौ–ओर (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२८] को–की (भारत, वेल०), के (वेंक०)।
[२९] तोहूँ–तो कहँ (भारत, वेल०)।

जाहि सराहत सुभट तुम, दसमुख बार अनेक।
सु तौ हमारे कटक मैं, ओछो धावन एक ॥ ३२ ॥

यथा–(कवित्त)

काहू धनवंत को न कबहूँ निहारयो मुख,
काहू के न आगे दौरिबे को नेम लियो तैं।
काहू को न रिन करै काहू के दिये ही बिनु,
हरो तिन्ह असन बसन छोड़ि दियो तैं।
दास निज सेवक सखा सौं अति दूरि रहि,
लूटै सुख भूरि कौं हरष पूरि हियो तैं।
सोवतो सुरुचि जागि जोवतो सुरुचि धंध,
बंधव कुरंग कहि कहा तप कियो तैं ॥ ३३ ॥

यथा–(सवैया)

तैहूँ सबै उपमान तैं भिन्न बिचारतहीं वहु द्योस मरो पचि।
दासजू देखे सुने जु बहौ अति चिंतनि के ज्वर जात खरो तचि।
सोऊ बिना अपनो अनुरूप को नायक भेटे बिथानि रही खचि।
ए करतार कहा फल पायो तूँ ऐसी अपूरब रूपवती रचि ॥ ३४ ॥

अथ आक्षेपालंकार-वर्णनं–(दोहा)

जहाँ बरजिबो कहि इहै, अवसि करौ यह काजु।
मुकुरि परत जेहि बात कौं, मुख्य वही जहँ राजु ॥ ३५ ॥
दूपि आपने कथन कौं फेरि कहै कछु और।
आक्षेपालकार के, जानौ तीन्यौ ठौर ॥ ३६ ॥

आयसु मिस बरजिबो–(सवैया)

जैये बिदेस महेस करौ उत बात तिहारी सबै बनि आवै।
प्रीतम कौं बरजै कछु काम मैं बाम अयानिनि को पद पावै।

---

[३३] अब॰–अति दूर (भारत, वेल॰,); अविदूर (वेंक॰)। धब–धन्य (भारत, वेल॰)। कहि–कहु (वही)।

[३४] जु बहौ–जु बहू (भारत); जे कहूँ (वेल॰)। अपनो–अपने (सर॰)। ए–रे (भारत), ऐ (वेल॰)। पायो–याको (सर॰); पाये (वेंक॰)।

[३५] बरजिबो–बरजिये (भारत, वेंक॰, वेल॰)।

एती विनै करौं दासिनि सौं कहि जाइवी नेकु विलंब न लावै।
कान्ह पयान करौ तुम ता दिन मोहिं लै देवनदी नहवावै ॥३७॥

निषेधाभास-वर्णनं

आजु तें नेह को नातो गयो तुम तेह गह्यो हौंहूँ नेम गहौंगी।
दासजू भूलि न चाहिये मोहि तुम्हैं अब क्यौंहूँ न हौंहूँ चहौंगी।
वा दिन मेरी अजंक मैं सोए हौ हौं यह दाउ लहौं पै लहौंगी।
मानौं बुरो कि भलो मनमोहन सेज तिहारी मैं स्वैही रहौंगी ॥३८॥

निज कथन को दूषन भूषन वर्णनं-(दोहा)

तुअ मुख विमल प्रसन्न अति, रह्यो कमल सो फूलि।
नहिं नहिं पूरनचंद सो, कमल कह्यो मैं भूलि ॥३९॥
जिय की जीवनमूरि मम, वह रमनी रमनीय।
यहौ कहत हौं भूलिकै, दास वही मो जीय ॥४०॥

अथ पर्यायोक्ति-अलंकार-वर्णनं

कहिय लच्छना रीति लै, कछु रचना सौं वैन।
मिसु करि कारज साधिबो, परजाजोक्ति सु ऐन ॥४१॥

रचना सों वैन-(सवैया)

जो तुअ वेनी के वैरी के पच्छ की राजी मनोहर सीस चढ़ाई।
दासजू हाथ लिये रहै कंठ उरोज भुजा पख तेरे को भाई।
तेरही रंग को जाको पटा जिन वो रद-जोति की माल बनाई।
वो मुख के तौ हरायल आजु दई उनकौं अति हायलवाई ॥४२॥

---

[३७] ऐती-करै (भारत), करैं (वेल०)। उत०-उतपात (वेंक०)। करौं-करि (वेल०)। दासिनि-दासनि (भारत, वेंक०); दासिन (वेल०)। कान्ह-काह्न (वेंक०)। नहवावै-अन्हवावै (वेल०)।
[३८] तेह-नेम (भारत, वेंक०), नेह (वेल०)। गह्यो-गह्यो (भारत, वेल०)। मेरी-मेरे (वही)। सोए-सोयौ (सर०)। बुरो०-भलो कि बुरो (भारत, वेंक०, वेल०)। स्वैही-सोहि (सर०); सोय (भारत, वेल०)।
[४०] यह-वा (भारत, वेल०)।
[४२] कै-कै (भारत वेल०)। हरायल-हरावल (भारत)।

मिलु करि कारज साधिबो–(कवित्त)

आजु चंद्रभागा चंपलतिका बिसाखा कौं,
पठाई हरि बाग तैं कलामैं करि कोटि कोटि।
साँझ समै बीथिन मैं ठानि दृगमीचनो,
भोराई तिन्ह राधे कौं जुगुति कै निखोटि खोटि।
ललिता के लोचन मिचाइ चंद्रभागा सौं,
दुराइबे कौं ल्याई वै तहाँई दास पोटि पोटि।
जानि जानि धरी तिय बानी लरबरी तकि,
आली तिहि घरी हसि हसि परी लोटि लोटि ॥४ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये अन्योक्तादि-
अलंकारवर्णनं नाम द्वादशोल्लासः ॥१२॥

१३

अथ विरुद्धादि-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

विविधि विरुद्ध विभावना, व्याघातहि उर आनि।
विसेपोक्ति 'रु असंगत्यो, विपम समेत छ जानि ॥ १ ॥

विरुद्धालंकार-लक्षणं

कहत सुनत देखत जहाँ, है कछु अनमिल बात।
चमत्कारजुत अर्थजुत, सो विरुद्ध अवदात ॥ २ ॥
जाति जाति, गुन जाति अरु, क्रिया जाति अवरेखि।
जाति द्रव्य, गुन गुन, क्रिया क्रिया, क्रिया गुन लेखि ॥ ३ ॥

---

[४३] चद्रभागा–चंद्रावलि (वेंक०)। धरी–धारी (वही)।
[१] 'रु०–अरु सगतौ (वेंक०)।
[३] क्रिया गुन–गुन क्रिया (सर०)।
[४] गुनो-गने (भारत, वेल०), गनो (वेंक०)।

क्रिया द्रव्य, गुन द्रव्य अरु, द्रव्य द्रव्य पहिचानि।
ये दस भेद विरुद्ध के, गुनो सुमति उर आनि ॥ ४ ॥

जाति जाति सों विरुद्ध

प्रानानि हरत न धरत डर, नेकु दया को साजु।
एरी यह द्विजराज भो, कुटिल कसाई आजु ॥ ५ ॥

अस्य तिलक

यामैं रूपक अपरांग है। ५ अ ॥

जाति गुण सों विरुद्ध—(दोहा)

दरसावत थिर दामिनी, केलि-तरुनि गति देतु।
बिलप्रसून सुरभित करत, नूतन विधि झषकेतु ॥ ६ ॥

रूपकातिसयोक्ति व्यंग्य है। ६ अ ॥

जाति क्रिया सों विरुद्ध—(कवित्त)

पंगुनि को पग होत अंधनि को आला-मग,
एकै लाल ह्वैकै जग कीरति चलाई है।
बिरचैं बितान बैजयंती धारि गहैं थाँभै,
बासरी बिलासी विस्व विदित बड़ाई है।
छाया करैं जग कों बहाया करैं ऊँचो नीचो,
पाई जिहि बंस नैं यों बढ़ती सदाई है।
कान्हमुख लागी करै करम कसाइनि को,
वाही बंस बाँसुरी जनमजरी जाई है ॥ ७ ॥

जाति द्रव्य सों विरुद्ध—(दोहा)

चंद कलंकित जिन्ह कियो, कियो सकंट मृनार।
वहै गुनिन बिरही करै अविवेकी करतार ॥ ८ ॥

[५अ] या मैं-×(भारत)। अपरांग- अपरंग (सर०); अंग (भारत)।
[७] होत-होते (सर०, वेंक०)। धारि-धार (वेंक०)। थाँमैं-थामैं (भारत, वेंक०)। जामैं-जौन मैं (सर०)। ऊँचो०-ऊँच नीच (वेंक०)। पाई-पाय (सर०, वेंक०; पाया (भारत)। जनु-बेम (सर०)। नैं०-है मैं (सर०, वेंक०)।

गुण गुण सोँ विरुद्ध

प्रिया फेरि कहि वैसहीँ, करि चिय लोचन लोल।
मोहिँ निपट मीठी लगै, यह तेरी कटु बोल ॥ ९ ॥

क्रिया क्रिया सोँ विरुद्ध

सिव साहेव अचरजभरो, सकल रावरो अंग।
क्योँ कामहिँ जारयो, कियो क्योँ कामिनि अरधंग ॥ १० ॥

गुण क्रिया सोँ विरुद्ध—(सवैया)

दच्छिन पौन त्रिसूल भयो त्रिगुनै नहिँ जानै कि सूल है कैसो।
सीरो मलै जगती मैँ बहै दुख दैन कोँ भो अहिसंगी अनैसो।
बारिजहू विपरीति लियो अब दास भयो यह औसर ऐसो।
जाहि पियूपमयूप कहैँ वहै काम करै रजनीचर कैसो ॥ ११ ॥

गुण द्रव्य सोँ विरुद्ध—(दोहा)

दास छोड़ि दासीपनो, कियो न दूजो तंत।
भावी-वस तहि कूबरी, लह्यौ कंत जगकंत ॥ १२ ॥

क्रिया द्रव्य सोँ विरुद्ध

केस मेद नख हाड़ जो बवै त्रिवेनी-खेत।
दास कहा कौतुक कहौँ, सुफल चारि लुनि लेत ॥ १३ ॥

द्रव्य द्रव्य सोँ विरुद्ध

ज्योँ पट लयो बघंबरी, सज्यो चंद्र-खत भाल।
डौरु व्याल त्योँ संग्रह्यौ, तजि मुरली बनमाल ॥ १४ ॥

---

[९] यह—ए (सर०)। तेरी—तेरो (वेंक०)।

[११] मलै०—मलैज गन्यौ (सर०, वेंक०)। बहै—बहो (सर०), बहू (वेंक०)। त्रिप०—त्रिपरीति (वही)। यह—अब (वही)। वहै—ससि (सर०), वह (भारत, वेल०)।

[१३] नख—कच (भारत, वेंक०, वेल०)।

[१४] लयो—लह्यो (भारत, वेंक०)। खत—नख (भारत, वेंक०), बत (वेल०)। डौरु—डौँर (वेंक०); डमरु (वेल०)।

यथा—(सवैया)

नेह लगावत रूखी परी नत देखि गही अति उन्नतताई।
प्रीति बढ़ावत बैर बढ़ायो तूँ कोमली बात गही कठिनाई।
जेती करी अनभावती तूँ मनभावती तेती सजाइ कौं पाई।
भाकसी भौन भयो ससि सूर भलै विष ज्यौं उर सेज सोहाई॥ १५॥

अथ विभावनालंकार-वर्णनं—(दोहा)

विन कै लघु कारननि तें, कारज परगट होइ।
रोकतहू कि अकारनौ वस्तुनि तें विधि सोइ॥ १६॥
कारन तें कारज कछू, कारज ही तें हेतु।
होतौ छ विधि विभावना, उदाहरन कहि देतु॥ १७॥

विन कारन कारज, विभावना—(कवित्त)

पीरी होति जाति दिन रजनी के रंग विनु,
नीरो रहै बूड़त तिरत विनु वारिहीं।
विस के बगारे विनु वाके सब अंगनि,
विसारे करि डारे हैं विलोकनि तिहारिहीं।
दास विन चले कूल विनहीं चलाए यह
चरचा चलैगी लाल बीते दिन चारिहीं।
हाइ वह वनिता वरी री विनु वारहीं,
जरी री विनु जारहीं मरी री विनु मारिहीं॥ १८॥

थोरे कारन कारज, विभावना (सवैया)

राखत हैं जग को परदा कहैं आपु सजे दिगअंबर राखैं।
भाँग विभूति भँडार भरी पै भरैं गृह दास को जो अभिलाखैं।
छाँह करैं सबको हरजू निज छाँह को चाहत हैं बटसाखैं।
वाहन है बरदा यक पै बरदायक बाजि औ' बारन लाखैं॥१९॥

[१५] नत—नम (भारत, वेल०)। तत— जनि (वेल०)। भाकसी—भाकसो (सर०, भारत)।

[१६] कि अ—करि (वेंक०, वेल०)।

[१८] नीरो—मन (वेल०)। री—है (वही)।

[१९] औ—औ (सर०, वेंक०)। मरी०—मरो है (भारत); मरो दै (वेल०)।

रोकेहू कारजसिद्धि की विभावना—(दोहा)

तुअ बेनी ब्यालिनि रहै, बाँधी गुननि बनाइ।
तऊ वाम ब्रजइंदु कों, बदाबदी डसि जाइ॥ २०॥

अस्य तिलक

यामैं रूपक अपरांग है। २० अ॥

अकारनी वस्तु तें कारज की विभावना—(सवैया)

पाहन पाहन तें कढ़ै पावक केहूँ कहूँ यह बात फबै सी।
काठहू काठ सों झूठो न पाठ प्रतीति परै जग जाहिर जैसी।
मोहन पानिप के सरसे रसरंग की राघे तरंगिनि ऐसी।
दास दुहूँ की लगालगी सों उपजी यह दारुनि आगि अनैसी॥२१॥

अस्य तिलक

यामैं उपमा अपरांग है। २१ अ॥

कारन तें कारज कछु, यथा—(दोहा)

श्रीहिंदूपति तेग तुअ, पानिप-भरी सदा हि।
अचरज याकी आँच सों, अरिगन जरि जरि जाहि॥२२॥

कारन तें कारज कछु की विभावना—(सवैया)

सखि चैत हैं फूलनि को करता करने सु अचेत अचैन लग्यो।
कहि दास कहा कहिये कलरौहि जु बोलन बैकल बैन लग्यो।
जगप्रान कहावत गौन कै पौनहु प्राननि कों दुख दैन लग्यो।
यह कैसो निसाकर मोहिं विना पिय साँकरे कै जिय लैन लग्यो॥२३॥

को—के (वेंक०, वेल०)। सबको०—सिगरे जग को (वेल०)। यह—इक (भारत, वेल०)।

[२०] व्यालिनि—व्याली (बेल०)। इदु—चंद्र (भारत, वेल०); इंद्र(वेंक०)।

[२०अ] 'भारत' में छूट गया है। यामैं— यहाँ (वेंक०)।

[२१अ] यामैं—यहाँ (भारत); इहाँ (वेंक०)।

[२२] श्री—जो (भारत)।

[२३] कछु—भिन्न (सर०)। लग्यो—लगै (सर०)। हि जु—हित (भारत); हिं जो (वेल०)। बैकल—जो कल (भारत)। गौन०—पौन के गौनहु (वेल०)। निसाकर—विपाकर (भारत)।

(दोहा)

दास कहा कौतुक कहौं, डारि गरे निज हार।
जैतुवार संसार को, जीवि लेवि यह दार ॥ २४ ॥

कारज तें कारन, विभावना

चंद निरखि सकुचत कमल, नहिं अचरज नँदनंद।
यह अचरज तियमुख-कमल निरखि जु सकुचत चंद ॥ २५ ॥
फेरि काढ़िवौ वारि तें, वारिजात दुलारि।
चलि देखौ दृग जहँ कढ़त वारिजात तें वारि ॥ २६ ॥

अथ व्याघात-अलंकार-लच्छन—(दोहा)

जाहि तथाकारी गनै, करै अन्यथा सोउ।
काहू सुद्ध विरुद्ध ही, है व्याघातै दोउ ॥ २७ ॥

तथाकारी अन्यथाकारी, यथा

जे जे वस्तु सँजोगिनिन, होति परम सुखदानि।
ताही चाहि वियोगिनिन, होति प्रान की हानि ॥ २८ ॥
दास सपूत सपूत ही, गथ वल होइ न होइ।
यहै कपूतहु की दसा, भूलि न भूलै कोइ ॥ २९ ॥
तो सुभाव भामिनि यहै, मोहिं यहै संदेह।
सौतिन्ह कौं रुखी करै, पिय-हिय करै सनेह ॥ ३० ॥

काहू को विरुद्ध ही सुद्ध

लोभी धन-सचय करै, दारिद को डर मानि।
दास यहै डर मानिकै, दान देत है दानि ॥ ३१ ॥
मुनिगन जप तप करि चहैं, सूली-दरसन चाउ।
जिहि न लखै सूली वहै, तस्कर चहै उपाउ ॥३२॥

---

[२५] यह०—यह अदभुत (वेल०)। तिय—तिस (वेंक०)।
[२६] दृग०—जहँ कढ़त दृग (भारत, वेंक०)।
[२७] ही—नौं (वेल०)।
[३०] मोहिं०—मो हिय है (वेल०)।
[३१] यहै—वहै (भारत, वेल०)। डर—उर (वेंक०)।
[३२] लखै-लहै (भारत, वेंक०, वेल०)। वहै—वहौ (सर०); यही (भारत, वेंक०)।

यथा–(सवैया)

वा अधरारस-रागी हियो जिय पागी वहै छबि दास बिसाली।
नैननि सूझि परै वहै सूरति बैननि बूझि परै वहै आली।
लोग कलंक लगायहीबी ते लुगाई कियो करैं कोटि कुचाली।
बादि बिथा सखि क्यौं 'ब सहै री गहै न भुजा भरि क्यौं बनमाली ॥३३॥

अथ विशेषोक्ति-वर्णनं–(दोहा)

हेतु घनेहू काज नहिं, बिसेषोक्ति निसंदेह।
देह दसा निसिदिन बरै, घटै न हिय को नेह ॥ ३४ ॥

यथा–(सवैया)

नाभि-सरोवरी औ' त्रिबली की तरंगनि पैरत ही दिनराति है।
बूड़ी रहै तन-पानिप ही मैं नहीं बनमालहू तें बिलगाति है।
दासजू प्यासी नई अँखियाँ घनस्याम बिलोकत ही अकुलाति है।
पीबो करैं अधरामृत हू कौं तऊ उनकी सखि प्यास न जाति है ॥३५॥

अथ असंगति-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

जहँ कारन है और थल, कारज औरै ठाम।
अनत करन कौं चाहिये, करै अनत ही काम ॥ ३६ ॥
और काज करने लगै, करै जु औरै काज।
त्रिबिधि असंगति कहत हैं, सुकबिन के सिरताज ॥ ३७ ॥

कारन कारज भिन्न थल, यथा

दास दुजेस घरान मैं, पानिप बढ्यो अपार।
जहाँ तहाँ बूड़े अमित, बैरिन्ह के परिवार ॥ ३८ ॥

---

[३३] लगायहीबी०–लगाइहि बीत्यो (भारत, वेंक०); लगावत हैं औ (वेल०)। क्यौं 'ब–क्यौं बस है-(भारत); क्यौं न सहै (वेंक०), क्यौं वसिहै (वेल०)।

[३४] निसदेह–न संदेह (भारत, वेंक०, वेल०)। दसा–दिया (भारत, वेल०)।

[३५] तें–मैं (भारत, वेंक०)। उनकी–इनकी (भारत, वेंक०, वेल०)।

यथा-(कवित्त)

रीति तुअ सौतिन की कैसी तुअ माड़े मुख,
केसरि सौं उनको वदन होत पियरो।
तेरे उर भार उरजातनि को अधिकार,
उनकौं दरकिवे कौं अकुलात हियरो।
दास तुअ नैननि में विधिना लोनाई भरी,
उनकौं किरिकिरी तें सूझत न नियरो।
पानिप-समूह सरसात तुअ अंगनि में,
बूड़ि बूड़ि आवत है उनको क्यों जियरो॥ ३९॥

यथा-(सवैया)

मो मति पैरन लागी अली हरिप्रेम-पयोधि की बात न जानी।
दास थक्यो मन संक बही गई बूड़ि सबै कुलरीति-कहानी।
फूलि रह्यो हियरो भरि पानिप लाजभरी बहुखो उतरानी।
अंग दहै उपचार की आगि सौं कैसी नई भई रीति सयानी॥ ४०॥

और थल की क्रिया और थल-(सोरठा)

मैं देख्यो वन न्हात, रामचंद्र वो अरि-तियन।
कटितट पहिरे पात, दृग कंकन कर में तिलक॥ ४१॥

यथा-(सवैया)

लाहु कहा खए बेंदो दिये औ' कहा है लखोना के बाहु गड़ाए।
कंकन पीठि हिये ससि-रेख की बात बनै वलि मोहिं बताए।
दास कहा गुन ओठ में अंजन भाल में जावक-लीक लगाए।
कान्ह सुभाय ही बूझति हौं मैं कहा फलु नैननि पान खवाए॥ ४२॥

---

[३९] भार-मौझ (वेल०)। अधिकार-अधिकाति (भारत); अधिकात (वेंक०)। विधिना-विधि ने (भारत, वेंक०, वेल०)।
[४०] संक०-संगति है (वेल०)। हियरो-हियरे (सर०)। आगि-आँच (वेल०)। सौं-तु (भारत, वेंक०, वेल०)।
[४१] वो-तुअ (भारत, वेंक०, वेल०)।
[४२] खए-कहौ (भारत), कर (वेल०)। बेंदो-बेंदी (भारत, वेंक०, वेल०)।

और काज अरंभिये और करिये–(दोहा)

प्रगट भए घनस्याम तुम, जगप्रतिपालन-हेतु ।
नाहक विथा बढ़ाइ क्यौं, अवलनि को ज्यौ लेतु ॥ ४३ ॥

यथा–(सवैया)

आनँद-बीज वयो अँखियानि जमायो बिथानि की जी मैं जई है ।
बेलि बढ़ायो चवाई की जो बृज धामनि धामनि फैलि गई है ।
दास देखाइ कै तौंवरि-फूल फली दियो आनि कृसानुमई है ।
प्रीति बिहारी की मालिनि है यहि वारी मैं रीति बगारी नई है॥४४॥

अस्य तिलक

यामैं रूपक को संकर है । ४४ अ ॥

अथ विषमालंकार-वर्णनं–(दोहा)

अनमिल बातनि को जहाँ, परत कैसहूँ संग ।
कारन को रँग औरई, कारज औरै रंग ॥ ४५ ॥
करता कौं न क्रिया फलै, अनरथ ही फल होइ ।
विषमालंकृत तीनि विधि, बरनत हैं सब कोइ ॥ ४६ ॥

अनमिल बातनि को, यथा–(सवैया)

किल कंचन सी वह अग कहाँ कहँ रंग कदंबिनि के तनु कारो ।
कहँ सेजकली बिकली वह होइ कहाँ तुम सोइ रहौ गहि डारो ।
नित दासजू ल्यावहि ल्याव कहौ कछु आपनो वाको न बीच विचारो ।
वह कौलसी कोरी किसोरी कहाँ औ' कहाँ गिरिधार न पानि तिहारो ॥४७॥

कारन कारज भिन्न रंग को

नैन वमैं जल कज्जलसंजुत पी अधरामृत की अरुनाई ।
दास भई सुधि बुध्धि हरी लखि केसरिया पट-सोभ सोहाई ।

---

[४३] क्यौं–के (वेल०) । ज्यौ–जिय (भारत, वेंक०, वेल०) ।

[४४] तौंवरि–तावरी (सर०); तौंवरि (वेंक०); तूँवरि (वेल०) । है–है (सर०); री (वेंक०) ।

[४७] किल–काल (वेल०) । सी–सौं (वही) । कहँ०–औ कहाँ यह मेघन सौं (वही) । सेज–कौल (वही) । बिकली–बिकसी (वही) । नित–निज (सर०) । कौल सी–कोमल (वेल०) । कोरी–गोरी (भारत, वेल०) ।

कौन अचंभो कहूँ अनुरागी भयो हियरो जस उज्जलताई।
साँवरे रावरे नेह पगे ही परी तिय-अंगनि मैं पियराई ॥ ४८ ॥

कर्ता कौं क्रियाफल न होइ तापर अनर्थ–(दोहा)

हुल्यो नीरचर हनन कौं, किये तीर बक ध्यान।
लीन्हो झपटि सचान तिहि, गयो ऊपरहि प्रान ॥४९॥
तुअ कटाच्छ-डर मन दुरयो, तिमिर-केस मैं जाइ।
तहँ व्यालिनि बेनी डस्यो, कीजै कहा उपाइ ॥५०॥
सिंघीसुत की मानि भय, ससा गयो ससि-पास।
ससिसमेत तहँ ह्वै गयो, सिंघीसुत को ग्रास ॥५१॥

यथा–(सवैया)

जेहि मोहिबे काज सिँगार सज्यो तेहि देखतै मोह मैं आइ गई।
न चितौनि चलाइ सकी उनहीं के चितौनि के घाइ अघाइ गई।
वृषभानुलली की दसा सुनौ दासजू देत ठगौरी ठगाइ गई।
बरसाने गई दधि बेचिबे कौं तहँ आपु ही आपु बिकाइ गई ॥५२॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये
विरुद्धाद्यलंकारवर्णनं नाम
त्रयोदशमोल्लासः ॥१३॥

---

[४८] नैन०–नैन यहै (भारत, वेल०), नैनन मैं (वेंक०)।
[४९] हुल्यो०–उरतट जलचर (वेल०)। किये०–धरे हुतो (वही)।
[५०] डस्यो–डसी (सर०)।
[५१] मैं–मै (भारत, वेल०)।
[५२] जे–जो (वेल०)। घाइ–भाय (वही)। सुनौ–यह (वही)।
बेचिबे–बेचन (भारत, वेंक०, वेल०)।

१४

अथ उल्लास-अलंकार-वर्णनं-(छप्पय)

विविधि भाँति उल्लास अवज्ञा अनुज्ञाहि गनि ।
बहुरयो लेस विचित्र तदगुनो स्वगुन दास भनि ।
और अतदगुन पूरुवरूप अनुगुन अवरेखहि ।
मिलित और सामान्य जानि उन्मिलित विसेपहि ।
ये होत चतुर्दस भाँति जो अलंकार सुनिये सुमति ।
सब गुन दोपादि प्रकार गनि, किये एक ही ठौर तति ॥१॥

अथ उल्लास अलंकार-(दोहा)

औरै के गुन दोप तेँ औरै के गुन दोप ।
बरनत यौँ उल्लास हैँ, कवि पंडित मतिकोष ॥२॥

गुन ते गुन वर्णनं

औरै के गुन और को गुन पहिलेँ उल्लास ।
दास सपूरन चंद लखि, सिंधु हियेँ हुल्लास ॥३॥
कह्यो देवसरि प्रगट ह्वै, दास जोरि जुग हाथ ।
भयो सीय तुव न्हान तेँ, मेरो पावन पाथ ॥४॥

और के गुन तेँ और कोँ दोप

औरै के गुन और कौँ दोप उलासै होत ।
बारिद जग जीवन भरत, मरत आक के गोत ॥५॥
वास बरागत मालती, करि करि सहज त्रिकास ।
पियबिहीन बनितानि हिय, बिथा बढ़त अनयास ॥६॥

और को दोप और कोँ गुन

दोप और के और कौँ गुन उल्लासै लेखि ।
रघुपति को बनवास भो, तपसिन्ह सुखद बिसेपि ॥७॥

---

[१] किये-कियो (भारत, वेंक०) । तति-थिति (भारत, वेंक०, वेल०) ।
[२] कोप-चोप (वेंक०) ।
[३] पहिलेँ-पहिलो (वेल०) ।
[५] कौं-तेँ (भारत, वेंक०) ।
[६] बनितानि०-बनितन्ह हिये (वेल०) ।

भली भई करता कियो, कंटकवलित मृनाल।
तुव भुजानि की जानि सव, उपमा देते वाल ॥८॥

और के दोप और कों दोप

उल्लासै जहँ और के दोप और कौं दोप।
भए संकुचित कमल निसि, मधुकर लह्यो न मोप ॥९॥

अप्रस्तुतपरसंस जहँ, अरु अर्थांतरन्यास।
तहाँ होत अनचाहू हूँ विविधि भाँति उल्लास ॥१०॥

अप्रस्तुतप्रशंसा, यथा–(सवैया)

है यह तौ वन वेनु को जौ लखिये सो सगाँठि असारु कठोरै।
दास ये आपुस में इहि भाँति करैं रगरो जिहिं पावक दौरै।
आपनऊ कुल संकुल जारि जरावतु हैं सहवास के औरै।
रे जगवंदन चंदन तोहि निवास कियो इहि ठौर करोरै ॥११॥

अथ अवज्ञा-लक्षणं–(दोहा)

औरै के गुन और कौं गुन न अवज्ञा गाइ।
वड़े हमारे नैन तौ तुम्हैं कहा जदुराइ ॥१२॥
निज सुघराई को सदा, जतन करैं मतिमान।
पितु-प्रवीनता को गरवु, कीवो कौन सयान ॥१३॥

अवज्ञा [द्वितीय भेद]

औरहि दोप न और के दोप, अवज्ञा सोउ।
मूढ़ सरित डारैं सुरा, भूलि न त्यागत कोउ ॥१४॥

---

[८] भली०–भलो भयो (वेल०)। कलित–वलित (वही)। कौ०–सम जानि कवि (वही)।

[११] वेनु–वेनु (वेंक०)। सो०–सहगाँठि (वेल०)। असारु–असाह (भारत)। सहवास–सब वास (सर०)। निवास–विनास (भारत, वेल०)। इहि–यह (वेल०) करोरै–कुठौरै (भारत, वेल०)।

[१२] गाइ–पाइ (भारत, वेंक०)। तौ–सौं (वेंक०)।

यथा—(कवित्त)

आक औ' कनकपात तुम जौ चवात हौ तौ,
षटरस-व्यंजन न केहूँ भाँति लटि गो।
भूषन बसन कीन्हें व्याल गजखाल को तौ
साल सुबरन को न पैन्हिबो उसटि गो।
दास के दयालहीं सुरीति ही उचित तुम्हें,
लीन्ही जौ कुरीति तौ तिहारो ठाट ठटि गो।
ह्वैकै जगदीस कीन्हो वाहन वृषभ को तौ,
कहा सिव साहेब गयदन को घटि गो ॥१५॥

अवज्ञा [तृतीय भेद]—(दोहा)

जहाँ दोष तेँ गुन नहीँ, यहौ अवज्ञा दास।
जहाँ खलन को गन बसै, तहाँ न धर्मप्रकास ॥ १६ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जा हिय बसी जमाति।
साधु-भावती भक्ति तहँ, दास बसै किहि भाँति ॥ १७ ॥

अवज्ञा [चतुर्थ भेद]

जहँ गुन तेँ दोषौ नहीँ, यहौ अवज्ञा वेस।
रामनाम-सुमिरन जहाँ, तहाँ न सकट-लेस ॥ १८ ॥

यथा—(सवैया)

कोरी कबीर चमार रैदास हो जाट धना सधना हो कसाई।
गीध गुनाह-भरोई हुत्यो भरि जन्म अजामिल कीन्ही ठगाई।
दास दई इनकोँ गति जैसी न तैसी जपीन तपीनहू पाई।
साहब साँचो न दोष गनै गुन एक लहै जु समेत सचाई ॥ १९ ॥

अनुज्ञा-वर्णन—(दोहा)

दोषहु मैँ गुन देखिये, ताहि अनुज्ञा नाम।
भलो भयो मगभ्रम भयो, मिले बीच बन स्याम ॥ २० ॥

---

[१५] कीन्हे—कीन्हो (भारत, वेल०)। उसटि—उलटि (भारत, वेंक०, वेल०)। हीँ-ही (भारत, वेंक०)। लीन्ही—लीन्हो (सर०)।

[१९] चमार०—चमार हो रैदास जाट (सर०) ; चमारहु० (वेंक०) ; चमारहु दास ह्वै० (वेल०)। हो—हूँ (वेल०)।

[२०] भयो—भई (सर० ÷, वेंक०)। बन०— घनस्याम (भारत, वेल०)।

कौन मनावै मानिनी, भई और की और।
लाल रहे छकि लखि ललित, लाल बाल-दृगकोर ॥ २१ ॥

अथ लेशालंकार-वर्णनं-(दोहा)

जहाँ दोष गुन होत है, लेस वहैं सुखकंद।
छीनरूप ह्वै द्वैज-दिन, चंद भयो जगवंद ॥ २२ ॥
ललित लाल मुख मेलिकै, दियो गँवारन्ह फेरि।
लीलि न लीन्ह्यो यह बड़ो लाभ, जौहरी हेरि ॥ २३ ॥

लेश पुनः

गुनौ दोष ह्वै जात है, लेस-रीति यह औरि।
फले सोहाए मधुर फल, आँब गए झकझोरि ॥ २४ ॥

अथ विचित्रालंकार-वर्णनं-(दोहा)

करत दोष की चाह जहँ, ताही मैं गुन देखि।
तेहि बिचित्र भूषन कहौ, हिये चित्र अवरेखि ॥ २५ ॥

यथा

जीवन-हित प्रानहि तजैं, नवैं उँचाई-हेत।
सुख-कारन दुख संग्रहैं, ऐसे भृत्य अचेत ॥ २६ ॥
दोषविरोधी केवलै, गनौ न गुन-उद्दोत।
कछु भूषन-विस्तरन गुन रूप रंग रस होत ॥ २७ ॥

अथ तद्गुण-अलंकार-लक्षणं-(दोहा)

तद्गुन तजि गुन आपनो, संगति को गुन लेत।
पाए पूरुबरूप फिरि, स्वगुन सुमति कहि देत ॥ २८ ॥

तद्गुण, यथा-(कवित्त)

पन्ना संग पन्ना ह्वै प्रकासत छनक लै,
कनक-रंग पुनि पै गुरुंगनि पलतु है।
अधर ललाई लावै लाल की ललक पाए,
अलक-झलक मरकत-सो रलतु है।

---

[२२] वहै—वही (भारत, वेंक०)।
[२६] ऐसे०-ऐसो मृत्यु (भारत)।
[२७] उद्दोत—उद्योत (भारत)। विस्तरन—उद्धरन (वेल०)।

ऊदो अरुनो हैं पीत पाटल हरौ हैं ह्वैकै,
दुति लै दुर्घो की दास नैननि छलतु है।
समरथ नीके बहुरूपिया लौं थान ही मैं,
मोती नथुनी के बर बाने बदलतु है॥ २६॥

अस्य तिलक

इहाँ उपमा अपरांग है, तातैं अंगांगी संकर भयो। २६ अ॥

पुनः, यथा—(दोहा)

सखि तूँ कहै प्रवाल भो मुकुता हाथ-प्रसंग।
लख्यो डीठि चिहुँटाइ हौं, सु तौ चिहुचनी-रंग॥३०॥

स्वगुण, यथा—(सवैया)

भावतो आवतो जानि नवेली चँवेली के कुंज जौ बैठती जाइकै।
दास प्रसूननि सोनजुही करै कंचन सी तन-जोति मिलाइकै।
चौंकि मनोरथहू हँसि लेन चलै पगु लाल प्रभा महि छाइकै।
बीर करे करबीर भरे निखिले हरपै छबि आपनी पाइकै॥३१॥

अतद्गुण वो पूर्वरूप लक्षणं—(दोहा)

सु अतद्गुन क्योंहूँ नहीं, संगति को गुन लेत।
पुरुबरूप गुन नहिं मिटै, भए मिटन के हेत॥३२॥

अतद्गुण, यथा—(सवैया)

कैधा जवादिन सौं उबट्यो सज्यो केसरि को अँगराग अपारो।
न्हान अनेक विधान सरै रस संत मैं संत करै नित डारो।

---

[२६] पन्ना—पन्न (सर०)। गुरगनि—कुरगनि (वेंक०, वेल०)। रलतु—हलतु (भारत, वेंक०, वेल०)। दुर्घो की—दुहूँधा (वेल०)।

[२६ अ] तातैं—यातैं (भारत, वेंक०)। भयो—है (वही)।

[३०] चिहुँटाइ हौं—चिहुँठाइ हो (सर०, भारत)।

[३१] बैठती बैठत (वेल०)। करे—करै (भारत, वेंक०, वेल०)। भरे—भरै (वही)। निखिले—निखिलै (वही)।

[३२] सु—सोइ (वेल०)। क्योंहूँ०—कैहूँ नहीं (भारत, वेंक०); है नहीं (वेल०)। पुरुब—पूर्व (भारत, वेंक०, वेल०)।

दासजू हौँ अनुराग-भरे हिय बीच बसाइ करो नहिँ न्यारो।
लीन सिँगार न होत तऊ तन आपनो रंग तजै नहिँ कारो ॥३३॥

पूर्वरूप, यथा

सारी सितासित पीरी रतीलिहु मैं बगरावै वहै छवि प्यारी।
आभा-समूह मैं अंबर कौँ पहिचानिये दास बड़ी किये हारी।
चंद मरीचिन्ह सौँ मिलि अगन अंगन फैलि रहै दुति न्यारी।
भौन अँध्यारहु बीच गए मुखजोति तेँ वैसियै होति उज्यारी ॥३४॥

(दोहा)

हरि खग्गी अरु व्यालगन, आगे दौरत राज।
राज छुटेहू तुव दुवन, वन लियो राज को साज ॥३५॥

अथ अनुगुण-लक्षणं–(दोहा)

अनुगुन संगति तेँ जहाँ, पूरन गुन सरसाइ।
नील सरोज कटाछ लहि, अधिक नील ह्वै जाइ ॥३६॥
जदपि हुती फीकी निपटि, सारी केसरि-रंग।
दास तासु दुति ह्वै गई सुंदरि-रंग प्रसंग ॥३७॥

अथ मीलित वो सामान्यालंकार-लक्षणं–(दोहा)

मिलित जानिये जहँ मिलै, छीर-नीर के न्याय।
है सामान्य मिलै जहाँ हीरा फटिक सुभाय ॥३८॥

मीलित, यथा–(सवैया)

हुती बाग मैं लेत प्रसून अली मनमोहनहू तहँ आइ पखो।
मनभायो धरीक भयो पुनि गेह चवाइन मैं मनु जाइ पखो।
द्रुत दौरि गई गृह दास तहाँ न बनाइबे नेकु उपाइ पखो।
धक स्वेद उसास खरोटनि कौँ कछु भेद न काहू लखाइ पखो ॥ ३९ ॥

---

[३३] कैवा–कौवा (वेल०)। रस०–रसा सात लौँ सात (वही)। हौँ–त्यौँ (वही)।

[३४] छिरे०–छिन्हवारी (वेल०)। अगन०–आँगन अंगन्ह (मर०, वेल०)।

[३५] गन–गज (भारत, वेँक०)। लियो–लिये (भारत, वेँक०); लिय (वेल०)। को–कु (भारत); कं (वेँक०); क (वेल०)।

[३९] न बनाइबे–न पुनाइबे (मर०); तन नाइबे (वेँक०)।

सामान्य, यथा-(दोहा)

केसरिया पट्ट कनक तन, कनकाभरन सिँगार ।
गत केसरि केदार मैं, जानी जात न दार ॥ ४० ॥

यथा-(कवित्त)

आरसी को आँगन सुहायो छबिछायो,
नहरनि मैं भरायो जल उज्जल सुमन-माल ।
चाँदनी विचित्र लखि चाँदनी बिछौने पर,
दूरिकै चँदोवनि कौं बिलसै अकेली बाल ।
दास आसपास बहु भाँतिन बिराजैं धरे,
पन्ना पोखराज मोती मानिक पदिक लाल ।
चंद-प्रतिबिंब तैं न न्यारो होत मुख, औ'
तारे-प्रतिबिंबनि तैं न्यारो होत नगजाल ॥ ४१ ॥

उन्मीलित, विशेष अलंकार लक्षणं-(दोहा)

जहाँ मिलित सामान्य मैं, कछू भेद ठहराइ ।
तहँ उनमिलित बिसेष कहि, बरनत सुकवि सुभाइ ॥ ४२ ॥

उन्मीलित, यथा-(कवित्त)

सिख-नख फूलनि के भूषन बिभूषित कै,
बाँधि लीनी बलया बिगत कीनी बजनी ।
ता पर सँवारे सेत अंबर को डंबर,
सिधारी स्याम-संनिधि निहारी काहू न जनी ।
छीर के तरंग की प्रभा कौं गहि लीनी तिय,
कीनी छीरसिंधु छिति कातिक की रजनी ।
आँनद-प्रभा सौं तनछाँहहू छपाए जाति,
भौंरनि की भीर संग ल्याए जाति सजनी ॥ ४३ ॥

---

[४०] न दार-मदार (वेंक०) ।

[४१] छबि०-मन भायो (वेल०) । बिछौने-बिछौनो (भारत), बिछौना (वेंक०) । चँदोवनि-सहेलिनि (भारत, वेंक०, वेल०) ।

[४२] जहाँ०-जहँ मीलित (वेल०) । सुकबि०-सुभग सुहाइ (भारत, वेंक०) ।

[४३] के-तैं (वेल०) । प्रभा-छटा (भारत, वेंक०) । जाति-जानि (भारत); जात (वेल०) । ल्याए-लये (भारत, वेल०) ।

यथा—(दोहा)

जमुना-जल मैं मिलि चली, इन अँसुवन की धार।
नीर दूरि तें ल्याइयतु, जहाँ न पैयतु खार॥ ४४॥

विशेष, यथा

मनमोहन-मनमथन कौं, द्वै कहतो को जान।
जौं इनहूँ कर कुसुम को होतो बान-कमान॥ ४५॥
भई प्रफुल्लित कमल मैं, मुखछबि मिलित बनाइ।
कमलाकर मैं कामिनी, बिहरति होति लखाइ॥ ४६॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये उल्लासालंकारादिगुणदोषादिवर्णनं नाम
चतुर्दशमोल्लासः॥ १४॥

१५

समादि-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

उचित अनुचितौ बात मैं, चमत्कार लखि दास।
अरु कछु सुचक रीति लखि, कहत एक उल्लास॥ १॥
सम समाधि परिवृत्ति गनि, भाविक हरष विषाद।
असंभवौ संभावना, समुच्चयौ अविवाद॥ २॥
अन्योअन्य विकल्प पुनि, सह बिनोक्ति प्रतिषेध।
विधि काव्यार्थापत्तिजुत, सोरह कहत सुमेध॥ ३॥

---

[४४] जहाँ०–जहँ न पाइयतु (भारत, वेंक०, वेंक०)।
[४५] मनमथन–मन्मथ तु (सर०)।
[१] अनुचितौ–अनुचित (सर०); अनुचितौ (वेङ्क०)। कछु–इक
(भारत)।

अथ समालंकार–(दोहा)

जाको जैसो चाहिये, ताको तैसो संग।
कारज मैं सब पाइये, कारन ही को अंग ॥ ४ ॥
उद्यम करि जो है मिल्यो वहै उचित धरि चित्त।
है विषमालंकार को प्रतिद्वंदी सम मित्त ॥ ५ ॥

यथायोग्य को संग–(सवैया)

अँग अंग विराजतु है उनके इनहीँ के कनीनिका-रंग सन्यो।
उन्हैँ भौँर की भाँति बसाइबे कारन दास इन्हैँ कलकंज भन्यो।
लखि री उनको बस कीबेही कौँ इनको इनमैँ गुनजाल तन्यो।
घनस्याम को स्याम सरूप अली इन आँखिन ही अनुरूप बन्यो ॥ ६ ॥

(दोहा)

हरि-किरीट केकी-पखनि, निज लायक थल पाइ।
मिल्यो चंद्र कनि चंद्रिकनि, अनु अनु ह्वै मनु जाइ ॥ ७ ॥

कारज योग्य कारन, यथा–(सवैया)

चंचलता सुरबाजि तैँ दासजू सैलनि तैँ कठिनाई गही है।
मोहन-रीति महाबिष की दई मादकता मदिरा सौँ लही है।
धीवर देखि डरै जड़ सौँ बिहरै जलजतु की रीति यही है।
न्याइ ही नीचहि नीच फिरै यह इंदिरा सागर बीच रही है ॥ ८ ॥

उद्यम करि पायो सोई उत्तम–(दोहा)

जो कानन तैँ उपजिकै, कानन देत जराइ।
ता पावक सौँ उपजि घन, हनै पावकहि न्याइ ॥ ९ ॥
मधुप तुम्हैँ सुधि लेन कौँ, हम पै पठए स्याम।
सब सुधि लै बेसुधि करी, अब बैठे केहि काम ॥ १० ॥

---

[४] मैं–मौं (भारत)। को–के (वही) अंग–रग (भारत, वेंक०)।
[६] लखि–लखु (वेल०)। ही–के (वही)।
[७] चद्रकनि–चद्र की (वेल०)।
[८] नीचहि०–नीचन्ह संग (वेल०)।
[१०] लै०–लै बिसुधी (भारत, वेल०); मिलै बिसुधि (वेंक०)।

अथ समाधि-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

क्यौंहूँ कारज को जतन, निपट सुगम ह्वै जाइ।
तासौं कहत समाधि लखि, काकताल को न्याइ॥ ११॥

यथा

धीर धरहि कत करहि अब, मिलन-जतन की चाह।
होन चहत कछु द्योस में, तो मोहन को ब्याह॥१२॥

(सवैया)

काहे कों दास महेस महेस्वरी पूजिबे काज प्रसूननि तूरति।
काहे कों प्रात अन्हानन्नि कै बहु दाननि दै व्रत संजम पूरति।
देखि री देखि अगोटिकै नैननि कोटि-मनोज-मनोहर मूरति।
एई हैं लाल गुपाल अली जेहि लागि रहै दिन रैन बिसूरति॥१३॥

परिवृत्ति-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

कछु लीबो दीबो कथन, ताकौं विनिसै जानु।
परिवृत्तालंकारहू ताही कहत सुजानु॥ १४॥

यथा—(सवैया)

तिय कंचन सो तनु तेरो उन्हैं मिलिकै भयो सौतुख को सपनो।
उनको नगनील सो गात है वैसही तौ बस दास कहा लपनो।
इन बातनि तेरो गयो न कछू उनहीं उहकायो अली अपनो।
निज हीरो अमोल दयो औ' लयो यह द्वै पल को तुअ प्रेमपनो॥ १५॥

अथ भाविक-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

भूत भविष्यहु बात कौं, जहँ बोलत ब्रतमान।
भाविक भूषन कहत हैं, ताकौं सुमति सुजान॥ १६॥

---

[१३] अन्हाननि०—अन्हान कै दूँ (वेल०)। बहु—ब्रत (सर०)। देखि—देखु (वेल०)। अगोटि०—भट्ट भरि (वही)। एई—आये (वही)।
[१४] कथन—अधिक (वेल०)। परिवृत्ता०—अलंकार परवृत्त तहँ बरनत सुकवि (वही)।
[१५] मिलिकै—मिलिबो (वेल०)। हीरो—हीरा (वही)।

भूत-भाविक-वर्णनं—(कवित्त)

अजौं वाँकी भृकुटी गड़ी है मेरे नैन, अजौं
कसकै कटाच्छ उर छेदि पार ह्वै भई।
कज्जल जहर सौं कहर करि डाखो हुतो,
मंद मुसुकानि यौं न होती जौ सुधामई।
दास अजहूँ लौं दग आगे तैं न न्यारी होति,
पहिरे सुरंग सारी सुंदरि वधू नई।
मोही मोह दै करि सनेह-बीज वै करि जु,
कंज ओट कै करि चितै करि चली गई॥ १७॥

भविष्य-भाविक-वर्णनं—(सवैया)

आजु बड़े बड़े भागनि चाहि बिराजत मेरोई भाग बखारो।
दासजू आजु दयो बिधि मोहिं सुरालय के सुख तैं सुख न्यारो।
आजु मो भाल उदैगिरि मैं उयो पूरब-पुन्य को तारो उज्यारो।
मोद मैं अंग बिनोद मैं जी चहुँ कोद मैं चाँदनी गोद मैं प्यारो॥१८॥

अथ प्रहर्षण अलंकार—(दोहा)

जतन घनी करि थाकिये, वांछित यौं ही जासु।
वांछित थोरो लाभ अति, दैवजोग तैं आसु॥ १९॥
जतन ढूँढते बस्तु की, बस्तुहि आवै हाथ।
त्रिबिधि प्रहर्पन कहत हैं, लखि-लखि कविता-गाथ॥ २०॥

यौं ही वांछित फल, यथा—(सवैया)

ज्वाल के जाल उसासनि तैं बढ़ें देख्यो न ऐसी बिहाल-बिथा ती।
सीर समीर उसीर गुलाब के नीर पटीरहु तैं सरसाती।

---

[१७] कटाच्छ—चितौनि (वेल०)। डारयो—डारे (वही)। यौं०—जो न होती वा (वही)। ज्यौ—ज्यौं (भारत)। न्यारी०—न्यारे होत (वेंक०)। सुंदरि—चूँदरि (वही)। वधू—नर (वेल०)।

[१८] बखारो—बिचारो (भारत, वेल०); उन्यारो (वेंक०)। तीसरा चरण 'स८०' मैं छूट गया है।

[१९] थाकिये—थापिये (वेल०)। जासु—साजु (वही)। अति—बहु (वही)। आसु—आजु (वही)।

यथा—(कवित्त)

आई मधुजामिनी न आए मधुसूदनजू,
रावि न सिराति द्यौस बीतत बलाइ मैं।
करते भली जौ प्रान करते पयान आजु,
ऐसे मैं न आली और देखती उपाइ मैं।
कहा कहौं दास मेरी होती तबै निसा, जब
राहु ह्वैकै निसाकर ग्रसती बनाइ मैं।
हर ह्वैकै जारि डारि मनमथ हरिजू के
मन मथिबे कौं होती मनमथ जाइ मैं॥ ३१॥

समुच्चयालंकार-वर्णनं—(दोहा)

एकै करता सिद्धि को, औरै होहिं सहाइ।
बहुत होहिं इक बार कै, द्वै अनमिल इक भाइ॥ ३२॥
ऐसी भाँतिन्ह जानिये, समुच्चयालंकार।
मुख्य एक लच्छन यही, बहुत भए इक बार॥ ३३॥

प्रथम, यथा—(कवित्त)

दारनि सितारनि के तारनि की तानैं मंजु,
तैसियै मृदंगनि की धुनि धुंधुकारती।
चमकैं कनक-नग-भूषन बनकवारे,
तैसी घुँघरून की झनक मनु झारती।
दास गरबीली पग-ठौनि चक भ्रुव-नौनि
तैसियै चितौनि सहसनि मोहि मारती।
बाँकी मृगनैनी की अचूक गति लैनि मृदु,
हीरा से हिये कौं टूक टूक करि डारती॥ ३४॥

---

[३१] आए—आयो (सर०)। ह्वैकै०—ह्वै निसाकर निरासती (भारत), ह्वै निसाकर कौं ग्रसती—(वेल)। ग्रसती—ग्रासती (वेंक०)।
[३३] यही—वही (सर०)।
[३४] तानैं—तौरे (वेंक०)। वारे—बने (वही)। झन०—मान झारती (वही), झन झारती (भारत), झलकारती (वेल०)। ठौनि—मक (वेंक०)। लैनि—लेती (वेंक०); लीन (वेल०)। से—सौं (वेंक०)।

दूजो, यथा—(दोहा)

धन जोबन बल अज्ञता, मोहमूल एक एक।
दास मिलैं चारयौ तहाँ, पैये कहाँ बिबेक ॥ ३५ ॥
नातो नीचो गर परो, कुसंगनिवास कुभौन।
बंध्या तिय को कटु बचन, दुखद घाय को लौन ॥ ३६ ॥
पूत सपूत सुलच्छनो, तनु अरोग धन धंध।
स्वामि-कृपा सगति सुमति, सोनो और सुगंध ॥ ३७ ॥

अस्य तिलक

इहाँ दृष्टांतालंकार अपरांग है सोनो सुगंध तैं। ३७ अ ॥

(दोहा)

संसय सकल चलाइकै, चली मिलन पिय बाम।
अरुन बदन करि आपनो, सौति-बदन करि स्याम ॥ ३८ ॥

अथ अन्योन्यालंकार-वर्णनं

होत परस्पर जुगल सोँ, सो अन्योन्य सुछंद।
लसति चंद सोँ जामिनी, जामिनि ही सोँ चंद ॥ ३९ ॥

यथा

मोल तोल के ठीक बनि, इन किय साँझ सकाम।
वह निसि बढ़वति लेत गथ, कहि कहि लालहि स्याम ॥ ४० ॥
हर की औ' हरदास की, दास परस्पर रीति।
देत वै उन्हैं वै उन्हैं, कनक बिभूति सप्रीति ॥ ४१ ॥
ज्यौँ ज्यौँ तनु धारा किये, जल प्यावति रिझवारि।
पियै जात त्यौँ त्यौँ पथिक, बिरली वोख सँवारि ॥ ४२ ॥

---

[३५] अज्ञता—बिग्यता (सर०)।
[३६] को—की (सर०) ; के (भारत, वेल०)।
[३७] सुलच्छनो—सुलच्छनी (वेल०)।
[३६अ] तैं— × (भारत, वेंक०)।
[४०] बनि—निज (वेल०)। वह—कहँ (वेंक०)।
[४१] वै०—वै इन्हैं (वेल०)।
[४२] बिरली०—बिरलो वेष (भारत, वेल०) ; बिरलो बोल (वेंक०)।

यथा–(कवित्त)

बातैं स्यामा स्याम की न वैसी अब आली, स्यामा
स्याम तकि भाजै स्याम स्यामा सोँ तकी रहै।
अब तौ लखोई करै स्यामा को बदन स्याम,
स्याम के बदन लागी स्यामा की टकी रहै।
दास अब स्यामा के सुभाय मद छाके स्याम,
स्यामा स्याम सोभनि के आसव छकी रहै।
स्यामा के बिलोचन के हैं री स्याम तारे अरु,
स्यामा स्याम-लोचन की लोहित लकीर है॥ ४३॥

अथ विकल्पालंकार–(दोहा)

है विकल्प यह कै वहै, यह निहचै जहँ राजु।
सत्रु-सीस कै सत्र निज, भूमि गिराऊँ आजु॥ ४४॥

यथा–(सवैया)

जाइ उसासनि के सँग छूटि कि चंचला के पथ लूटि लै जाहीँ।
चातक पावक-पद्धिन देहिँ कि लेहिँ घने घन जे घहराहीँ।
दासजू कौन कुतर्क कियो करै जीव है एक ही दूसरो नाहीँ।
पौन लै अंतक-भौन सिधारो कि मारौ मनोभव लै सिर माहीँ॥ ४५॥

अथ सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध लक्षणं–(दोहा)

कछु कछु संग सहोकि कछु, बिन सुभ असुभ बिनोक्ति।
यह नहिँ यह परतच्छहीँ, कहिये प्रतिषेधोक्ति॥ ४६॥

सहोक्ति, यथा–(सवैया)

जोग बियोग खरो हम पैँ उहि क्रूर अक्रूर के साथहि आए।
भूख औ' प्यास स्यौँ भोग बिलास लै दास वै आपने संग सिधाए।

[४३] आली०–आली स्याम स्यामा (भारत, वेंक०, वेल०)। भाजै–भागै (वेंक०)। स्याम०–स्यामा स्याम सोँ जकी (भारत, वेंक०, वेल०)। के–की (सर०)।
[४४] निहचै–निस्चय (भारत, वेंक०, वेल०)।
[४५] पावक–पातक (वेंक०)। पद्धिन०–लैँहि मनो कि घनाघन जौन घने (वेल०)। सिधारो–सिधारै (भारत, वेल०)। मारौ–मारै (वही)।
[४६] कहिये–कहियत (सर०)।

चीठी के सग वसीठी लै आइकै ऊधौ वही हमैं आजु बताए।
कान्ह के संग सयान तुम्हौ निजु कूबरी-कूबर बीच बिकाए ॥४७॥

फूलनि के सँग फूलिहैं रोम परागनि के सँग लाज उड़ाइहै।
पल्लव-पुंज के सग अली हियरो अनुराग के रंग रँगाइहै।
आयो वसंत न कंत हितू अब वीर बरौंगी जो धीर धराइहै।
साथ तरूनि के पातनि के तरुनीनि के कोप-निपात ह्वै जाइहै ॥४८॥

विनोक्ति, यथा

सूधे सुधासने बोल सुहावने सूधो निहारिबो नैन सुधोहैं।
सुद्ध सरोज वँधे से उरोज हैं सूधे सुधानिधि सो मुख जोहैं।
दासजू सूधे सुभाय सौं लीन सुधाई भरे सिगरे अँग सोहैं।
भावती चित्त भ्रमावती मेरो कहाँ तें भईं ये भईं भौं हैं ॥४९॥

यथा-(कवित्त)

देस विनु भूपति दिनेस बिनु पंकज,
फनेस बिनु मनि औ' निसेस बिनु जामिनी।
दीप विनु नेह औ' सुगेह विनु संपति,
अदेह बिनु देह घनमेह बिनु दामिनी।
कविता सुछंद बिनु मीन जलबृंद बिनु,
मालती मलिंद बिनु होत छवि-छामिनी।
दास भगवंत बिनु संत अति ब्याकुल,
वसंत बिनु लतिका सुकंत बिनु कामिनी ॥५०॥

नेगी विनु लोभ को पटैत बिनु छोभ को,
तपस्वी बिनु सोभ को सतायो ठहराइये।
गेह विनु पक को सनेह विनु संक को,
सदा विनु कलंक को सुवंस सुखदाइये।

---

[४७] स्यौं-सौं (सर्वत्र)। वही०-हमै वह (भारत, वेल०); हमैं वहै (वेंक०)। तुम्हौ०-सखा तुम (भारत, वेंक०); तुम्हैं निज (बेल०)।
[४८] रग-हेत (सर०)। कोप-प्रान (भारत)।
[४९] भरे-भरो (सर०)। भईं०-भईं सुधाई की (वेल०)।
[५०] नेह-गेह (भारत)। सुगेह-सनेह (वही)। अदेह-सुदेह (वेल०)। देह-देही (वही)। होत-होती (वेंक०, वेल०)। 'सर०' में दूसरा चरण तीसरा है।

विद्या बिनु दंभसूत आलसविहीन दूत,
बिना कुव्यसन पूत मन मध्य ल्याइये।
लोभ बिनु जपजोग दास देह बिनु रोग,
सोग बिनु भोग बड़े भागनि तें पाइये ॥५१॥

प्रतिषेध, यथा

गेयन्द चरैबो नहीं गिरि को उठैबो नहीं,
पावक अचैबो है न पाहन को तारिबो।
धनुष चढ़ैबो नहीं बसन बढ़ैबो नहीं,
नाग नथि लैबो है न गनिका उधारिबो।
मधु मुर मारिबो बकासुर बिदारिबो न,
वारन उबारिबो न मन मैं बिचारिबो।
ह्याँ तें ह्वै न जैहौ पेस सुनौ राम भुवनेस,
सबतें कठिन बेस मेरो क्लेस टारिबो ॥ ५२ ॥

अथ विधि-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

अलंकार बिधि सिद्धि कौं फेरि कीजिये सिद्धि।
भूपति है भूपति वही, जाके नीति-समृद्धि ॥ ५३ ॥
धरै काँच सिर औ' करै, नग को पगनि बसेर।
काँच काँच ही नग नगै, मोल तोल की बेर ॥ ५४ ॥

यथा—(सवैया)

रे मन कान्ह में लीन जौ होहि तौ तोहूँ कौं मैं मन मैं गनि राखौं।
जीव जौ हाथ करै बृजनाथ तौ तोहि मैं जीवन मैं अभिलाखौं।
अंग गुपाल के रंग रँगौ तौ हौं अंग लहे को महा फल चाखौं।
दासजू धाम है स्याम को रानै तौ तारिका तोहि मैं तारिका भाखौं ॥५५॥

---

[५१] नेगी—जोगी (भार०)। सोम—छोभ (वही)।
[५२] मुर—सुर (बेल०)। उधारिबो—उधारिबो (भारत, बेल०)। है०—
तो न जैहे (भारत); है न जैबो (वेंक०); तो न जैहौं (बेल०)।
[५३] वही—वहो (भार०); वही (भारत)।
[५४] को—के (ला०)। हैं—है (बेल०)।
[५५] रँगो—रँगे (भारत, वेंक०, बेल०)। तौ हौं—तहूँ (बेल०)।

अथ काव्यार्थापत्ति अलंकार-लक्षणं—(दोहा)

यहै भयो तौ यह कहा, यहि बिधि जहाँ बखान।
कहत काव्य पद सहित तिहि, अर्थापत्ति सुजान ॥ ५६ ॥
बंधुजीव कौं दुखद है, अरुन अधर तुव बाल।
दास देत यह क्यौं डरै, परजीवन दुखजाल ॥ ५७ ॥
मैं वारौं जा बदन पर, कोटि कोटि सत इंदु।
तापर ये वारैं कहा, दास रुपैया-बृंदु ॥ ५८ ॥

यथा—(सवैया)

चंदकला सो कहायो कहूँ तैं नखच्छत एक लग्यो उर तेरे।
सौतिन को मुख पूरनचंद सो जोतिविहीन भयो जिहि नेरे।
कातिकहू को कलानिधि पूरो कहा कहि सुंदरि तो मुख हेरे।
दास यहै अनुमानिकै अंग सराहिबो छोड़ि दियो मन मेरे ॥ ५९ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये समालकारादिवर्णन
नाम पंचदशमोल्लासः ॥ १५ ॥

१६

अथ सूक्ष्मालंकार-वर्णनं—(दोहा)

सूछम पिहितो जुक्ति गनि, गूढ़ोत्तर गूढ़ोक्ति।
मिथ्याध्यवसायो ललित, विव्रतोक्ति व्याजोक्ति ॥१॥
परिकर परिकर-अंकुरो, इग्यारह अचरेखि।
धुनि के भेदनि मैं इन्हैं, वस्तुव्यंजकै लेखि ॥२॥

---

[५६] जहाँ—कही (भारत)।
[५८] इंदु—इंद (भारत), चंद (वेल०)।
[५९] कहायो—कहावै (सर०)। एक—पंक (वेल०)। छोड़ि—राखि (वेंक०)।
[१] मिथ्या०—मिथ्याध्यवसित ललित अरु (वेल०)।

अथ सूक्ष्मालंकार—(दोहा)

चतुर चतुर बातैं करैं, संज्ञा कछु ठहराइ।
तेहि सूछम भूषन कहैं, जे प्रवीन कबिराइ ॥३॥

यथा—(कबित्त)

आजु चंद्रभागा वहि चंद्रबदनी पै आली,
नृत्तित करत आई मोर के परन कौं।
वह धौं समुझि कहा बेनी गहि रही तब,
बाहू दरसायो री बँधूक के दरन कौं।
दास वहि परस्यो कहा धौं तरलात, वहि
परस्यो कहा धौं दोऊ आपने करन कौं।
नागरी गुनागरी चलत भई ताही छन
गागरी लै रीती जमुनाजल भरन कौं ॥४॥

अथ पिहितालंकार-लच्छणं—(दोहा)

जहाँ छपी पर-बात कौं, जानि जनावै कोइ।
तहाँ पिहित भूषन कहैं, छपे पहेली सोइ ॥५॥

लाल-भाल-रँग लाल लखि बाल न बोली बोल।
लजित कियो वा दृगनि कौं, कै सामुहैं कपोल ॥६॥

परम पियासी पहुनहगि, प्रबिसी आतुर तीर।
अंजलि भरि क्यौं तजि दियो, पियो न गगानीर ॥७॥

केलि फैलिहूँ दासजू, मनिमय-मंदिर द्वार।
बिन 'पराध क्यौं रमन कौं, कीन्हौं चरनप्रहार ॥८॥

---

[३] करैं—जहाँ (सर०)।
[४] नृत्तिन—नृत्यत (भारत, वेंक०); निरति (वेल)। करत—करन (वेंक०)। आई—आए (वेल)। वह—यह (भारत, वेंक०) बँधूक—बँधूप (सर०, वेंक०)। वहि—वह (वेल०)। रीती—तीर (वेल०)।
[५] छपे—छपी (भारत, वेल०)।
[८] फैलि०—दशा में (भारत)।

अथ युक्ति-अलंकार-लक्षणं

क्रियाचातुरी सौं जहाँ, करै बात को गोप।
ताहि जुक्ति भूषन कहैं, जिन्हैं काव्य की चोप ॥९॥

यथा- सवैया)

होरी की रैनि विताइ कहूँ प्रिय प्रीतम भोरहि आवत जोयो।
नेकु न बाल जनाइ भई जऊ कोप को बीज गयो हिय बोयो।
दासजू दै दै गुलाल की मारनि अंकुरिबो वहि बीज को खोयो।
भावते भाल को जावक, ओठ को अंजन, ही को नखच्छत गोयो ॥१०॥

अथ गूढ़ोत्तर-लक्षणं- (दोहा)

अभिप्राय तैं सहित जौ, ऊतर कोऊ देइ।
ताहि गूढ़उत्तर कहत, जानि सुमति जन लेइ ॥११॥

यथा-(सवैया)

नीर के कारन आई अकेलियै भीर परैं सँग कौन कौं लीजै।
ह्यौंऊ न कोऊ नयो दिवसोऊ अकेले उठाए घड़ो पट भीजै।
दास इतै लखआन्ह को ल्याइ भलो जल छाँह को प्याइजै पीजै।
एतो निहोरो हमारो करौ घट ऊपर नेकु घटो धरि दीजै ॥१२॥

अथ गूढ़ोक्ति-लक्षणं-(दोहा)

अभिप्राय-जुत जहँ कहिय, काहू सौं कछु बात।
तहँ गूढ़ोक्ति बखानहीं, कवि पंडित अवदात ॥१३॥

---

[९] करै-करत (सर०)।

[१०] भावते-भावतो (वेंक०)।

[११] तैं-कै (बेल०)। ऊतर-उत्तर (वेंक०, बेल०)। कहत-कहै। (सर०)।

[१२] नयो०-गयो० (भारत); न द्यौस कछू है (बेल०)। लखआन्ह-लिखवानु (भारत); लिखवाहु (वेंक०); लखवाहु (बेल०)। छाँह०-प्याइचो (वेक०)। प्याइजै-प्याइय (बेल०)। करौ-लला (भारत)।

यथा-(सवैया)

दासजू न्यौते गई कछु द्यौस कौं कालिह तें त्यों न परोसिन्यो आवति ।
हौं ही अकेली कहाँ लौं रहौं इन अंधी-अँधानि को ज्यौं बहरावति ।
प्रीतमु छाइ रह्यो परदेस अँदेस इहै जु सँदेस न पावति ।
पंडित हौ गुनमंडित हौ महिदेव तुम्हैं सगुनौतियौ आवति ॥१४॥

अथ मिथ्याध्यवसिति-लक्षणं-(दोहा)

एक झुठाई-सिद्धि कौं, झूठो बरनै और ।
सो मिथ्याध्यवसाय है, भूषन कविसिरमौर ॥१५॥

यथा-(सवैया)

सेज अकास के फूलनि की सजि सोवती दीन्हे प्रकास-कॅवारे ।
चौकी मैं बाँझ के बेटे रहैं बहु पाँय पलोटत भूमि के तारे ।
नीर मैं दास बिहार करौं अहि-रोम-दुसालो नयो सिर डारे ।
कौन कहै तुम झूठी कहौ मैं सदा बसती उर लाल तिहारे ॥१६॥

अथ ललितालंकार-लक्षणं-(दोहा)

ललित कह्यो कछु चाहिये, कहिय तासु प्रतिबिंब ।
दीप बारि देख्यो चहै, कूर जु सूरजबिंब ॥१७॥

यथा-(सवैया)

कंट कटीलिका बागनि मैं बयो दास गुलाबनि दूरि कै दीजै ।
आजु तें सेज अँगारन की करौ फूलनि कौं दुखदानि गनीजै ।
ऊधो अहीरिनि के गुर हैं इनको सिर आयसु मानिही लीजै ।
गुंज के गंज गहौ तजि लालनि डारि सुधा विष संग्रह कीजै ॥१८॥

---

[१४] कछु०—घर की सब (बेल०) । ज्यौं—जी (वही) ।

[१५] मिथ्या०—मिथ्याध्यवसिन कहैं (बेल०) ।

[१६] दीन्हे—दीन्हि (भारत), दीन्ही (वेंक०) ; दीन्ह (बेल०) । चौकी—चौक (भारत) । बेटे—पूत (भारत, बेल०) । पलोटत—पलोटनो (सर०) ; पलोट्यौ (वेंक०) । नीर—तीरै (वेंक०) । बिहार—बिहारौ (सर०) । दुसालो०—दुसालन यौं (भारत, बेल०) ।

[१७] कछु—जो (बेल०) ।

[१८] बयो—बओ (भारत) ; बवो (बेल०) ।

बोलनि में किल कोकिल के कुल की कलई कब धौं उघरैंगी।
कौन घरी इहिं भौन जरे उजरे कौं बसंत-प्रभानि भरैंगी।
हाइ कबै यहि क्रूर कलंकी निसाकर के मुख छार परैंगी।
प्रानप्रिया इन नैननि कौं किहि द्यौस कृतारथरूप करैंगी ॥१९॥

अथ विवृतोक्ति–(दोहा)

जहाँ अर्थ गूढ़ोक्ति को, कोऊ करै प्रकास।
विव्रतोक्ति तासौं कहैं, सकल सुकबिजन दास ॥२०॥

यथा–(सवैया)

नैन नचौहैं हँसौहैं कपोल अनंद सौं अंगनि अंग अमात है।
दासजू स्वेदनि सोभ जगी परै प्रेमपगी सी डगी थहरात है।
मोहिं भुलावै अटारी चढ़ी कहि कारी घटा बगपाँति सोहात है।
कारी घटा बगपाँति लखैं इहि भाँति भए कहि कौन के गात है ॥२१॥

यथा–(दोहा)

कियो सरस तन को रही तनको रही न ओट।
लखि सारी कुच में लसी, कुच में लसी खरोट ॥२२॥

यथा–(कवित्त)

द्वार खरी नवला अनूपम निरखि,
उतरयो भो पथिक तहाँ तन मन हारिकै।
चातुरी सौं कह्यो इत रह्यो हम चाहैं नहीं,
जायो जात उन्नत पयोधर निहारिकै।
दास तिन ऊतरु दियो है यौं बचन भाखि,
राखिकै सनेह सखी मति कौं निवारिकै।
ह्याँ तौ है पषान सब मसक न देहैं कल,
रहिये पथिक सुभ आश्रम बिचारिकै ॥२३॥

---

[१९] किल–कल (वेल०)। यहि–उहि (सर०); यह (भारत, वेंक०, वेल०)। निसाकर–निसाचर (वेंक०)।
[२१] डगी०–ठगी ठहरात (भारत, वेल०)।
[२२] कियो–किये (भारत, वेल०)।
[२३] जात–जाइ (सर०)। आश्रम–आसन (भारत, वेंक०)।

अथ व्याजोक्ति अलंकार–(दोहा)

बचनचातुरी सौं जहाँ, कीजै काज दुराउ।
सो भूषन व्याजोक्ति है, सुनौ सुमतिसमुदाउ ॥२४॥

यथा–(सवैया)

अबहीं की है बात हौं न्हात हुती अचकाँ गहिरे पग जात भयो।
गहि ग्राह अथाह को लैही चल्यो मनमोहन दूरिही तें चितयो।
द्रुत दौरिकै पौरिकै दास बरोरिकै छोरिकै मोहिं जियाइ लियो।
इन्हैं भेटि हौं भेटती तोहि अली भयो आजु तौ मो अवतार नयो ॥२५॥

यथा–(कवित्त)

तेरी खीझिबे की रुचि रीझि मनमोहन की,
यातें वहै स्वाँग सजि सजि नित आवते।
आपुही तें कुंकुम की छाप नखछत गात,
अंजन अधर भाल जावक लगावते।
ज्यौं ज्यौं तूं अयानी अनखानी दरसावै त्यौं त्यौं,
स्याम छूत आपने लहे को सुख पावते।
उनहीं खिसावै दास हँसि जौ सुनावै, तुम
यौंहूँ मनभावते हमारे मन भावते ॥२६॥

अथ परिकर-परिकरांकुर-लक्षणं–(दोहा)

परिकर परिकरअंकुरो, भूषन जुगल सुवेष।
साभिप्राय बिसेषनो, साभिप्राय बिसेष ॥ २७ ॥

परिकरालंकार-लक्षणं–(दोहा)

बर्ननीय के साज को, नाम बिसेषन जानि।
सो है साभिप्राय तौ, परिकर भूषन मानि ॥ २८ ॥

---

[२५] अचकाँ-अचकौं (भारत); अमते (वेल०)। बरोरि-भरोरि (वही)। भेँटि०–भेँटिकै भेँटिहौं (भारत, वेल०): भेटती–भेटिहौं (वेंक०)।

[२६] तूं–तैं (भारत, वेल०)। उनहीं०–इन्हैं खिसिआवै (वेल०)। हँसि०हास (वही)। तुम–तुम्हैं (वही)। यौंहूँ–यौंहू (भारत)। वाहू (वेंक०)।

यथा-(सवैया)

भाल मैं जाके कलानिधि है वह साहिब ताप हमारी हरैगो।
अंग मैं जाके विभूति भरी वहै भौन मैं संपति भूरि भरैगो।
घातक है जु मनोभव को मम पातक वाही के जारे जरैगो।
दासजू सीस पै गंग धरे रहै ताकी कृपा कहौ को न तरैगो ॥ २९ ॥

परिकरांकुर-वर्णनं-(दोहा)

वर्ननीय जु बिसेष है, सोई साभिप्राय।
परिकरअंकुर कहत हैं, तिहि प्रवीन कबिराय ॥ ३० ॥

यथा-(सवैया)

भाल मैं वाम के ह्वैकै बली विधो बाँकी भ्रुवैं बरुनीन मैं आइकै।
ह्वैकै अचेत कपोलनि छ्वै बिछल्यो अधरा को पियो रस धाइकै।
दासजू हासछटा मन चौंकि छनेक लौं ठोढी के बीच बिकाइकै।
जाइ उरोज सिरै चढ़ि कूद्यो गयो कढ़ि सो त्रिबली मैं नहाइकै ॥३१॥

अस्य तिलक

यामैं लुप्तोपमा को समप्रधान संकर है। ३१ अ ॥

यथा-(दोहा)

बर तरिवर तुअ जनम भो, सफल बीसहूँ बीस।
हमै न या तियबाग को, कियो असोकौ ईस ॥ ३२ ॥

अस्य तिलक

बरवृक्ष कौं-इस्त्री भाँवरि देति है असोक कौं लात मारति है तब वह फूलत है तातैं वर्ननीय साभिप्राय है परिकरांकुर सुद्ध भयो। ३२ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये सूक्ष्मालंका-
रादिवर्णनं नाम षोडशमोल्लासः ॥ १६ ॥

---

[२९] हमारी-हमारो (भारत, बेल०)। मम-मन (भारत, वेंक०, बेल०)।
जू-जो (बेल०)। कहौ-कहु (भारत, बेल०)।

[३१] बिछल्यो-बिछुरे (बेल०)। को-मैं (सर०)। छनेक-घरीक (बेल०)।
कढ़ि-कटि (भारत, वेंक० बेल०)।

[३२] तिय-त्रिय (सर०)।

१७

अथ स्वभावोक्ति-अलंकारादि-वर्णनं—(दोहा)

सुभावोक्ति हेतुहि सहित, जे बहु भाँति प्रमान।
काव्यलिंग सु निरुक्ति गनि, अरु लोकोक्ति सुजान॥ १॥
पुनि छेकोक्ति विचारिकै, प्रत्यनीक समतूल।
परिसंख्या प्रस्नोत्तरो, दस वाचक पदमूल॥ २॥

स्वभावोक्ति-लक्षणं

सत्य सत्य वरनन जहाँ, सुभावोक्ति सो जानु।
ता संगी पहिचानिये, बहुविधि हेतु प्रमानु॥ ३॥
जाको जैसो रूप गुन, बरनत ताही साज।
तासौं जाति सुभाव सब कहि बरनत कविराज॥ ४॥

जाति-वर्णनं, यथा—(सवैया)

लोचन लाल सुधाधर बाल हुतासन-ज्वाल सुभाल भरे हैं।
मुंड की माल गयंद की खाल हलाहल काल कराल गरे हैं।
हाथ कपाल त्रिसूल जु हाल भुजानि में ब्याल बिसाल जरे हैं।
दीनदयाल अधीन को पाल अधंग मैं बाल रसाल धरे हैं॥ ५॥

स्वभाव-वर्णनं—(कवित्त)

विमल अँगोछि पौंछि भूषन सुधारि सिर,
ऑगुरिन फोरि त्रिन तोरि तोरि डारिती।
उर नखछद रद छदनि मैं रदछद,
पेखि पेखि प्यारे कौं मुकति मनकारती।

---

[१] हेतुहि-है तेहि (सर०)। जे—जो (वही)। सु०—निरुक्त (वही); निरउक्ति (वेल०)।

[४] ताही—तेही (वेंक०)। सब०—कहि बरनत सब (वेल०)।

[५] भाल—भाव (वेल०)। काल—काग (सर०)। अधंग—अधाँग (वही); अधंग (वेंक०)।

भई अनखौहीँ अवलोकति लली कौँ फेरि,
अंगन सँवारती दिठौना दै निहारती।
गात की गोराई पर सहज भोराई पर,
सारी सुंदराई पर राई लोन वारती ॥ ६ ॥

अथ हेतु-अलंकार-लच्छणं-(दोहा)

या कारन को है यही, कारज यह कहि देतु।
कारज कारन एक ही कहँ जानियत हेतु ॥ ७ ॥

यथा-(कवित्त)

सुधि गई सुधि की न चेत रह्यो चेत ही मैं,
लाज तजि दीन्ही लाज साज सब गेह को।
गारी भई भूषन भए हैं उपहास बास,
दास कहै देह मैं न तेह रह्यो तेह को।
सुख की कहानी हमैं दुख की निसानी भई,
झार भए अनिल अनल भए मेह को।
कुल के धरम ये हैं घावरे परम ये हैं,
साँवरे करम सब रावरे सनेह को ॥ ८ ॥

अस्य तिलक

इहाँ लच्छना सक्ति तेँ सिगरे कबित्त मैं अतिसयोक्ति व्यंगि है, 'ये करम रावरे के नेह को' एती बात हेतालंकार है। ८ अ ॥

कारज कारन एक, यथा-(सवैया)

आजु सथान इहै सजनी न कहूँ चलिबो न कहूँ को चलैबो।
दास ज्यौं काहू के नाम को लीबो है आपनी बात को पेच बढ़ैबो।

[६] अँगोछि-अगौछे (सर०)। फेरि-फेरि (भारत)। झुकति-झकति (भारत); हुकति (वेंक०); झकत (वेल०)। लली-लला (भारत, वेल०)।

[८] भई-भए (वेल०)। भए-भयो (भारत, वेल०)। ये हैं-भए (भारत, वेंक०, वेल०)। ये हैं-यहै (वेल०)। के०-सनेह (भारत, वेल०)।

[८अ] के नेह-सनेह (भारत)। को-के हैं (वही)। एती-इतनी (भारत, वेंक०)। है-X (भारत)।

होत इहाँ तौ अरी तुअ वैरी गुपाल को आलिन ओर चितैबो।
अंतर-प्रेम-प्रकासक है यह तेरोइ लाल को देखि लजैबो ॥ ९ ॥

अथ प्रमाणालंकार-वर्णनं—(दोहा)

कहुँ प्रतच्छ अनुमान कहुँ, कहुँ उपमान दिखाइ।
कहूँ बड़न की बात लै, आत्मतुष्टि कहुँ पाइ ॥ १० ॥
अनुपलब्धि संभव कहूँ, कहुँ लहि अर्थापत्य।
कवि प्रमान भूषन कहैं, बात जु बरनै सत्य ॥ ११ ॥

प्रत्यक्ष-प्रमाण

बालरूप जोबनवती, भव्य तरुन को संग।
दीन्हो दई सुतंत्र कै, सती होइ केहि ढंग ॥ १२ ॥

अनुमान-प्रमाण

यह पावस-तम साँझ नहिं, कहा दुचितमति भूलि।
कोक असोक विलोकिये, रहे कोकनद फूलि ॥ १३ ॥

उपमान-प्रमाण

सहस घटनि मैं लखि परै ज्यौं एकै रजनीस।
त्यौं घट घट में दास है, प्रतिबिंबित जगदीस ॥ १४ ॥

शब्द-प्रमाण

श्रुति पुरान की उक्ति कौं, लोकउक्ति दै चित्त।
बाच्य प्रमान जु मानिये, सब्द प्रमान सु मित्त ॥ १५ ॥

श्रुतिपुराणोक्ति-प्रमाण-वर्णनं—(सोरठा)

तुम जु हरी पर-बाल, तातैं हम यहि हाल मैं।
नाथ बिदित सब काल, जो हन्यात सो हन्यते ॥ १६ ॥

---

[९] की—को (भारत, वेल०)। अरी०—अरीति अवैरी (भारत, वेल०)। की—के (सर०), कौ (वेल०)।
[१०] की बात—के वाक्य (भारत) ; की वाक्य (वेंक०) ; को वाक्य (वेल०)।
[१२] दीन्हो०—दीन्ही दई सुतंत्रता (भारत)।
[१३] रहे—रहै (भारत, वेंक०, वेल०)।
[१४] सहस—सहज (सर०)।
[१६] हन्यात—हन्ता (सर०)।

लोकोक्ति-प्रमाण-वर्णनं—(दोहा)

कान्ह चलौ किन एक दिन, जहँ परपंची पाँच ।
दीज्य कहैँ सो दीजिये, कहा साँच को आँच ॥ १७ ॥

आत्मतुष्टि-प्रमाण

अपने अंग सुभाव्र को, दिढ़ बिस्वास जहाँहिँ ।
आतमतुष्टि प्रमान कवि कोबिद कहत तहाँहिँ ॥ १८ ॥
मोहिँ भरोसो जाउँगी, स्याम किसोरहिँ ब्याहि ।
आली मो अँखियाँ नतरु, इन्हैँ न रहतीँ चाहि ॥ १९ ॥

अनुपलब्धि-प्रमाण, यथा

यौँ न कहौ कटि नाहिँ तौ कुच हैँ किहि आधार ।
परम इंद्रजाली मदन-बिधि को चरित अपार ॥२०॥

संभव-प्रमाण, यथा

होती बिकल बिछोह की तनक भनक सुनि कान ।
मास-मास दे जात हौ, याहि गनौ बिन प्रान ॥२१॥
उपजहिँगे ह्वैहैँ अजौँ, हिंदूपति से दानि ।
कहिय काल निरअवधि लखि, बड़ी बसुमती जानि ॥२२॥

अर्थापत्ति-प्रमाण

तिय-कटि नाहिंन जे कहैँ, तिन्हैँ न मति की खोज ।
क्यौँ रहते आधार बिनु, गिरि से जुगल उरोज ॥२३॥
इतो पराक्रम करि गयो, जाको दूत निसंक ।
कत कहो दुस्तर कहा, ताहि तोरिबो लंक ॥२४॥

---

[१७] परपंची–परपंचो (भारत, बेल०) । दीज्य–दिव्य (सर०), देहु (भारत, बेल०) । मो–तो (वही) । दीजिये–लीजियो (वही) ।
[१८] कहत–कहहिँ (भारत, वेक०) ।
[१९] इन्हैँ–इती (भारत, बेल०) ।
[२०] न–जु (भारत, बेल०) ।
[२२] अजौँ–अजौँ (वेंक०) । निर०–निरवधि अलग्य (भारत, बेल०); निरवधि अलहि (वेंक०) ।

अथ काव्यलिंग-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

जहँ सुभाव के हेतु को, कै प्रमान को कोइ।
करै समर्थन जुक्तिबल, काव्यलिंग है सोइ ॥२५॥
कहुँ वाक्यार्थ समर्थिये, कहुँ सब्दार्थ सुजान।
काव्यलिंग कविजुक्ति गनि, वहै निरुक्ति न आन ॥२६॥

स्वभावोक्ति-समर्थन, यथा—(सवैया)

बाल तमासे ह्यौं बाल के आवत कौतुकजाल सदा सरसात हैं।
सोर चकोरन की चहुँ ओर बिलोकत बीच हियो हरषात हैं।
दासजू आनन-चंद-प्रकास तें फूले सरोज कली ह्वै ह्वै जात हैं।
ठौरहि ठौर बँधे अरविंद मलिंद के वृंद घने भननात हैं ॥२७॥

(दोहा)

हिये रावरे साँवरे, यातें लगति न बाम।
गुंजमाल लौं अर्थतन, हौंहूँ होउँ न स्याम ॥२८॥

हेत-समर्थन—(कवित्त)

इनही की छबि है तिहारे छूटे बारन में,
मेरो सिर छ्वै छवै मोरपच्छनि बताई है।
आनन-प्रभा कों अरविंद जल पैठो दास,
बानी वर देवी किल कोकिल दोहाई है।
कुच की अचलता कों संभु सिर लीन्हें गंग,
रोमावलि-हेतु मधुपाली मधु ल्याई है।
ह्वै ह्वै सौंह-बादी ह्यौं फिरादी हैं चपलनैनी,
जिन जिन की तूँ यह चारुता चोराई है ॥२९॥

---

[२५] को कोइ—जो कोइ (भारत, वेल०)। बल—सौं (भारत, वेंक०)।

[२७] ह्यौं—कै (वेल०)। बाल०—आवत चाल को (वही)। की—को (भारत, वेल०)। बीच०—दान० (सर०); ही हियरो (वेल०)। फूले—फूलो (भारत, वेल०)। ह्वै०—होइ (वही)।

[२८] बाम—धाम (सर०)।

[२९] इनही०—छबि है इन्ही की ये (भारत)। छूटे—खुले (भारत, वेल०)। सिर—मनु (वेल०)। लीन्हें—लीन्हो (भारत, वेल०)। ह्वै०—ह्वै हैं

प्रत्यक्ष-प्रमाण-समर्थन–(सवैया)

सोभा सुकेसी की केसनि मैं है तिलोतमा की तिल-बीच निसानी।
उर्वसी ही मैं बसी मुख की उनहारि सो इंदिरा मैं पहिचानी।
जानु कौं रंभा सुजान सु जानिहै दासजू बानी मैं बानी समानी।
एती छबीलिनि सौं छबि छीनिकै एक रची विधि राधिका रानी ॥३०॥

निरुक्ति-लक्षणं–(दोहा)

है निरुक्ति जहँ नाम की अर्थकल्पना आन।
दोषाकर ससि कौं कहैं, याहीं दोष सु जान ॥३१॥
बिरही नर-नारीन कौं, यह ऋतु चाइ चबाइ।
दास कहै याकौं सरद, याही अर्थ सुभाइ ॥३२॥

(सवैया)

त्यौं कुलकानिनि की परवीनता मीन की भाँति ठगी रहती है।
दासजू याहि तैं हंसहु के हिय मैं कछु संक पगी रहती है।
है रस मैं गुन औ' गुन मैं रस ह्यौं यह रीति जगी रहती है।
बासरहू निसि मानस मैं बनमाली की बंसी लगी रहती है ॥३३॥

लोकोक्ति, छेकोक्ति-लक्षणं–(दोहा)

सब्द जु कहिये लोकगति, सो लोकोक्ति प्रमान।
ताही छेकोक्त्यौ कहैं, होइ लिये उपखान ॥३४॥

लोकोक्ति, यथा

बीस बिसैं दस द्यौस मैं, आवहिंगे बलबीर।
नैन मूँदि नव दिन सहै, नागरि अब दुख-भीर ॥३५॥

(भारत, वेल०)। ह्यौं–है (भारत, वेंक०); ह्वै (वेल०)। है–ह्यौं (भारत, वेंक०, वेल०)। चपल–कमल (भारत, वेल०)। यह–चारु (भारत)।

[३०] है–दै (भारत)। उनहारि–अनुहारि (वेल०)।

[३१] की–को (वेल०)।

[३२] चाइ–जात (वेल०)।

[३३] मानस–मानस (सर०)।

[३४] ताही०–ताहि कहत छेकोक्ति सो (वेल०)।

छेकोक्ति, यथा–(सवैया)

मो मन बाल हिरानो हो ताको किते दिन तेँ मैं किती करी दौर है।
सो ठह्यौ तुअ ठोढ़ी की गाड़ मैं देहि अजौं तौ बड़ोई निहोर है।
दास प्रतच्छ भई पनहा अलकै तुअ तारनि दैकै अँकोर है।
होत दुराए कहा अब तौ लखि गो दिलचोर विलास न चोर है ॥३६॥

अथ प्रत्यनीकालंकार-लक्षणं–(दोहा)

सत्रु मित्र के पच्छ तेँ, किये वैर औ' हेत।
प्रत्यनीक भूषन कहैं, जे हैं सुमति सचेत ॥ ३७ ॥

शत्रु पच्छ तें वैर, यथा

मदन-गरब हरि हरि कियो, सखि परदेस पयान।
वही वैर-नाते अली, मदन हरत मो प्रान ॥ ३८ ॥

यथा–(कवित्त)

तेरे हाल वेसनि औ' सुंदरि सुकेसनि जू,
छीनि छबि लीन्ही दास चपला घननि की।
जानिकै कलापी की कुचाली तौ मिलापी मोहिँ,
लागै वैर लेन क्रोध मेटन मननि की।
कहिबी सँदेसो चंदवदनी सौं चद्रावलि,
अजहूँ मिलै तौ बात जानिये बननि की।
तो बिनु बिलोकि खीन बलहीन साजै सब,
बरषा समाजै ये इलाजै मो हननि की ॥३९॥

मित्रपच्छ तें हेतु, यथा–(सवैया)

प्रेम तिहारे तेँ प्रानप्रिया सब चेत की बात अचेत ह्वै मेटति।
पायो तिहारो लिख्यो कछु सो छिनहीँ छिन बाँचति खोलि लपेटति।

[३६] हो०–हुतो को (भारत); हुतो सो (वेल०)। भई–भए (वेल०)। है–तै (सर०)। निलाम–तलान (भारत)।
[३७] तेँ–सौं (सर०)।
[३८] हरि०–हरहरि (सर०, वेल०)। वही–वहै (वेल०)।
[३९] औ'–ज्यौं (वेल०)। जू–जी (भारत); लौं (वेल०)। तौ–तैं (भारत, वेल०)। मेटन–मेटत (भारत)। कहिबी–कहियो (वेल०)। मननि–मदन (सर०)। बिलोकि–बिलोकै (भारत, वेल०)।

छैलजू सैल तिहारी सुनैं तिहि गैल की धूरिनि नैन धुरेटति।
रावरे अंग को रंग बिचारि तमाल की डार भुजा भरि भेटति ॥४०॥

अथ परिसंख्यालंकार-लक्षणं–(दोहा)

जहाँ बोलि पुनि दीजिये, क्यों हूँ कहूँ लखाइ।
करि बिसेप बरजन करै, संग्रह दोष बराइ ॥४१॥
पूछयो अनपूछयो जहाँ, अर्थ समर्थत आनि।
परिसंख्या भूषन वही, यह तजि और न जानि ॥४२॥

प्रश्नपूर्वक, यथा

आजु कुटिलता कौन मैं ?, राजमनुष्यनि माहिं।
देखो बूझि बिचारिकै, ब्यालबंस मैं नाहिं ॥४३॥

बिना प्रश्न, यथा

मुक्ति बेनिही मैं बसै, अमृत बसै अधरानि।
सुख सुंदरि-संजोगहीं और ठौर जनि जानि ॥४४॥

यथा–(कवित्त)

भोर उठि न्हाइबे कौं न्हाती अँसुवानहीं सौं
ध्याइबे को ध्यावै तुम्हैं जाती बलिहारियै।
खाइबे कौं खाती चोट पंचबान-बाननि की,
पीइबे कौं लाज धोइ पीवत बिचारियै।
आँखि लगिबे कौं दास लागी वहै तुमहीं सौं
बोलिबे कौं बोलत बिहारियै बिहारियै।
सूझिबे कौं सूझत तिहारोई सुरूप वाहि,
बूझिबे कौं बूझै लाल चरचा तिहारियै ॥४५॥

---

[४०] पायो–चाँचो (वेंक०)। बाँचति० खोलति–बाँचि (वही)। सुनैं–सुने (भारत, वेंक०, वेल०)। धूरिनि–धूरि लै (वेल०)।
[४१] कहूँ–कहाँ (भारत, वेंक०, वेल०)। करि–कहि (भारत, वेल०)।
[४२] समर्थत–समर्थन (भारत, वेल०)।
[४४] बिना०–अप्रश्नपूर्वक (भारत, वेंक०); पुनः (वेल०)। अमृत–अमी (भारत, वेल०)।
[४५] पीइबे–पीवबे (सर०); पीयबे (वेंक०, वेल०)। वहै–रहै (भारत, वेल०)।

प्रश्नोत्तर-लक्षणं–(दोहा)

छोहि वा कह्यो वा कह्यो, प्रस्नोत्तर कहि जाइ।
प्रस्नोत्तर तासों कहैं, जे प्रवीन कबिराइ ॥४६॥

यथा–(सवैया)

कौन सिंगार है मोरपखा यह ? बाल छुटे कच कांति की जोटी।
गुंज के माल कहा ? यह तो अनुराग गरे पर्यो लै निज खोटी।
दास बड़ी बड़ी बातैं कहा करौ आपने अंग की देखौ करोटी ?
जानौ नहीं यह कंचन से तिय के तन के कसिबे की कसोटी ॥४७॥

(दोहा)

को इत आवत ? कान्ह हौं, काम कहा ? हित मानि।
किन बोल्यो ? तेरे दृगनि, साखी ? मृदु मुसुकानि ॥४८॥

यथा वा

उत्तर दीवे मैं जहाँ, प्रस्नौ परत लखाइ।
प्रस्नोत्तर ताहू कहैं, सकल सुकबि-समुदाइ ॥४९॥

उदाहरण

लाई फूली साँझ को रंग दृगनि मैं बाल।
लखि ज्यौं फूली दुपहरी नैन तिहारे लाल ॥५०॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये स्वभावोक्त्याद्यलंकारवर्णनं नाम सप्तदशमोल्लासः ॥ १७ ॥

---

[४६] प्रस्नोत्तर–कहि प्रस्न उतर कहि (भारत)। जे–जो (सर०, वेंक०)।
[४७] बाल–लाल (वेल०)। कौ–को (सर०, वेंक०)। के–को (सर०)। देखो–जानि (वेंक०)।
[४८] 'सर०' में नहीं है।

१८

अथ क्रम-दीपकालंकार-वर्णनं-(दोहा)

क्रम दीपक द्वै भाँति के, अलंकार मतिचारु।
अति सुभदायक वाक्य के, जदपि अर्थ सौं प्यारु ॥१॥
जथासंख्य एकावली, कारनमाला ठाय।
उतर-उतर रसनोपमा, रत्नावलि पर्जाय ॥२॥
ये सातौ क्रम-भेद हैं, दीपक एकौ पाँचु।
आदि आवृतो देहली, कारनमाला बाँचु ॥३॥

अथ यथासंख्यालंकार

पहिले कहे जु सब्दगन, पुनि क्रम तैं ता रीति।
कहिकै ओर निबाहिये, जथासंख्य करि प्रीति ॥४॥

यथा-(कवित्त)

दास मन मति सौं सरीर सौं सुरति सौं,
गिरा सौं गेहपति सौं न बाँधिबे की बारी जू।
मोहै मारि डारै साजि सुवस उजारै करै
थभित बनाइ ठाइ देतो बैर भारी जू।
मोहन मारन बसीकरन उचाटन के,
थंभन उदेखन के एई दिढ़कारी जू।
बाँसुरी बजैबो गैबो चलिबो चितैबो,
मुसुकैबो अठिलैबो रावरे को गिरिधारी जू ॥५॥

---

[१] भाँति-रीति (भारत, वेंक०, वेल०)। के-जे (वेंक०)। सुभ-छबि (वेंक०); सुख (बेल०)।

[२] उतर०-उत्तर उत्तर (सर०) ; उतरोतर (भारत); उत्तरोत्तर (वेंक०); उतरोत्तर (वेल०)।

[३] सातौ-सातै (सर०)। एकौ-एकै (भारत, वेल०)। आवृतो-अवृतौ (सर०); अवृत्यो (भारत, वेंक०)।

[४] गन-गनि (भारत, वेंक०)। ओर-और (भारत, वेंक०)।

[५] सरीर-सरीरी (भारत, वेंक०, वेल०)। गेहपति-गिरापति (सर०)। बाँधिबे-बाँचिबे (वेंक०)। की-को (सर०)। ठाइ-भाइ (बेल०)।

अथ एकावली-लक्षणं—(दोहा)

किये जँजीरा-जोर पद, एकावली प्रमान।
श्रुतिबस मति मतिबस भगति, भगतिबस्य भगवान ॥६॥

यथा—(कवित्त)

एरी तोहिं देखि मोहिं आवत अचंभा यही,
रंभा-जानु-हिगहीं गयद-गति केरे है।
गति है गयंद सिंह-कटि के समीप सिंह-
कटिहू सु रोमराजी-ब्यालिनि सभेरे है।
रोमराजी-ब्यालिनि सु संभु-कुच आगे दास,
संभु-कुचहू के भुज-मैनधुज नेरे है।
मैनहिं जगावतो सो आनन-द्विजेस अरु
आनन-द्विजेस राहु कच-कांति घेरे है ॥७॥

अथ कारणमाला-लक्षणं—(दोहा)

कारन तेँ कारन-जनम, कारनमाला चारु।
जोति आदि तेँ जोति तेँ बिधि बिधि तेँ संसारु ॥८॥

यथा—(सोरठा)

होत लोभ तेँ मोह, मोहहि तेँ उपजै गरब।
गरब बढ़ावै कोह कोह कलह कलहै बिथा ॥९॥

(दोहा)

बिद्या देती बिनय कौँ, बिनय पात्रता मित्त।
पात्रत्वै धन धन धरम, धरम देत सुख नित्त ॥१०॥

मारन-मरन (भारत, वेल०)। उद्वेखन-उदीपन (वही)। एई-एऊ (सर०)।

[६] जोर-जोरि (भारत)।

[७] देखे-देख (भारत); देखि (वेल०)। अचंभा-अचंभो (भारत, वेंक०, वेल०)। सु-सो (भारत, वेल०); स (वेंक०)। जगावतो-जगावति (भारत, वेल०)।

[९] कलहै-कलह (भारत, वेल०); कलहहि (वेंक०)।

अथ उत्तरोत्तर-लक्षणं-(दोहा)

एक एक तैं सरस लखि, अलंकार कहि सारु।
याही कौं उत्तरोत्तरो, कहैं जिन्हैं मति चारु॥११॥

यथा-(सवैया)

होत मृगादिक तैं बड़े बारन बारनवृंद पहारन हेरे।
सिंधु मैं केते पहार परे धरती मैं बिलोकिये सिंधु घनेरे।
लोकनि मैं धरतीयौ किती हरिओदरौ मैं बहु लोक बसेरे।
ते हरि दास बसे इनमैं सब चाहि- बड़े हग राधिका तेरे॥१२॥

ए करतार विनै सुनौ दास की लोकनि को अवतार करौ जनि।
लोकनि को अवतार करौ तौ मनुष्यनि हू को सँवार करौ जनि।
मानुपहू को सँवार करौ तौ तिन्हैं विच प्रेम-प्रकार करौ जनि।
प्रेम-प्रकार करौ तौ दयानिधि केहूँ वियोग-विचार करौ जनि॥१३॥

अथ रसनोपमा-लक्षणं-(दोहा)

उपमा अरु एकावली को संकर जहँ होइ।
ताही कौं रसनोपमा, कहैं सुमति सब कोइ॥१४॥

यथा-(सवैया)

न्यारो न होत वफारो ज्यौं धूम मैं धूम ज्यौं जात घने घन मैं हिलि।
दास उसास रलै जिमि पौन मैं पौन ज्यौं पैठत आँधिन मैं पिलि।
कौन जुदो करै लौन ज्यौं नीर मैं नीर ज्यौं छीर मैं जात खरो खिलि।
त्यौं मति मेरी मिली मन मेरे मैं मो मन गो मनमोहन सौं मिलि॥१५॥

(दोहा)

अति प्रसन्न है कमल सो, कमल मुकुर सो वाम।
मुकुर चद सो, चद है तो मुख सो अभिराम॥ १६॥

---

[११] सरस-सरल (भारत, वेल०)। उतरोतरो-उतरोतरै (वही)। जिन्हैं-जु हैं (वेंक०)।

[१२] धरतीयौ-धरती यौं (भारत, वेंक०, वेल०)। ओदरौ-वोदर (वही)। बसे-बसै (भारत, वेल०)।

[१३] सुनौ-सुनि (भारत, वेंक०, वेल०)। जनि-जिनि (भारत, वेंक०)। हू-ही (सर०)। हू-ही (भारत, वेल०)। प्रकार-प्रचार (वही)। केहूँ-क्योंहूँ (भारत, वेंक०, वेल०)।

[१६] है-दै (वेंक०)। सो-सुग्र (सर०)।

अथ रत्नावली-लक्षणं—(दोहा)

क्रमी वस्तु गनि विदित जो, रचि राख्यो करतार।
सो क्रम आने काव्य में, रत्नावली-प्रकार ॥ १७ ॥

यथा—(सोरठा)

स्याम प्रभा इक थाप, जुग उरजनि तिय के कियो।
चारु पंचसर छाप, सातकुंभ के कुंभ पर ॥ १८ ॥

यथा—(सवैया)

रवी सिर फूल मुखै ससितूल महीसुत बंदन-विंदु सु भाँति।
पना बुध केसरि-आड़ गुरौ नकमोतियै सुक्र करै दुखसौंति।
सनी है सिँगार विधुंतुद वार सजै झलकेतु सबै तनकाँति।
निहारिये लाल भरै सुखलाल बनी नव बाल नवग्रह-पाँति ॥ १९ ॥

अथ पर्यायालंकार-लक्षणं—(दोहा)

तजि तजि आस्रय करन तेँ, है पर्जाय-विलास।
घटती बढ़ती देखिकै, कहि संकोच विकास ॥ २० ॥

यथा (सवैया)

पायनि कौं तजि दास लगी तियनैन विलास करै चपलाई।
पीन नितंब उरोज भए हठिकै कहिँ जात भई तनुताई।
बोलनि बीच, बसी सिसुता-तन जोबन की गई फैलि दुहाई।
अंग बढ़ी सो बढ़ी अब तौ नवला छबि की बढ़ती पर आई ॥ २१ ॥

(दोहा)

रह्यो कुतूहल देखिबो, देखति मूरति मैन।
पलकनि को तगिबो गयो, लगी टकटकी नैन ॥ २२ ॥

[१७ गनि—गन (वेंक०) । आने—आनै (सर०) ।
[१८] इक—मिक (वेंक०) । कियो—कियौ (सर०) ।
[१९] नकमोतियै—नकमोतिनै (सर०) ; नकमोतिय (वेल०) ।
[२०] भरै—भरो (वेल०) । बाल—बाय (सर०) ।
[२१] बढ़ी—बढ़्यो (भारत, वेल०) । कौं—तौ (भारत, वेल०) ।

संकोच-पर्याय-वर्णन-(कवित्त)

रावरो पयान सुनि सूखि गई पहिले ही,
पुनि भई बिरह-बिथा तैं तन आधी सी।
दास के दयाल मास बीतिबे मैं छिन छिन,
छीन परिबे की रीति राबे अवराधी सी।
सॉसरी सी छरी सी ह्वै सर सी सरी सी भई,
सींक सी ह्वै लीक सी ह्वै बाँध सी ह्वै बाँधी सी।
बार सी मुरार-तार सी लौं सु तजी मैं अब
जीवत ही ह्वैहै वह प्रानायाम-साधी सी ॥ २३ ॥

अस्य तिलक

यामैं उपमा को संकर है। २३ अ ॥

यथा-(दोहा)

सब जग ही हेमंत है, सिसिर सु छाँहनि मीत।
रितु बसंत सब छोड़िकै, रही जलासय सीत ॥ २४ ॥

विकास-पर्याय

लाली हुती प्रियाधरहि, बढ़ी हिये लौं हाल।
अब सुवास तनु सुरँग करि, ल्याई तुम पै लाल ॥ २५ ॥
अँसुवनि तैं उहि नद कियो, नद तैं कियो समुद्र।
अब सिगरो जग जलमई, करन चहत है रुद्र ॥ २६ ॥

---

[२३] के-को (भारत, वेल०) ; की (वेंक०)। बाँध०-बाँधहू सी (भारत, वेल०) ; आधी ह्वैके (वेंक०)। तार०-तामरसी मु तजी मैं अब (सर०) ; तार सी लौं तजि आवति हौं (भारत, वेल०) ; सी लौं जीवन तजी मैं अजौं (वेंक०)।

[२४] ही-मैं (वेल०)। जलासय-जलाश्रय (सर०)।

[२५] ल्याई-आई (वेंक०)।

[२६] उहि-वहि (वेंक०, वेल०)। कियो-किये (भारत, वेंक०, वेल०)। कियो-किये (भारत, वेल०)।

यथा—(कवित्त)

हम तुम एक हुते तन मन, फेरि तुम्हैं
प्रीतम कहायो मोहिं प्यारी कहवाइ है।
सोऊ गयो पनि पतिनी को रह्यो नातो, पुनि
पापिनि हौं याही तुम्हैं उतर दिढ़ाइ है।
द्वै दिना लौं दास रही पतिया-सँदेस-आस,
हाइ हाइ ताहू हटे रह्यो ललचाइ है।
प्राननाथ कठिन पषानहू तें प्रान अबै,
कौन जानै कौन कौन दसा दरसाइहै ॥ २७ ॥

अथ दीपक-लच्छनं—(दोहा)

एक सब्द बहु में लगै, दीपक जानै सोइ।
उहै सब्द फिरि फिरि परै, आवृत्तिदीपक होइ ॥ २८ ॥
आनन आतप देखहूँ, चलै डग कहूँ पाइ।
कर सुमनंजुलि लेतहूँ, अरुन रंग ह्वै जाइ ॥ २९ ॥
रहै थकित अरु चकित ह्वै, समरसुदरी औनि।
तुअ चितौनि ठिकु ठौनि भ्रुव नौनि, निरखि मन रौनि ॥३०॥

शब्दावृत्ति-दीपक-वर्णनं—(दोहा)

रहै चकित ह्वै थकित ह्वै, सुंदरि रवि ह्वै औनि।
तुव चितौनि लखि ठौंनि लखि, भृकुटि नौनि लखि रौनि॥३१॥

यथा (सवैया)

वाही घरी तें न सान रहै न गुमान रहै न रहै सुघराई।
दास न लाज को साज रहै न रहै तनकौ घरकाज की धाई।

---

[२७] याही–ह्यौंई (वेंक०)। उतर०–उत डीठि ठाइ है (भारत); उनहीं दिढ़ाइहै (वेंक०); बातन ढिढ़ाइहै (वेल०)। द्वै–द्वू (सर०)। हटे–हटि (वेल०)।

[२९] 'भारत' में नहीं है। थक्ति–चक्ति (वेल०)। अरु–ह्वै (वही)। ठिकु०–लखि ठौनि लखि भृकुटि नौनि लखि (वही)।

[३०] देखहूँ–देखिहूँ (भारत वेंक०, वेल०)। डग०–डक कहुँ (वही)। कर०–सुनन अंजली लेत कर (वेल०)।

[३१] 'वेल० में नहीं है। सुंदरि०–नगरसुंदरी (भारत)।

ह्यॉ दिख-साध निवारे रहौ तब ही लौं भटू सब भॉंति भलाई।
देखत कान्है न चेत रहै री न चित्त रहै न रहै चतुराई॥ ३२॥

अर्थावृत्ति-दीपक-(दोहा)

रहै चकित ह्वै थकित ह्वै समरसुंदरी औनि।
तुअ चितौनि लखि ठौनि तकि निरखि रौनि भ्रुव नौनि॥३३॥

(सवैया)

छन होति हरीरी मही कौं लखै निरखै छन जो छनजोति छटा।
अवलोकति इंदुबधू की पत्यारी बिलोकति है खिन कारी घटा।
तकि द्वार कदंबनि की तरसै दरसै तउ नाचत मोर अटा।
अध ऊरध आवत जात भयो चित नागरि को नट कैसो बटा॥३४॥

उभयावृत्ति-दीपक-(दोहा)

पेच छुटे चंदन छुटे, छुटे पसीना गात।
छुटी लाज अब लाल किन, छुटे बंद उत जात॥३५॥
तोर्‌यो नृपगन कौ गरब, तोर्‌यो हर-कोदंड।
राम जानकी-जीय को, तोर्‌यो दुख्ख अखंड॥३६॥

देहली-दीपक-वर्णनं-(दोहा)

परै एक पद बीच मैं, दुहुँ दिसि लागै सोइ।
सो है दीपक देहली, जानत है सब कोइ॥३७॥

यथा-(सवैया)

ह्वै नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रहलाद को संकट भारी।
दास बिभीषनै लंक दियो जिन रंक सुदामा कौं संपति सारी।

---

[३२] तनकौ-तन को (भारत)। कौ०-को धाई (वही)। ह्यॉ०-हार्दिक साधन वारे रहे (वेल०)। री न-नहिं (भारत, वेंक०); थिर (वेल०)।

[३३] चकित-छकित (भारत, वेंक०, वेल०)। रौनि०-भृकुटि नौनि लखि रौनि (भारत); निरखि तनौनि भ्रु रौनि (वेल०)।

[३४] इदुबधू०-इंद्रबधून की पाँति (वेल०)। दरसै०-लखि दासजू (वेल०)। तउ-उत (भारत, वेंक०)।

[३५] उत-उर (भारत); कित (वेल०)।

द्रौपदी चीर बढ़ायो जहान मैं पांडव के जस की उजियारी।
गर्बिन को खनि गर्ब चहावत दीननि को दुख श्रीगिरधारी ॥३८॥

कारक-दीपक-वर्णनं—(दोहा)

एक भाँति के वचन को काज बहुत जहँ होइ।
कारकदीपक जानिये, कहैं सुमति सब कोइ ॥३९॥

यथा

ध्याइ तुम्हैं छबि सौं छकति, जकति तकति मुसुकाति।
भुज पसारि चौंकति चकति, पुलकि पसीजति जाति ॥४०॥

यथा—(सवैया)

उठि आपुहीं आसन दै रसख्याल सौं लाल सौं आँगी कढ़ावति है।
पुनि ऊँचे उरोजन दै उर-बीच भुजानि मढ़ै औ' मढ़ावति है।
रस-रंग मचाइ नचाइकै नैन अनंग-तरंग बढ़ावति है।
बिपरीति की रीति मैं प्रौढ़ तिया चित चौगुनो चोप चढ़ावति है ॥४१॥

अथ मालादीपक-वर्णनं—(दोहा)

दीपक एकावलि मिले, मालादीपक जानि।
सतसंगति संगति-सुमति, मति गति गति सुखदानि ॥४२॥

(सोरठा)

जग की रुचि बृजवास, बृज की रुचि बृजचंद हरि।
हरि-रुचि बंसी दास, बंसी-रुचि मन बाँधिबो ॥४३॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये दीपकालकारवर्णनं नाम
अष्टादशमोल्लासः ॥१८॥

---

[३९] सुमति—सुकवि (भारत, वेंक०)।
[४०] चकति—तकति (सर०)।
[४१] ख्याल—प्यार (भारत, वेंक०, वेल०)। मढ़ै०—कै मध्य (वेल०)।
नैन०—नैनन अग (भारत, वेंक०, वेल०)।

१६

अथ गुण-निर्णय-वर्णनं—(दोहा)

दस विधि गुन के कहत हैं, पहिले सुकवि सुजान।
पुनि तीनै गुन गहि रच्यो, सब तिनके दरम्यान ॥१॥
ज्यौं सतजन-हिय तें नहीं, सूरतादि गुन जाइ।
त्यौं विदग्ध-हिय में रहैं, दस गुन सहज सुभाइ ॥२॥
अच्छर गुन माधुर्य अरु ओज प्रसाद बिचारि।
समता कांति उदारता, दूषनहरन निहारि ॥३॥
अर्थव्यक्ति समाधि ये, अर्थहि करैं प्रकास।
वाक्यनि के गुन स्लेप अरु, पुनरुक्तप्रतिकास ॥४॥

माधुर्यगुण-लक्षणं—(दोहा)

अनुस्वारजुत वर्नजुत, सबै वर्ग अ-टवर्ग।
अच्छर जामैं मृदु परै, सो माधुर्ज निसर्ग ॥५॥

यथा

धरे चंद्रिका-पंख सिर, बंसी पकज-पानि।
नँदनंदन खेलत सखी, बृंदावन सुखदानि ॥६॥

ओज-गुण

उद्धत अच्छर जहँ परै, स क टवर्ग मिलि जाइ।
ताहि ओज गुन कहत हैं, जे प्रवीन कबिराइ ॥ ७ ॥

---

[१] तीनै—तीन्यौ (सर०); तीनौं (वेंक०)। गहि—गनि (सर०)। रच्यो—रचैं (भारत, वेंक०), रचौ (वेल०)।

[४] अर्थव्यक्ति—अरत्यव्यक्ति (सर०); अर्थाव्यक्ति (भारत, वेल०)। पुनरुक्त०—पुनरुक्त्यो प्रतिकास (भारत, वेंक०); पुनरुक्तीपरकास (वेल०)।

[७] 'वेंक०' में यह रूप है—

आवै उद्धत सब्द बहु बर्नसँजोगी जुक्त।
स क टवर्ग की अधिकई ह्वै ओज गुन उक्त ॥

यथा

पिक्खि ठट्ट गजघटनि को, जुत्थप उठे वरक्कि।
पट्टत महि घन कट्टि सिर. क्रुद्धित खग्ग सरक्कि ॥ ८ ॥

प्रसाद-गुण—(दोहा)

मनरोचक अच्छर परै, सोहै सिथिल सरीर।
गुन प्रसाद जलमुक्ति ज्यौं, प्रगटै अर्थ गँभीर ॥ ९ ॥

यथा

डीठि डुलै न कहूँ भई मोहित मोहन माहिं।
परम सुभगता निरखि सखि, धरम तजै को नाहिं ॥ १० ॥

समता-गुण-लक्षणं—(दोहा)

प्राचीननि की रीति सौं, भिन्न रीति ठहराइ।
समता गुन ताकौं कहै, पै दूषननि बराइ ॥ ११ ॥

यथा

मेरे दृग कुवलयनि कौं, देत निसा सानंद।
सदा रहै बृजदेस पर, उदित साँवरो चंद ॥ १२ ॥

यथा—(कवित्त)

उपमा छबीली की छवा लौं छूटे वारन कीं,
ढरकि कलिंद तें कलिंदी-धार ठहरैं।
लाल सेत गुन गुही बेनी बँधे बुधजन.
बरनत वाही कौं त्रिवेनी कैसी लहरैं।

---

[८] पिक्खि—पिठ्ठि (भारत) ; पिष्पि (वेंक०) ; प्रिष्टप (वेल०)। गज०—गज्जरन्नि (वेंक०) ; को—के (भारत, वेल०)। घन-घन (वेंक०)। खग्ग—खङ्ग (वेंक०)।

[९] जुक्ति—जुक्ति (सर०)।

[१०] डुलै—डोलै (सर०)।

[११] दूषननि०—दूषन निरवाइ (सर०)।

[१२] देत—होति (भारत, वेल०)।

कीन्हो काम अद्भुत मदन मरदाने यह,
क़हाँ तें कहाँ को ल्यायो कैसी:कैसी डहरैं।
वेई स्याम अलकैं छहरि रहीं दास मेरे
दिल की दिल्ली में ह्वै जहाँई तहाँ नहरैं॥ १३॥

कांति-गुण-वर्णनं-(दोहा)

रुचिर रुचिर बातैं परैं, अर्थन प्रगटन गूढ़।
ग्राम्यरहित सो कांति गुन, समुझै सुमति न मूढ॥ १४॥

यथा-(सवैया)

पग पानिन कंचन-चूरे जराउ-जरे मनि लालनि सोभ धरैं।
चिकुरारी मनोहर झीन झगा पहिरे मनि-आँगन मैं विहरैं।
यह मूरति ध्यानन आनन कौं सुर सिद्ध समूहनि साध मरैं।
बड़भागिनि गोपी मयंकमुखी अपनी अपनी दिसि अंक भरैं॥ १५॥

उदारता-गुण-वर्णनं-(दोहा)

जो अन्वयबल पठितबल, समुझि परै चतुरैन।
औरनि कौं लागै कठिन, गुन उदारता ऐन॥१६॥

यथा

कदन अनेकन विघन को, एकरदन गनराउ।
चंदनजुत बंदन करौं, पुष्कर पुष्करपाउ॥१७॥

अर्थव्यक्ति-गुण-वर्णनं-(दोहा)

जासु अर्थ अतिहीं प्रगट, नहिं समास अधिकाउ।
अर्थव्यक्ति गुन बात ज्यौं बोलै सहज सुभाउ॥१८॥

---

[१३] कैसी-की सी (भारत, वेल०)। कैसी०-कैसे कैमी (वेंक०)।
[१४] परैं-करैं (भारत, वेंक०, वेल०)। प्रगटन-प्रगटत (भारत)।
[१५] ध्यानन-ध्यान मैं (भारत, वेंक०, वेल०)। साध-साधि (वेल०)।
[१६] पठित०-पठित ह्वै (भारत, वेल०)।
[१७] को-के (भारत, वेल०)।
[१८] बोलै-बोलो (सर०)।

यथा

इकटक हरि राधे लखैं, राधे हरि की ओर।
दोऊ आनन इंदुवै, चारयौ नैन चकोर ॥१९॥

समाधि-गुण-लक्षणं-(दोहा)

जु है रोह अवरोह मति, रुचिर भाँति क्रम पाय।
तिहि समाधि गुन कहत हैं, ज्यौं भूषन पर्जाय ॥२०॥

यथा

वर तरुनी के बैन सुनि, चीनी चकित सुभाइ।
दुखी दाख मिसिरी मुरी, सुधा रही सकुचाइ ॥२१॥

अस्य तिलक

क्रम तेँ अधिक अधिक मीठो कह्यो यातेँ समाधि गुन है। २१ अ ॥

यथा-(सवैया)

भावतो आवत ही सुनिकै वढ़ि ऐसी गई तन-छामता जो गुनी।
कंचुकीहू मैं नहीँ मढ़ती वढ़ती कुच की अब तौ भई दोगुनी।
दास भई चिकुरारिन की चटकीलता चामर चारु तेँ चौगुनी।
नौगुनी नीरज तेँ मृदुता सुषमा मुख मैं ससि तेँ भई सौगुनी ॥२२॥

श्लेष-गुण-लक्षणं-(दोहा)

बहु सब्दनि को एक कै, कीजै जहाँ समास।
वा अधिकाई स्लेष गुन, गुरु मध्यम लघु दास ॥२३॥

दीर्घ समास, यथा

रघुकुलसरसीरुहविपुलसुखद भानुपद चारु।
हरै आनि हनि काममदकोहमोहपरिवारु ॥२४॥

मध्य समास, यथा-(दोहा)

जदुकुलरंजन दीनदुखभंजन जनसुखदानि।
कृपावारिधर प्रभु करौ कृपा आपनो जानि ॥२५॥

---

[१९] इंदुवै-इंदुऔ (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२०] मति-गति (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२१] दुखी-दुखित (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२२] तन-इद (वेंक०)।

लघु समास, यथा

लखि लखि सखि सारसनयन इंदुवदन घनस्याम।
बीजुहास दाखौदसन, बिंबाधर अभिराम ॥२६॥

पुनरुक्तिप्रतीकाश गुण—(दोहा)

एक सब्द बहु बार जहँ, परै रुचिरता-अर्थ।
पुनरुक्तिप्रतिकास गुन, बरनैं बुद्धिसमर्थ ॥२७॥

यथा

बनि बनि बनि बनिता चली, गनि गनि गनि डग देत।
धनि धनि धनि अँखिया जु छबि, सनि सनि सनि सुख लेत ॥२८॥

(सवैया)

मधुमास मैं दासजू बीस बिसे मनमोहन आइहैं आइहैं आइहैं।
उजरे इन भौननि कौं सजनी सुखपुंजनि छाइहैं छाइहैं छाइहैं।
अब तेरी सौं एरी न संक ऐकक बिथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं।
घनस्यामप्रभा लखिकै सजनी अँखियाँ सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं ॥२९॥

(दोहा)

माधुर्जोज प्रसाद के, सब गुन हैं आधीन।
तातैं इनहीं कौं गन्यो, मंमट सुकवि प्रवीन ॥३०॥

माधुर्य-गुण-लक्षणं

स्लेषौ मध्य समास को, समता कांति बिचार।
लीन्हे गुन माधुर्ज जुत करुना हास सिंगार ॥३१॥

ओज-गुण-लक्षणं

स्लेप समाधि उदारता, सिथिल ओज-गुन-रीति।
रुद्र भयानक वीर अरु रस बिभत्स सौं प्रीति ॥३२॥

---

[२६] बीजु-बिज्जु (भारत, बेल०)।
[२७] पुनरुक्ति०-पुनरुक्ता प्रतिकास सो (सर०); पुनरुक्त्य० (भारत); पुनरुक्ती परकास (बेल०)।
[३१] जुत-रस (सर०)।

प्रसाद-गुण-लक्षणं

अल्प समास समास बिन, अर्थव्यक्ति गुन मूल।
सो प्रसाद गुन बर्न सब, सब गुन सब रस तूल ॥३३॥
रस के भूषित करन तेँ, गुन बरने सुखदानि।
गुन-भूषन अनुमानिकै, अनुप्रास उर आनि ॥३४॥

अथ अनुप्रास-लक्षणं

वचन आदि कै अंत जहँ अक्षर की आवृत्ति।
अनुप्रास सो जानि द्वै भेद छेक औ' वृत्ति ॥३५॥

छेकानुप्रास-लक्षणं

वर्न अनेक कि एक की, आवृत्ति एकहि बार।
सो छेकानुप्रास है आदि अंत इक ढार ॥३६॥

आदि वर्ण की आवृत्ति, छेकानुप्रास

बर तरुनी के बैन सुनि, चीनी चकित सुभाइ।
दाख दुखी मिसिरी मुरी, सुधा रही सकुचाइ ॥३७॥

अंत वर्ण की आवृत्ति, छेकानुप्रास

जनरंजन भंजनदनुज, मनुजरूप सुरभूप।
बिस्व बदर इव धृत उदर, जोवत सोवत सूप ॥३८॥

वृत्त्यनुप्रास-लक्षणं

कहुँ सरि वर्न अनेक की, परै अनेकनि बार।
एकहि की आवृत्ति कहुँ, वृत्त्यौ दोइ प्रकार ॥३९॥

आदि वर्ण की अनेक बार आवृत्ति

पैँड पैँड पर चकित चख, चितवत मो-चित-हारि।
गई गागरी गोह लै, नई नागरी नारि ॥४०॥

---

[३३] वर्न०—बर्नि पुनि (सर०); बर्नि सब (वेंक०)।
[३४] बरने—बरनै (सर०)।
[३६] अनेक—बहुत (भारत, वेल०)।
[३७] बर०—तरुनी के बर (वेल०)। दाख०—दुखी दाख (भारत, वेल०); दुखी दाख (वेंक०)।
[३८] जोवत०—जोअत सोअत रूप (भारत, वेल०)।
[४०] चितवत—चितवनि (सर०)।

आदि वर्ण एक की अनेक बार आवृत्ति—(कवित्त)

वलि वलि गई वारिजात से बदन पर,
वंसी-तान बँधि गई बिँधि गई बानी मैँ।
बड़रे बिलोचन बिसारे के बिलोकत,
बिसारि सुधि बुधि बावरी लौँ बिललानी मैँ।
बरुनी-बिभा की बारुनी मैँ ह्वै बिमोहित,
बिसेष बिंबाधर मैँ बिगोई बुद्धि रानी मैँ।
बरजि बरजि बिलखानी बृंद-आली,
बनमाली की बिकास-बिहसनि मैँ बिकानी मैँ ॥४१॥

अंत वर्ण अनेक की अनेक बार आवृत्ति—(दोहा)

कहै कस न गरमी-बस न, काहू बसन सुहात।
सीत-सताए रीति अति, कत कंपित तुअ गात ॥४२॥

अंत वर्ण एक की अनेक बार आवृत्ति, यथा—(सवैया)

बैठी मलीन अली-अवली किधौँ कंज-कलीन सौँ ह्वै बिफली है।
संभुगली बिछुरी ही चली किधौँ नागलली अनुराग रली है।
तेरी अली यह रोमावली कि सिँगारलता फल-बेल फली है।
नाभिथली तैँ जुरे फल लैँ कि भली रसराज-नली उछली है ॥४३॥

वृत्ति-भेद—(दोहा)

मिलै बरन माधुर्ज के, उपनागरिका वित्ति।
परुषा ओज प्रसाद के, मिलै कोमला वृत्ति ॥४४॥

उपनागरिका वृत्ति, यथा—(सवैया)

मंजुल वंजुल-कुंजनि गुंजत कुंजत भृंग विहंग अयानी।
चंदन चंपक बृंदन संग सुरंग लवंगलता अरुझानी।
कंस-बिधंसन कै नँदनंद सुछंद तहीँ करिहैँ रजधानी।
भाखति क्यौँ मथुरा ससुरारि सुनै न गुनै मुद मंगल बानी ॥४५॥

---

[४१] बडरे०—बड्डे० (सर०); बड़े बड़े लोचन (वेल०)। बिसारे०—बिसारिकै (भारत); बिसार के (बेल०)।
[४३] ह्वै—है (भारत, बेल०)। तैँ—सौँ (भारत, वेंक०); पै (बेल०)।
[४४] वित्ति—वित्त (भारत); वृत्ति (वेंक०)।
[४५] अरुझानी—लपटानी (वेल०)।

परुषा वृत्ति–(छप्पय)

मर्कट जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध अरि-ठट्ट दपट्टहिँ।
अद्द सद्द करि गर्जि तर्जि झुकि झर्पि झपट्टहिँ।
लक्ख लक्ख रक्खस विपक्ख धरि धरनि पटक्कहिँ।
तिक्ख सब्ब वत्रादि अत्र एक्कहु न अटक्कहिँ।
कृत व्यक्त रक्त-स्रोतस्विनी जत्र तत्र अनहद्द सुभ्र।
तसु विक्रम कथ्थ अकथ्थ जस मथ्थ समथ दसरथ्थ-सुभ्र ॥४६॥

कोमला वृत्ति, यथा–(सवैया)

प्यो विरमे वरसै करि बुंदन बृंदनि कों विधि वेधै वधै री।
दास घनी गरजैं गुरजैं सी लगैं, झर मोर हियो झरसै री।
बीस बिसे विष झिल्ली झलैं तड़ितौ तनु ताड़ित कै तरपै री।
मारे तऊ सुर के सर सों विरही कों वसै वरही वड़ो वैरी ॥४७॥

लाटानुप्रास-लच्छणं–(दोहा)

एक सब्द बहु बारगी, सो लाटानुप्रास।
तातपर्ज तें होतु है, औरै अर्थ प्रकास ॥४८॥

यथा

मन मृगया कर मृगदृगी, मृगमद-बँदी भाल।
मृगपति-लंक मृगांकमुखि, अंक लिये मृगबाल ॥४९॥

---

[४६] गर्जि–मर्जि (सर०)। झर्पि–झपि (वेल०)। धरि–धर (सर०)। तिक्ख–देखि (वेंक०)। स्रोत०–स्रोनितस्त्रवनी (सर०); स्रोनित सने (वेल०)। जत्र०–जत्थ तत्थ (भारत, वेंक०)। मथ्थ–रसा (भारत, वेल०)।

[४७] प्यो–क्यों (वेंक०)। बरसै–विरि मैं (वेल०)। बुंदनि०–बुंदनि वटनि (भारत); बुंदनि बुंदनि (वेंक०); बंदन बुंदनि (वेल०)। गरजैं०-गुरजैं गरजैं (वेक०)। मोर०–झर सो हियरो झुरसै (भारत, वेल०); झर सोर हियो झुरसै (वेंक०)। तड़ितौ–तड़िता (भारत, वेंक०, वेल०)। ताड़ित–तापित (वेंक०)। वड़ो–बड़ (भारत, वेंक०)।

[४८] बारगी–बार जो (भारत); बारगो (वेंक०); बार जहँ (वेल०)।

[४९] अंक–अंग (सर०)। बाल–चाल (वही)।

यथा—(दीपक)

श्रीमनमोहन प्रान हैं मेरे। श्रीमनमोहन मान हैं मेरे।
श्रीमनमोहन ज्ञान हैं मेरे। श्रीमनमोहन ध्यान हैं मेरे ॥५०॥
श्रीमनमोहन सौं रति मेरी। श्रीमनमोहन सौं नति मेरी।
श्रीमनमोहन सौं मति मेरी। श्रीमनमोहन सौं गति मेरी ॥५१॥

वीप्सालंकार-वर्णनं—(दोहा)

एक सब्द बहु बार जहँ, अति आदर सौं होइ।
ताहि बीपसा कहत हैं, कवि कोबिद सब कोइ ॥५२॥

यथा—(कवित्त)

जानि जानि आयो प्यारो प्रीतम बिहारभूमि,
छानि छानि फूले फूल सेजहि सँवारती।
दास दृगकंजनि बँदनवार ठानि ठानि,
मानि मानि मंगल सिँगारनि सिँगारती।
ध्यान ही मैं आनि आनि पी कौं गहि पानि पानि,
लेटि पट तानि तानि मैन मद गारती।
प्रेम-गुन गानि गानि पीऊपनि सानि सानि,
बानि बानि खानि खानि बैनन बिचारती ॥५३॥

अथ यमकालंकार-लच्छनं—(दोहा)

वहै सब्द फिरि फिरि परै, अर्थ औरई और।
सो जमकानुप्रास है, भेद अनेकनि ढौर ॥५४॥

---

[५२] अति०—इत्पादिक तैं (वेल०)। ताहि०—ताकहँ बिप्सा (वही)।

[५३] छानि...सँवारती-मानि...सिँगारती (भारत, वेल०)। सेजहि—सेजन (वेंक०); फूलन (भारत)। ठानि०—तानि तानि (वही)। मानि... सिँगारती-छानि...सँवारती (वही)। लेटि—एँचि (वही)। पीऊ-पनि-अमृतनि (वेल०)।

[५४] ढौर—ठौर (सर्वत्र)।

यथा—(कवित्त)

लीन्हो सुख मानि सुषमा निरखि लोचननि,
नील जलजात नयो जा तन यो हारि गो।
वाही जी लगाइ करि लीन्हो जी लगाइ करि,
मति सौ हनी सी मोहनी सी उर डारि गो।
लागै पलकौ न पल कौ न विसरै री,
बिसवासी वा सुमै तैं वास मैं विष वगारि गो।
मानि आनि मेरी आनि मेरी ढिग वाको तूँ न,
काहू बरजो री वरजोरी मोहि मारि गो ॥५५॥

चलन कहूँ मैं लाल रावरे चलन की,
चलन आँच वाके आँचलन सौं सुधारैगी।
वारि जात नैन-वारि जा तन सहैगी, निज
वारिजात-नैननि सौं केहूँ न निवारैगी।
दासजू बसत-सुधि अंगना सँभारैगी तौ,
अंग ना सँभारैगी ह्वै अंगनास भारैगी।
करहवि डारै सुधि देखि देखि किंसुक की
करहवि डारै हियो कर हँति डारैगी ॥५६॥

छपती छपाइ री छपाइ-गन सोरतु
छपाइ कै अकेली ह्यो छपाइ क्यौं दगति है।
सुखद निकेत की या केतकी लखे तैं पीर,
केतकी हिये मैं मीनकेत की जगति है।
लखिकै ससंक होति निपटै ससंक दास
संकर मैं सावकास संकर-भगति है।
सरसी सुमन-सेज सरसी सुहाई
सरसीरुह-बयारि सीरी सर सी लगति है ॥५७॥

---

[५५] निरखि-निलखि (वेंक०)। नील०—नीरज सजात जलजातन बिहारि गो (भारत वेल०); नील जलजात जलजातन विहारिगो (वेंक०)। लागै—लावै (सर०)। बास मैं—बास मै तैं बिष गारिगो (भारत, वेल०)। मेरी ढिग—मेर ढिग (सर०)।

[५६] केहूँ—क्यौंहू (सर०)। निवारैगी—निहारैगी (भारत)। सुधि अंगना—सुधि अंगन (वेंक०)। अंगनास—अंगनसँ (वही)।

[५७] छपाइ—छपाई (भारत, वेंक०, वेल०)। छपाइ—छपाई (भारत,

(दोहा)

अरी सीअरी होन को ठरी कोठरी नाहिँ।
जरी गूजरी जाति है, घरी दूबरी माहिँ ॥ ५८ ॥
चैत-सरबरी मैं चलो, न कै सरबरी स्याम।
सरब रीति ह्वै सरब री, लखि परिहै परिनाम ॥ ५९ ॥
मुकुत बिराजत नाक मैं, मिलि बेसरि-सुखमाहिँ।
मुकुत बिराजत नाक मैं, मिलिबे सरि सुख माहिँ ॥ ६० ॥

मुक्तपदग्रास-यमकालंकार-लक्षणं

चरन अंत अरु आदि के जमक कुंडलित होइ।
सिंह-बिलोकन है उहै, मुक्तक-पद-ग्रस सोइ ॥ ६१ ॥

यथा—(सवैया)

सर सो बरसो करै नीर अली जनु लीन्हे अनंग पुरंदर सो।
दरसो चहुँओरन तैँ चपला करि जाति कृपानि को ओझर सो।
झर सोर सुनाइ हनै हियरा जु किये घन अंबर-डंबर सो।
बरसो तैँ बड़ी निसि बैरिनि बीत तौ बासर भो बिधि-बासर सो ॥६२॥

(दोहा)

ज्यौँ जीवात्मा मैं रहै, धर्म सूरता आदि।
त्यौँ रस ही मैं होत गुन, बर्नहिँ गनै सु बादि ॥ ६३ ॥
रस ही के उतकर्ष कौं, अचलस्थिति गुन होइ।
अंगी-धर्म सु सूरता, अंग-धर्म नहिँ कोइ ॥ ६४ ॥

बेल०) । सोरहु–सोर तू (वही) । छपाइ–छपाई (वही) । कै०–क्यौं सहेली (वही) । ह्यो–ह्यौं (भारत, वेंक०, बेल०) । ज्यो–ज्यौं (वही) । पीर–परि (सर०) । होति–होती (भारत, वेंक०, वेल०) ।

[५८] सीअरी–सीयरी (सर०) । को–की (वही) । ठरी–दरी (सर०, वेंक०) ।

[५९] न कै–सरब (भारत, बेल०) । 'वेंक०' मैं दूसरा दल यौं है—कंठ सु-मुक्ता माल है, दीपति दीति सदाहि ।

[६२] बरसो–बरसा (सर०) । को–के (भारत, वेल०) । हनै–हरै (वही) बीती०–बीतति (वेल०) ।

[६३] सु बादि–सवादि (भारत, वेल०) ।

[६४] सु०–सुरूपता (भारत, वेंक०, वेल०) । कोइ–होइ (वेंक०) ।

ज्यों लहु लखि कादर कहै, सूर बड़ो लखि अंग।
रसहि लाज त्यों गुन बिना अरसौ सुभगुन संग ॥ ६५ ॥
अनुप्रास उपमादि ले, सब्दार्थालंकार।
उपर तें भूषित करैं, जैसे तन कों हार ॥ ६६ ॥
अलंकार बिनु रसहु है, रसौ अलंकृत छंडि।
सुकवि वचन-रचनानि सौं, देत दुहुँन कौं मंडि ॥ ६७ ॥

रस बिना अलंकार, यथा

चित्त चिहुँट्टत देखिकै, जुट्टत दारहि द्वार।
छन छन छुट्टत पट रुचिर, टुट्टत मोतिहार ॥ ६८ ॥

अस्य तिलक

इहाँ पदावृत्ति अनुप्रास है, रस नहीं। ६८ अ ॥

(दोहा)

चोंच रही गहि सारसी, सारस-हीन मृनाल।
प्रान जात जनु द्वार में दियो अरगला हाल ॥ ६९ ॥

अस्य तिलक

इहाँ उत्प्रेक्षालंकार है, रस नहीं। ६९ अ ॥

(दोहा)

नारि हारु घनसार इत, कहा कमल को कान।
अरी दूरि करि हारु यों बकति रहति नित बाम ॥ ७० ॥

अस्य तिलक

इहाँ रस है, अलंकार नहीं। ७० अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये गुणनिर्णयादि-
अलंकारवर्णनं नाम एकोनविंशतितमो-
ल्लासः ॥ १९॥

---

[६५] लहु लखि–ऊलि लहु (भारत, वेंक०, वेल०) । अरसौ०–अरि सो सुभग न (भारत, वेल०); अरसौ सुभग न संग (वेंक०) ।
[६८अ] नहीं–नहीं है (भारत, वेंक०) ।
[६९अ] नहीं–नहीं है (वेल०) ।
[७०] हारु–भूरि (सर०) ।

२०

अथ श्लेषादि-अलंकार-लक्षणं–(दोहा)

स्लेष बिरुध्धाभास है, सब्दअलंकृत दास।
मुद्रा अरु बक्रोक्ति पुनि, पुनरुक्तवदाभास ॥१॥
इन पाँचहु कौं अर्थ को भूषन कहै न कोइ।
जदपि अर्थ-भूषन सकल, सब्दसक्ति मैं होइ ॥२॥

श्लेषालंकार

सब्द उभयहूँ सक्ति तैं, स्लेषालकृत मानि।
अनेकार्थवल इक दुतिय, तात्पर्जबल जानि ॥३॥
दोइ तीनि कै भाँति बहु, जहाँ प्रकासत अर्थ।
सो स्लेषालंकार है, बरनत बुद्धिसमर्थ ॥४॥

द्वि अर्थ-श्लेष-वर्णनं–(कवित्त)

राजराज राजै बरबाहन की छबि छाजै,
समरथ बसै सहसनि मनमानी है।
आयसु को जोहै आगे लीन्हे गुरुजन गन,
बस मैं करति जो सुदेस रजधानी है।
महा महाजन धनु लै लै मिलैं स्रम बिनु,
पदुमन लेखे दास बास यौं बसानी है।
दरपन देखे सुबरन रूप भरी बार-
बनिता बखानी है कि सेना सुलतानी है ॥५॥

---

[१] बिरुध्धाभास–बिरोधाभास (भारत, बेल०)। है–है (वेंक०)। सब्द०–सब्दालंकृत (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२] को–सौं (भारत, वेंक०, बेल०)। मैं–मय (वेंक)।
[४] प्रकासत–प्रकासित (भारत, वेल०)।
[५] बाहन–बाहिनी (भारत)। समरथ०– सरय सुबस (वेल०)। महा-जन–महा (सर०)। बास–त्रास बास (वही)। पदुमन–पदुमिन (वेल०)। बार–बारि (सर०)। सेना–सैना (वही); सैन (भारत, वेल०)।

त्रि अर्थ-वर्णनं

पानिप के आगर सराहैं सब नागर,
कहत दास कोस तें लख्यो प्रकासमान मैं।
रज के सँजोग तें अमल होत जब तब,
हरि हितकारी बास जाहिर जहान मैं।
श्री को धाम सहजै करत मनकामं, थकै
बरनत बानी जा दलन के विधान मैं।
एतो गुन देख्यो राम साहिब सुजान मैं कि
बारिज बिहान मैं कि कीमति कृपान मैं ॥६॥

चतुरर्थ-वर्णनं

छाया सौं रलित परभृत घोस दरसन,
बालरूप दुति सु परब-गन चंदु है।
जिन को उदित छनदान मैं बिलोकियत,
हरि महातम देत आनँदनिकंदु है।
भव आभरन अरजुन सौं मिलाप कर,
जानौ कुवलय को हरन दुखदंदु है।
एवो गुनवारो दास रवि है कि चंदु है कि
देवी को मृगेंदु है कि जसुमति-नंदु है ॥७॥

(दोहा)

संदेहालंकार इत, भूलि न आनौ चित्त।
कह्यौ स्लेष दिढ़ करन कौं, नहिं समता-थल मित्त ॥८॥

अथ विरुद्धाभास-वर्णनं

परैं विरुद्धी सब्दगन, अर्थ सकल अविरुद्ध।
कहैं विरुद्धाभास तिहि, दास जिन्हैं मति सुद्ध ॥९॥

---

[६] हरि-हर (भा०)। कीमति-कीरति (वेल०)।
[७] आनँद०-आनँद को कंद (वेल०)। जिन-दिन (भारत, वेल०)। देत-दूर (भा०)। मृगेंदु-मृगेंद्र (वेल०)।
[९] विरुद्धी-विरुद्धा (भा०); विरोधी (वेल०)। विरुद्धाभास-विरोधाभास (वेल०)।

यथा—(कवित्त)

लेखी मैं अलेखी मैं नहीं है छवि ऐसी औ'
असमसरी समसरी दीबे कौं परै लियै।
खरी निखरी है अंग बनक कनकहूँ तैं,
दास मृदु हास बीच मेलियै चमेलियै।
कीजै न बिचारु चारु अरस मैं रस ऐसो,
बेगि चलौ संग मैं न हेलियै सहेलियै।
जग के भरन अभरन आपु रूप,
अनुरूप गनि तुम्हैं आई केलियै अकेलियै ॥१०॥

अथ मुद्रालंकार-वर्णनं—(दोहा)

औरौ अर्थ कवित्त को, सब्दौछल ब्यौहारु।
झलकै नाम कि नामगन, औरस मुद्रा चारु ॥११॥

यथा—(कवित्त)

जबहीं ते दास मेरी नजरि परी है वह,
तबहीं ते देखिबे की भूख सरसति है।
होन लाग्यो बाहिर कलेस को कलाप उर,
अंतर की ताप छिन छिनहीं नसति है।
चलदल-पान से उदर पर राजी रोम-
राजी की बनक मेरे मन मैं बसति है।
रसराज-स्याही सौं लिखी है नीकी भाँति काहू,
मानो जंत्रपाँति घन-अच्छरी लसति है ॥१२॥

---

[१०] लेखी—लखी (सर०)। असमसरी—समसरि (वही); प्रसमसरी (वेंक०)। समसरी—समसदि (सर०)। दीबे०—देबे को न फैलिये (वेंक०)। अरस०—रस मैं अरस (भारत, बेल०)। बेगि—बेगे (सर०)।

[११] औरौ—औरै (सर०)। औरस०—मुद्रा कहत सु चारु (बेल०)।

[१२] सरसति—सरसाति (सर०): सरसत (बेल०)। से—सी (भारत, बेल०)। नसति—नसाति (सर०); नसत (बेल०)। बसति, लसति—बसत, लसत (वही)।

अस्य तिलक

घनाक्षरी छंद को नाम है। १२ अ॥

नामगण, यथा–(कवित्त)

दास अब को कहै बनक लोन नैनन की,
सारस ममोला विन अंजन हराए री।
इनको तौ हाँसो वाके अंग मैं अगिनि बासो,
लीलहीं जु सारो सुख-सिंधु बिसराए री।
परे वे अचेत हरे वै सकल चिरु चेत,
अलक-भुजंगी-डसे लोटन-लोटाए री।
भारथ अकर करतूतिन निहारि लही,
यातैं घनस्याम लाल तो ते बाज आए री॥१३॥

वक्रोक्ति-लक्षण–(दोहा)

द्वयर्थ काकु तैं अर्थ को, फेरि लगावै तर्क।
वक्रउक्ति तासौं कहैं, जे बुधि-अंबुज-अर्क॥१४॥

यथा–(कवित्त)

आजु तौ तरुनि कोपजुत अवलोकियत,
रितु रीति ह्वैहै दास किसलै निदान जू।
सुमन नहीं तो यह ह्वैहै देखे घनस्याम,
कैसी कही बात मंद सीतल सुजान जू।
सौहैं करी नैन हमैं आन नहीं आवै करि,
आनन की बूझि आन बीर ही की आन जू।
क्यौं है दलगीर रहि गए कहूँ पीरे पीरे,
एते मान मान यह जानै बागवान जू॥१५॥

[१२अ] 'भारत, वेंक०' मैं नहीं है।

[१३] ममोला–खंजन (भारत, वेंक०)। हाँसो–हास (वेल०)। बासो–बास (वहीं)। सुख–सुधा (सर०), सुक (भारत)। हरे–हरै (भारत); रहैं (वेंक०); हरैं (वेल०)। सकल०–चित चेत सकल (भारत, वेल०)। भारथ–भारत (भारत, वेंक०, वेल०)। लही–लई (भारत, वेल०)। यातैं–चने (सर०)।

[१४] बुधि–बुध (वेल०)।

[१५] रितु०–री तो० (सर०), होय ह्वै के (वेंक०)। देखे–देखो (भारत,

कैसो कहो कान्ह सो तो हौं ही खरो एक अब,
सहस मैं जैसे एक राधा रस भीजिये।
गहिये न कर होत लाखन को ज्यान लाल,
चाहिये तौ आपनो पदुम हमैं दीजिये।
नील के बसन क्यौं बिगारत हौ वेही काज,
बिगरैं तौ हम पै बदल संख लीजिये।
देखती करोरि वारी संगिनी हमारी है,
अरब्बीवारे हम संग संका कत कीजिये ॥१६॥

काकुवक्रोक्ति-वर्णनं–(सवैया)

लाल ये लोचन काहे, प्रिया हैं दियो ह्वैहै मोहन रंग मजीठी।
मोतैं बठी है जु वैठे अरीनि की सीठी क्यौं बोलौ मिलाइ ल्यौ मीठी।
चूक कहौ किमि चूकत सो जिन्हैं लागी रहै उपदेस-बसीठी।
झूठी सबै तुम साँचे लला यह झूठी विहारहू पाग की चीठी ॥ १७ ॥

अथ पुनरुक्तवदाभास-वर्णनं–(दोहा)

कहत लगै पुनरुक्त सो, पै पुनरुक्त न होइ।
पुनरुक्तवदाभास तिहि, कहैं सकल कबि-लोइ ॥ १८ ॥

वेल०)। करौ–करै (सर०)। आवै०–करि आवै (वही)। आनन०–आन तौ बूझो (भारत, वेल० ; आन की बुझिय (वेंक०)। बीर०–बिरही (भारत, वेल०)। पीरे०–पीर ए री (वेल०) एते–एतो (भारत, वेल०)।

[१६] कहो–कहै (वेंक०) कान्ह–कान (सर०)। ज्यान–जान (भारत, वेल०)। चाहिये–चाहि ये (वेंक०)। आपनो०–अपनो० (सर०); आपनो पदुम उमैं (भारत), आपनोई पद मोहि (वेल०)। वेही–वही (भारत, वेल०); यौं ही (वेंक०)। अरब्बी–अरबी (भारत); अरबी (वेल०)। कत–कंत (भारत, वेंक०)।

[१७] दियो–दिये (भारत, वेल०)। मोतैं–मोतो (सर०, वेंक०)। बोलौ–बोलै (भारत, वेंक०, वेल०)। ल्यौ–यौं (वेंक०)। चूकत–चूकति (भारत, वेंक०, वेल०)। तुम–जग (वेंक०)। तिहारहू–तिहारे सु (भारत); तिहारिहू (वेंक०); तिहारेउ (वेल०)। पाग–पाप (वेंक०)।

अली भँवर गुंजन लगे, होन लग्यो दल पात।
जहँ तहँ फूले वृक्ष तरु, प्रिय प्रीतम कित जात ॥ १६ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये श्लेषालंकारादि-
वर्णनं नाम विंशतितमोल्लासः ॥ २० ॥

२१

अथ चित्रालंकार-वर्णनं-(दोहा)

दास सुकवि-बानी थकै, चित्र-कवित्तनि माहिँ।
चमत्कारहीनार्थ को, इहाँ दोष कछु नाहिँ ॥ १ ॥
व ब ज य बर्नन जानिये, चित्रकाव्य में एक।
अर्धचंद्र को जनि करौ, छूटे लगे बिबेक ॥ २ ॥
प्रश्नोत्तर पाठांतरो, पुनि बानी को चित्र।
चारि लेखिनी-चित्र को चित्रकाव्य है मित्र ॥ ३ ॥

अथ प्रश्नोत्तर-चित्र-लक्षणं-(दोहा)

प्रश्नोत्तर चित्रित करै, सज्जन सुमति उमंग।
द्वै बिधि अंतरलापिका, बहिरलापिका संग ॥ ४ ॥
गुप्तोत्तर उर आनिकै, व्यस्त समस्तहि जानि।
एकानेकोत्तर बहुरि, नागपास पहिचानि ॥ ५ ॥
है क्रमव्यस्त समस्त पुनि, कमलबंधवत मित्र।
सुद्ध गतागत सृंखला, नवम जानिये चित्र ॥ ६ ॥
अगनित अंतरलापिका, यौँ बरनत कबिराइ।
बहिरलापि जानो उतर, छंद बाहिरे पाइ ॥ ७ ॥

[१६] लग्यो–लगे (सर०)।
[३] को–लै (सर०) है–मै (वही)।
[७] जानो–कानो (सर०)।

गुप्तोत्तर-लक्षणं–(दोहा)

वाच्यांतर सब्दच्छलन, उत्तर देइ दुराइ ।
गुप्तोत्तर तासौं कहैं, सकल सुमति-समुदाइ ॥८॥

यथा

सब तनु पिय बरन्यो अमित, कहि कहि उपमा-बैन ।
सुदरि भई सरोप क्यौं, कहत कमल-से नैन ॥९॥

अस्य तिलक

कमल से कहे कम सोभित भए । ९ अ ॥

सुत सपूत संपति भरी, अंग अरोग सुढार ।
रहै दुखित क्यौं कामिनी, पीउ करै बहु प्यार ॥१०॥

अस्य तिलक

बहु प्यार कहे बहुतन्ह कौं प्यार करतु है । १० अ ॥

व्यस्तसमस्तोत्तर-वर्णनं–(दोहा)

द्वै त्रय बरननि काढ़ि पद, उत्तर जानिये व्यस्त ।
व्यस्तसमस्तोत्तर वही, पिछिलो उतर समस्त ॥११॥

यथा

कौन दुखद, को हंस सो, को पंकज-आगार ।
तरुन-जनन को मनहरन को, करि चित्त बिचार ॥१२॥
कौन धरे है धरनि को, को गयंद-असवार ।
कौन मृडानी को जनक है, परवतसरदार ॥१३॥

अस्य तिलक

पर,वत,सर,दार,परवत,सरदार, परबतसरदार यौं उत्तर जानिये ।१३अ

---

[८] वाच्यांतर–वाच्यअंतर (सर०, भारत, वेंक०) ।
[९अ] कम–कमल (सर०, वेंक०) । भए–भए क अर्थात् जल का मल (भारत) ।
[१०] पीउ–पीय (वेल०) ।
[१०अ] कौं–कह (सर०) ।
[११] उतर०–उत्तर जानिय (सर०) ।
[१२] ०हरन–०हरनि (भारत, वेंक०) । मृडानी–भवानी (भारत, वेल०); मृगन (वेंक०) ।
[१३अ] × (वेंक०) । यौं उत्तर जानिये–× (सर०) ।

एकानेकोत्तर-लक्षणं–(दोहा)

बहुत भाँति के प्रस्न को उत्तर एक बखानि।
एकानेकोत्तर वही, अनेकार्थ-बल मानि ॥१४॥

यथा

बरो जरो, घोरो अरो, पान सरो क्यौं दार।
हितू फिरो क्यौं द्वार तें, हुतो न फेरनिहार ॥१५॥
कारो कियो बिसेषि कै, जावक कहा सभाग।
काहे रँगि गो भौंर-पद, पंडित कहै पराग ॥१६॥
कैसी नृपसेना भली, कैसी भली न नारि।
कैसी मग बिनु वारि की, अति रजवती बिचारि ॥१७॥

नागपाशोत्तर-वर्णनं

इक इक अंतर तजि बरन, द्वै द्वै बरन मिलाइ।
नागपासउत्तर यही, कुंडल-सरिस बनाइ ॥१८॥

यथा–(सोरठा)

कहा चंद में स्याम, छत्रिन को गुन कौन कहि।
कहा संबतहि नाम, पारसीक-बासी कहैं ॥१९॥
कहा रहै संसार, बाहन कहा कुबेर को।
चाहै कहा भुआर दास उतर दिय तरलबन ॥२०॥

क्रमव्यस्तसमस्त-लक्षणं–(दोहा)

इक इक बरन बढ़ावते, क्रम तें लेहु समत्त।
यह प्रस्नोत्तर जानिये, है समस्तक्रमव्यस्त ॥२१॥

---

[१५] फिरो–फिर्यो (भारत, वेंक०)। हुतो–हुत्यो (भारत, वेंक०, वेल०)।
[१६] कियो–किए (सर०)। कै–को (भारत, वेल०)। जावक पावक (भारत, वेंक०)।
[१७] कैसी मग–कैसो मग (वेल०)। की–को (वही)।
[१८] मिलाइ–मिलाउ (सर०)। बनाइ–बनाउ (वही)।
[१९] कहि–कहु (भारत)।
[२१] है०–दह० (भारत, वेंक०); क्रमसमस्तव्यस्त (वेल०)।

यथा–(सोरठा)

कौन विकल्पी वर्न, कहा विचारत गनकगन।
हरि ह्वैके दुखहर्न, काहि बचायो असत छन ॥२२॥
के वाँ प्रभु अवतार, क्यौं वारै राई-लवन।
कौन सिध्धिदातार दास कह्यो वारनवदन ॥२३॥

अस्य तिलक

वा, वार, वारन, वार नव, वारन बद, वारनवदन। २३ अ॥

कमलबंधोत्तर, यथा–(दोहा)

अच्छर पढ़ौ समस्त को, अंत बरन सौं जोरि।
कमलबंधउत्तर वही, व्यस्तसमस्त बहोरि ॥२४॥

(छप्पय)

कह कपीस सुभ अंग, कहा उच्छरत वर बागन।
कहा निसाचर-भोग, माह मैं दान कौन भन।
कहा सिंधु मैं भयो, सेतु किन कियो, को दुतिय।
सरसिज किते सकंट कहा लखि प्रिना होति हिय।
किहि दास हलायुध हाथ धरि मार्‍यो महा प्रलंब खल।
क्यौं रहत सुचित साकत सदा, गनपतिजननीनामबल ॥२५॥

शृंखलोत्तर-लच्छन–(दोहा)

दुहै गतागत लेत चलि, इक इक बरन तजंत।
नाम सृंखलोत्तर वही, होत समस्त जु अंत ॥२६॥

---

[२२] पीन–[illegible] (भारत, वेल०)।
[२३] धो—वो (भारत), वा (वेल०)।
[२३अ] [illegible]–[illegible], इन ने प्रश्नों के उत्तर हैं (भारत)।
[२४] वही—वहै (वेल०)।
[२५] [illegible] (वेल०)। साकत–सोवत (भारत)। तिलक 'भारत' की पाद-टिप्पणी में दिया है [illegible] समझाते हुए। 'वेल०' में भी आधुनिक टिप्पणी [illegible] है। [illegible] नहीं।
[२६] दुहै–दुहैं (वेल०)।

यथा-(सवैया)

छविभूषन को, जन को हर को, सुर को घर को, सुभ को नरु-ती ।
किहि पाए गुमान बढ़ै, किहि आए घटै, जग में थिर कौन दुती ।
सुभ जन्म को दास कहा कहिये, बृषभान की राधिका कौन हुती ।
घटिका निसि आजु सु केती अली, किहि पूजहिगी, *नगराजसुती* ॥२७॥

अत्य तिलक

नग, [गन], गरा, [राग], राज, [जरा], जसु, [सुज], सुती, [तीसु], नगराजसुती । २७ अ ॥

गतागत दूजी शृंखला-लक्षण-(दोहा)

पहिले गत चलि जाइये, अगत चलिय पुनि व्यस्त ।
इहौ सृंखलोत्तर गुनौ, पुनि गतअगत समस्त ॥ २८ ॥

यथा-(कवित्त)

को सुघर, कहा कीन्ही लाज गनिकानि, को
पढ़ैया खग, मोहै काहे मृग, कहाँ तपी बस ।
कहा नृप करै, कहा भू में बिसतरै, कहा
जुवा छवि घरै, को है दास-नाम, कै हैं रस ।
जीवै कौन, कौन अखरा की रेफ, कैकै कहा
कहैं, क्रूर-मीत राखै कहा कहि घोस दस ।
साधु कहा गावै, कहा कुलटा सती सिखावै,
सबको उतर दास जानकीरवनयस ॥२९॥

अत्य तिलक

जान, न की, कीर, रव, वन, नय, यस, [सय = सज, यन = जन, नव, वर, र की, कीन, न जा, जानकीरवनयस, सयन वर की न जा] । २९ अ ॥

---

[२७] जन-जय (भारत); जय (वेंक०, वेल०) । को नरु०-कौन रती (सर्वत्र) ।
[२७अ] नग ' तुनी-X (भारत) । नगराजतुती-X (वेंक०) ।
[२८] गुनौ-मनौ (भारत, वेंक० वेल०) ।
[२९] काहे-कहा (भारत, वेल०) । कहि-कहैं (भारत) ।
[२९अ] 'भारत' की पादटिप्पणी में पूरा तिलक है, अर्थ समझाते हुए। 'वेल०' में भी आधुनिक टिप्पणी पूर्ववत् है । यस-यश जानकीरवन यस (वेंक०) ।

चित्रोत्तर-वर्णनं-(दोहा)

जोई अच्छर प्रस्न को, उत्तर ताही माह ।
चित्रोत्तर ताही कहैं, सकल कबिन के नाह ॥ ३० ॥

यथा-(सवैया)

कौन परावन देव सतावन, को लहै भार धरै धरती को ।
को दस ही में सुन्यो जित ठौरनि, को बिद सो दिगपालन टीको ।
जानत आपु को बूंद समुद्र में, का में सरूप सराहिये नीको ।
का दरबार न सोहत सूरन, को पजरावत पुन्य तपी को ॥ ३१ ॥

इति अतर्लापिका

वहिर्लापिकाउत्तर-वर्णनं-(कवित्त)

को गन सुखद, काहे अंगुली सुलच्छनी है,
देत कहा घन, कैसो बिरही को चंदु है ।
जालै क्यों तुकारै, कहा लघु नाम धारै, कहा
नृत्य में विचारै, कहा फोंदो व्याध फंदु है ।
कहा दै पचावै फूटे भाजन में भात, क्यों
बोलावै कुस आतु, कहा बृष बोलु मदु है ।
भू पै कौन भावै, खग-खेलै को नठावै, प्रिया
फेरै कहि कहा, कहा रोगिन को वंदु है ॥ ३२ ॥

अस्य तिलक

यगन, जव, थल, जवाल, लय, जलवा, वाल, लय, लवा, लवा, [illegible] यवा, याज. याल, लवाय, वायल [य, यवा=जवा, यल=जल, यवाल=जवाल. जलया, ल, लय, लवा. लयवा (लेवा), लवाय, (लव + आय), वा (यों), वाल (वाल), वाय=वाज, वालय (वाले), वायल (बानल)] । ३२ अ ॥

---

[३०] [illegible]—[illegible] [illegible] (वेंक०) ।
[३१] [illegible]—[illegible] (सर०); जिन (वेंक०) । को बिद सो—[illegible] दमो (सर०, [illegible], वेंक०) । बूंद—बूंद (वेंक०) ।
[३२] काहे—कहे (सर०) । अंगुली—अंगुरी (वेंक०) । घन—धन (सर०, वेंक०) [illegible]—[illegible] को [illegible] (वेंक०) । को [illegible]—कौन [illegible] ([illegible]) (सर०, [illegible], वेंक०) ।

(दोहा)

खचि त्रिकोन य ल वा हि लिखि, पढ़ौ अर्थ मिलि ज्यों हि ।
उतरु सर्वतोभद्र यह, वहिरलापिका यों हि ॥३३॥
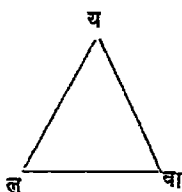
पाठांतर-चित्र—(दोहा)

वरन लुपे बदले बढ़े चमत्कार ठहराइ ।
सो पाठांतर चित्र है, सुनौ सुमति-समुदाइ ॥३४॥

वर्णलुप्त-वर्णनं—(चौपाई)

तमोल मँगाइ धरौ इहि वारी । मिलिवे की जिय मैं रुचि भारी ।
कन्हाइ फिरै कत यौं सखि प्यारी । विहार कि आजु करौ अधिकारी ॥

अस्य तिलक

सिरे को एक एक वर्न छोड़ि पढ़े दूसरो अर्थ । ३५ अ ॥

मोल मँगाइ धरौ इहि वारी । लीवे की जिय मैं रुचि भारी ।
न्हाइ फिरै कत यौं सखि प्यारी । हार की आजु करौ अधिकारी ॥३६॥

---

[३३] य ल वा०—त्र ल वाहि (सर०) ; त्र ल वाहि (वेंक०) ।

[३४] लुपे-लुये (वेंक०) । पाठांतर—पाठोत्तर (वेंक०) ।

[३५] मिलिवे-मिलैवे (वेंक०) । की—की है (सर०, भारत) ; कि है (वेंक०) । कन्हाइ—कन्हाई (भारत, वेंक०) । यौं—त्यौं (वेल०) ।

[३५अ] सिरे—सिर (वेंक०) । पढ़े—पढ़े तो (भारत, वेंक०) । अर्थ—अर्थ निकलै (भारत) ।

[३६] लीवे०—लिवे की है (सर०) ; लीवे कि है (भारत) ; लेवे कि है (वेंक०) । जिय—मन (सर०, वेंक०) । यौं—त्यौं (वेल०) ।

यथा-(दोहा)

मत्तगमै मिलिबो भलो नहिँ बातुल सोँ लाल ।
नहिँ समुझ्यो, दुहुँ सब्द को मध्य लोपिये हाल ॥३७॥

अस्य तिलक

मग मेँ मिलिबो भलो नहिँ बाल सोँ । ३७ अ ॥

वर्ण बदले, यथा-(कवित्त)

साज सब आको बिन माँगे करतार देत,
परम अधीस बस भूमि थल देखिये ।
दासी दास केते करि लेत सधरम तेँ,
सलच्छन सहिंमति सहर्ष अवरेखिये ।
सीलतन सिरताज सखन बढ़ाए ज्यौं,
सकल आसै साँचु मेँ जगत जस पेखिये ।
हिंदूपति-गुन मेँ जे गाए मेँ सकारै ताकौं,
वैरिन मेँ क्रम तेँ नकारै करि लेखिये ॥३८॥

अस्य तिलक

सकारन्ह की ठौर नकार करि पढ़े दूसरो अर्थ, वर्न बढ़े को पहिले लुप्त ही तेँ जानवी । ३८ अ ॥

बाणीचित्र-वर्णनं-(दोहा)

धरनि निरोष्ठ अमत्त पुनि, होत निरोष्ठामत्तु ।
पुनि अजिह्व नियमित्त बरन, बानीचित्रहि तत्तु ॥ ३९ ॥

---

[३७] मत्तगमै-मत मगमै (सर०), मग मेँ (भारत); मारग मेँ (वेल०) । मिलिबो-मिलिबी (वेंक०) । समुझ्यो-समुझ्यौ (सर०, वेंक०); [illegible] (वेल०) ।

[३७अ] भलो०-भल नहीँ (सर०); लो नहीँ (वेंक०) । सोँ-सौँ, बातुल का [illegible] तु छोड़ कर दो (भारत) ।

[३८] बर-बढ़ (भारत, वेंक०, वेल०) ।

[३८अ] 'भारत' में आधुनिक खड़ी बोली में है । 'अर्थ...जानवी' के बदले '[illegible] हो जाता है' दिया है । 'सकारन्ह...पढ़े'-X [illegible] ।

निरोष्ठ-लक्षणं

छाड़ि पवर्ग उ ओ वरन, और वरन सब लेहु।
याको नाम निरोष्ठ है, हिये धरौ निसँदेहु ॥४०॥

यथा—(कवित्त)

कन हूँ सिंगार रस के करन जस ये
सघन घन आनँद की झर जे सँचारते।
दास सरि देव जिन्हैं सारस के रस रसे
अलिन के गन खन खन तन झारते।
राधादिक नारिन के हिय की हकीकति,
लखे तेँ अचरज रीति इनकी निहारते।
कारे कान्ह कारे कारे तारे ये तिहारे जित
जाते तित राते राते रंग करि डारते ॥४१॥

अमत्त-लक्षणं—(दोहा)

एक अ वरनै वरनिये, इ उ ऐ औ कछु नाहिँ।
ताहि अमत्त बखानिये, समुझौ निज मन माहिँ ॥४२॥

यथा—(छप्पय)

कमलनयन पदकमल कमलकर अमलकमल-धर।
सहस सरद-ससधरन-हरनमद लसत वदन-वर।
रहत सजन-सन-सदन हरष छन छन तत वरसत।
हर कमलज सम लहत जनमफल दरसन दरसत।
तन सघन सजल-जलधर-वरन, जगत धवल जस वसकरन।
दसवदन-दरन अमरन वरन, दसरथतनय-चरन-सरन ॥४३॥

---

[४०] हिये०—हियो० (भारत); हिय धर नि.संदेहु (वेंक०)।

[४१] कन—कौन (भारत, वेल०)। के करन०—जस ये सघन घन घन घन कैसे (वेल०)। जे—ते (भारत, वेल०)।

[४२] अवरनै—औरनै (भारत, वेंक०)। इ उ०—इ ऊ ये (सर०) ; इ उ ये औ० (भारत); र उ ये औ० (वेंक०); इ ऊ ए ऐ औ नाहिँ (वेल०)।

[४३] हरन०—मदन हरन (सर०)। वर—पर (वही)। रहत—हरत (वही)। सजन—सतन (भारत, वेंक०)। हर—हरप (सर०)। सम-स (वही)

निरोष्ठामत्त-वर्णनं-(दोहा)

पढ़त न लागै अधर अरु, होइ अमत्ता बर्न।
ताहि निरोष्ठामत्त कहि, कहैं सुकवि मनहर्न ॥४४॥

यथा-(छप्पय)

कहत रहत जस खलक सरद-ससधरन-झलक तन।
रजत-अचल घर सजत कनक-धन नगन सकल गन।
जल अरचत घन सतन हरष अनगन घर सरसत।
हतन अतन-गन जतन करत छन दरसन दरसत।
जल-अनघ जरद अलकन लसत, नयन अनलधर गरलगर।
जन-दरद-दरन असरन-सरन, जय जय जय अघहरन हर ॥४५॥

अजिह्व-वर्णनं-(दोहा)

जित ह वर्न अ-कवर्ग तित और न आवै कोइ।
ताहि अजिह्व बखानहीं, जिह्वा -चलित न होइ ॥४६॥

यथा-(सवैया)

खाइहै घीअ अघाइहै हीअ गहागहै गीअ अहे कहा खंगा।
है है कहाँ की कहाँ की है खै खै ए गेह के गाहक खेह है अंगा।
काहे कौं घाइ गहै अघओघ क्यौं काक की कीक कहा किए कंगा।
गाइए गंगा कहाइए गंगा के ही गहे गंगा अहे कहै गंगा ॥४७॥

समन (वेंक०)। जनम-जन (सर०)। दस-सब (वेंक०)। अम-रन०-अवढरढरन (सर०)।

[४४] कहैं०-बरनत कवि (वेल०)।

[४५] सतन-सनत (वेल०)। अतन-अनग (वेंक०)। गन-वन (सर०)। दरन-हरन (वही)।

[४७] घीअ-घीया (सर०); घीय (भारत, वेंक०, वेल०)। हीअ-हीया (सर०); हीय (भारत, वेंक०, वेल०)। गहागहै-गहगाहै (सर०)। गीअ-गीय (भारत, वेंक०, वेल०)। कहाँ की कहाँ को है-कहीं को है (वही)। ए-ये (वही)। खेह है-खेह के खेह है (वही)। घाइ-घाइ (वेल०)। गहै-है औ (भारत, वेंक०); गहौ (वेल०)। काक-काग (भारत, वेंक०, वेल०)। गाइए-गाइये (वेंक०)। कहाइए-कहाइये (वही)। के ही०-कहा गहै (भारत); कही कहै (वेल०)।

नियमित-वर्णनं-(दोहा)

इक इक तें छत्तीस लगि होत बरन अधिकार।
तदपि कह्यो हौं सात लौं, जानि ग्रंथविस्तार ॥४८॥

एकवर्ण नियमित, यथा

तो तू ताते तोति, ते तावे तोते तोत।
तोते ताते तत्तुतो, तोतै तोतातोत ॥४९॥

द्विवर्ण नियमित, यथा

रोर मार रौरो करै, मुरि मुरि मेरी रारि।
रोम रोम मेरो ररै, रामा राम मुरारि ॥५०॥

त्रिवर्ण नियमित, यथा

मनमोहन महिमा महा, मुनि मोहै मन माहिं।
महा मोह में मैं नहीं, नेह मोहिं में नाहिं ॥५१॥

चतुर्वर्ण नियमित, यथा

महरि निमोही नाह है, हरे हरे मन मानि।
मान मरोरे मानिनी, नेह-राह में हानि ॥५२॥

पंचवर्ण नियमित, यथा

कम लागै कमला-कला, मिलै मैनका कौनि।
नीकी मैंगल-नौनि कै, नीकी मैंगल-नौनि ॥५३॥

षट्वर्ण नियमित, यथा

सदानंद संसार हित, नासन संसै त्रास।
निस्तारन संतन सदा दरसन दरसत दास ॥५४॥

सप्तवर्ण नियमित, यथा-(कवित्त)

मधुमास में री परा धरा पगु धारे माधो,
सौरे धीरे गौन सौं सुगंध पौन परि गो।

[४९] ताते-तांते (भारत)। तो-ते (भारत, वेंक०)।
[५०] 'भर०' में छूट गया है। रौरो-रोरे (वेल०)।
[५१] मरोरे-करोरे (स०)।
[५४] संसै-संशय (भारत, वेंक०); ननन (वेल०)। संतन-संजय (वेंक०); मनन्ह (वेल०)।

तीरे गै गै पुनि पुनि ररै न मधुर धुनि,
मानो मेरी रमनी मधुप सारे मरि गो।
पागे मनु प्रेम सौं न नेम सम साधे मौन,
सिगरे परोसी पापी धाम सौं निसरि गो।
रोस धरि गिरिधारी मन मैं धँसै न री,
सुमनधनुधारी सर पैने पैने सरि गो ॥५५॥

लेखनीचित्र-वर्णनं-(दोहा)

खड्ग कमल कंकन डमरु, चक्र चक्र धनु हार।
मुरज छत्रजुत बंध बहु, पर्वत वृक्ष कँवार ॥५६॥
विविध गतागत मंत्रिगति, त्रिपदि अस्वगति जानि।
विमुख सर्वतोमुख बहुरि, कामधेनु उर आनि ॥५७॥
अक्षरगुप्त समेत हैं, लेखनि-चित्र अपार।
बरनन-पंथ बताइ मैं दीन्हो मति अनुसार ॥५८॥

खड्ग-बंध

हरि मुरि मुरि जाती उमगि, लगि लगि नैन कृपान।
ताते कहिये रावरो, हियो पखान समान ॥५९॥

कमल-बंध

छनु दनुजनु तनु प्रानुहनु, भानुमानु हनु मानु।
जानुमानु जनु ठानु धनु, ध्यानु आनु हनुमानु ॥६०॥

कंकण-बंध (तोमर)

साहि दामवंत पानि। नाहि कामवंत मानि।
जाहि नाम संत खानि। ताहि नाम सत्त जानि ॥६१॥

---

[५५] परा-रर (भर०)। न नेम०-न मने सभै (वही); न माने सभै (वेंक०); मनोमन्द से (वेज०)। मैं०-माद पैठै नारी (वही)। धनु०-धनुषधारी पै न मर तरि गो (वही)।
[५७] मंत्रि-मंत्र (भारत, वेंक०); [illegible] (वेज०)।
[५९] नैन-नयन, भारत, वेज०)। कहिये-कहिए। (वेंक०)।
[६०] भानु-[illegible] (सर०)। हनु-[illegible] (वही)। [illegible] (भारत, वेंक०)।
[६१] [illegible] (वेज०)। [illegible] (वही)।

डमरू-बंध—(सवैया)

सैल समान उरोज बने मुखपंकज सुंदर मान नसै।
सैनन मार दई जुग नैनन तारे कसौटिन तारे कसै।
सैकरे तान टिके सुनिबे कहँ माधुरी बैन सदा सरसै।
सैरस दास नवेली के केस मनो घन सावन मास लसै ॥६२॥

चंद्र-बंध—(दोहा)

रहै सदा रत्नाहि मैं, रमानाथ रनधीर।
आनहु दासौ ध्यान मैं, धरे हाथ धनुतीर ॥६३॥

चंद्र-बंध दूसरो

दनुज सदल मरदन बिसद, लसहद करन दयाल।
लहै सैन सुख हरख बस, सुमिरतही सब काल ॥६४॥

चक्र-बंध—(हरिगीत)

परमेस्वरी परसिद्ध है पसुनाथ की पतिनी प्रियो।
परचंड चाप चढ़ाइकै परसैन छै पल मैं कियो।
खल छै करी सब क्वै कहै सरि जाहि की न कहूँ बियो।
पदपद्म चारु सु ध्याइकै करि दास छेमभरयो हियो ॥६५॥

चक्र-बंध दूसरो—(छप्पय)

कर नराच धनु धरन नरकदारनो निरंजन।
जदुकुल-सरसिज-भानु नयरित्यन गारो-गंजन।
लस्स दुअन-दल-दरन मध्य तूनीर जुगल तन।
चकित करन बर नरन बनक बर सरस दरस छन।
कहि दास कामजेता प्रबल, तेता देवन भै हरन।
यह जानि जान आपु सदा कमलनयन-चरनन सरन ॥६६॥

---

[६२] सावन—साउन (वेल०)।

[६३] दासौ—दासो (वेंक०)।

[६५] छै—छ्वै (सर०); छय (भारत)। सु ध्याइ—सुधारि (वेंक०)। छेम०—छेमद सो (भारत, वेल०)।

[६६] नयरित्यन—नैरित्यन (भारत); नइरितन (वेंक०); नयरितन (वेल०)। बर नरन—चरनरन (भारत, वेल०)। दरस०—दरसत्तन (वही)। तेता—नेता (वेंक०)।

धनुष-बंध-(दोहा)

तियतनु दुर्ग अनूप मैं, मनमथ निवस्यो बीर।
हनै लग लगत भ्रुअ धनुष, साधे निरखनि-तीर ॥६७॥

हार-बंध

सुनि सुनि पनु हनुमान किय, सिय-हिय धनि धनि मानि।
धरि करि हरि गति प्रीति अति, सुख रुख दुख दिय भानि ॥६८॥

मुरज-बंध [?]

जैति जो जनतारनी। कांति जो बिसतारनी।
सो भजो प्रनतारतै। छोभ जोजन तारतै ॥६९॥

छत्र-बंध-(छप्पय)

दनुजनिकर-दल दरन दानि देवतनि अभै बर।
सरद सर्बरीनाथ वदन सत - मदन - गर्वहर।
तरुन-कमलदल नयन सिर ललित पाँखै सोभित।
लहि भो री मो बीर सुसम दुति तन मन लोभित।
तन सरस नीरप्रद नयहु तैं, मरकत-छबिहर कांतिवर।
ते दास परम सुखसदन जे, मगन रहत यहि रूप पर ॥७०॥

---

[६७] तिय–तिअ (वेल०)। भ्रुअ–भुअ (भारत, वेल०) ; भुव (वेंक०)। धनुष–धनुक (सर०)।

[६८] हिय–जिय (वेंक०)।

[६९] कांति–कीर्ति (भारत, वेल०)। प्रन०–प्रनतारनी (वही)। तारतै–तारनी (भारत) ; हारनी (वेल०)।

[७०] दरन–दलनि (भारत) ; दलन (बेल०)। गर्व–गरब (वेंक०, वेल०)। पाँखै–पाँखैं (भारत) ; पंख (वेंक०) ; पंखै (वेल०)। मो–भो (भारत)। लहि–लखि (वेंक०, वेल०)। तन–तनु (वेंक०)। नीर–भीर (भारत)। नयहु–न नवहु (भारत) ; नवहु (वेंक०) ; नवहु (बेल०)। कांति–कोति (भारत)। 'भारत, वेल०' में यह 'पर्वत-बंध' के अनंतर है।

पर्वत-बंध-(सवैया)

कै चित चैहै कै तोपर देहै लली तुव ब्याधिन सों पचिकै।
नीरस काहे करै रस बात मैं देहि औ लेहि सुखै सचिकै।
नच्चत मोर करै पिक सोर बिराजतो भौंर घनो मचिकै।
कै चित है रवनी तन तोहि हितो नत नीवर है तचिकै ॥७१॥

वृक्ष-बंध-(छप्पय)

आए बृज-अवतंसु सुतिय रहि तकि निरखत छन।
सुरपति को ढँगु लाइ सुरतरुहि लिय निज धरि पन।
सु सचि भावती पत्तरि सुछबि सरसत सुंदर अति।
सुमन घरे बहु बान सु लखि जीजति पची नति।
केतकि गुलाब चंपक दवन, मरुअ नवारी छाजहीं।
कोकिल चकोर खजन धवर, कुरर परेवा राजहीं ॥७२॥

कपाट-बंध-(दोहा)

भवपति भुवपति भक्तपति, सीतापति रघुनाथ।
जसपति रसपति रासपति, राधापति जदुनाथ ॥७३॥

भवप	ति	पसज
भुवप	ति	पसर
भक्तप	ति	पसरा
सीताप	ति	पधारा
रघुना	थ	नादुज

गतागत-लक्षण-(दोहा)

आधे ही तें एक जहँ, उलटे सीधे एक।
उलटे सीधे द्वै कवित, त्रिविधि गतागत टेक ॥७४॥

---

[७१] चैहै-वैहै (वेंक०)। तुव-निच (वही)।
[७२] आए-आयो (भारत)। सति-सत्य (सर०)।
[७४] जहँ०-जहँ उलटो सीधो (भारत, वेंक०, वेल०)।

आधे तें एक, यथा-(दोहा)

रही अगी कव तें लिये. गयौं मि निरखनि-तीर ।
(रतो निरदर निमि मी गये हिते न करी अहीर) ॥७५॥

[तिलक]

उलटि पढ़े दोहा पूर भयौ । ७५ अ ॥

आधे तें एक दूसरो छंद

दास मैन नर्म मदा । दाग कोप पको गदा ।
सैल सोनन मो लसै । सैन टैत तटै नसै ॥७६॥

दा	स	मै	न
दा	ग	को	प
सै	ल	सो	न
सै	न	टै	त

उलटे सीधे एक, यथा-(दोहा)

सखा दरद को री हरी, हरी को दरद खास ।
सदा अकिलवाने गने, गने वाल किअ दास ॥७७॥

उलटे सीधे एक, यथा-(सवैया)

रे मनु गंग सुजान गुनी सु सुनी गुन जासु गगंनु भरे ।
रेत कने अँग लों लहि नेकु कुनेहिल लोग अनेक तरे ।
रेफ समौरथ जाहिर वास सवारहि जा धरमौ सफरे ।
रेखत पानिहि जो हित दास सदा तेहि जोहि निपात खरे ॥७८॥

---

[७५] 'भारत, वेंक०, बेल०' में यह ७६वाँ है । दोहा पूरा मूल में दिया गया है । 'सर०' में केवल पहला दल है ।

[७५अ] 'तिलक' 'सर०' के अतिरिक्त कहीं नहीं है ।

[७६] 'भारत, वेंक०, बेल०' में यह ७५वाँ है ।

[७८] मनु-मधु (भारत, वेंक०, बेल०) । गगंनु-गग जु (वही) । समौरथ-समोरथ (वही) । धरमौ-घर मो (वही) । पानिहि-पानहि (वही) । जो हित-

उलटे सीधे द्वै, यथा–(दोहा)

न जानतहु यहि *दास* सों, हँसौं कौन तन गैल ।
न आहिन यति दुरे बसौं, रमो न तब रस-सैल ॥७६॥

उलटे दूसरो, यथा

लसै सरब तन मोर सौं, चरे दुतिय नहिं आन ।
लगै न तनकौ सौंह मौं, सदा हियहु तन जान ॥८०॥

उलटे सीधे द्वै, यथा–(सवैया)

सी बनमालिहिं हीन जलै महि मोहि दगो अति है तरलो ।
सीकर जी जरि हानि ठओ सु लयो कवि *दास* न चैत पलो ।
मील न जानति भौंतड-सार दयाहि निरोखन है न भलो ।
मीस जलायो मलैजहु तैं यहि भीग्यसु जोन्ह न जान चलो ॥८१॥

उलटो दूसरो, यथा

लोचन जानन्ह जो मुख भी हिय तैं हु जलै मयो लाज समी ।
लोभ न है न खरी निहिया दरसाउत भौंतिन जान लसी ।
लोपत चैन सदा बिकयो लमु ओठ निहारि जजीर कसी ।
लोरत है तिअ गोदहि मोहिं मलैज नही हिलिमा नवसी ॥८२॥

त्रिपदी-लच्छणं–(दोहा)

मध्य बरन इक दुहूँ दलन, त्रिपदी जानहु सोइ ।
वहैं मत्रिगति अन्यगति सुद्ध सु याहू दोइ ॥८३॥

प्रथम त्रिपदी, यथा

दास चारु चित चाय मय, महै स्याम छबि लेखि ।
हाम हार रति पाय भय, रहै काम दुति देखि ॥८४॥

को दित (सर० भाग्, नैष०) । नेदि-निदि (नदी) । निपान-नपान (भारत, नैक०, वेम) ।

[८२] दरन-नरन (माल, नैष०, वेल०) । द्रुति-भाप (वहीं) ।

[८४] भाग-नाह (भार, नैष०, वेम०) ।
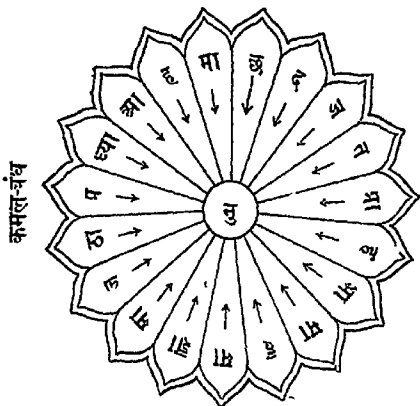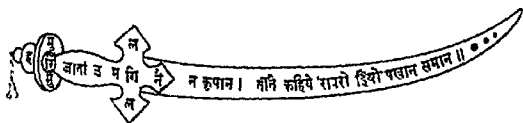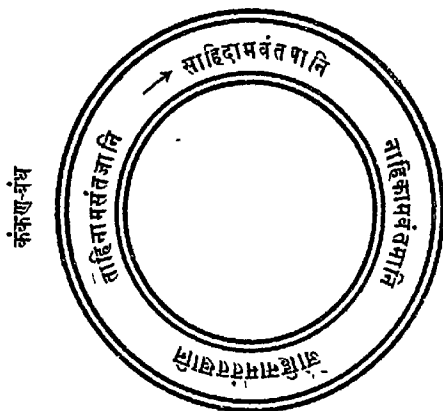
कंकण-बंध
ताहिनामसंतजानि
[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०२]
कमल-बंध
[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०३]
खड्ग-बंध
[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०३]

डमरू-बंध
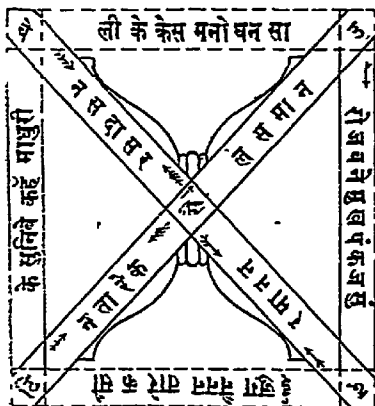
[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

चंद्र-बंध—१

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

चंद्र-बंध—२

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

चक्र-बंध—१

चक्र-बंध—२

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०८]

धनुष-बंध

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०५]

हार-बंध

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०५]

मुरज-बंध

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०५]

छत्र-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०५]

पर्वत-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०६]

वृक्ष-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०६]

कपाट-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०६]

मंत्रिगति-बंध

[काव्यनिर्णय पृष्ठ २०६]

अश्वगति-बंध

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०६]

कामधेनु-बंध

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २११]

द्वितीय त्रिपदी, यथा

दा	चा	चि	चा	म	म	स्या	छ	ले
स	रु	त	य	थ	है	म	बि	खि
हा	हा	हि	पा	भ	र	का	द	दे

जहाँ जहाँ प्यारे फिरैं, धरैं हाथ धनु बान।
तहाँ तहाँ तारे घिरैं, करैं साथ मनु प्रान ॥८५॥

ज	ज	प्या	फि	ध	हा	ध	बा
हाँ	हाँ	रे	रैं	रैं	थ	नु	न
त	त	ता	घि	क	सा	म	प्रा

मंत्रिगति-बंध, यथा

१ ज	९ हाँ	२ ज	१० हाँ	३ प्या	११ रे	४ फि	१२ रैं	५ ध	१३ रैं	६ हा	१४ थ	७ ध	१५ नु	८ बा	१६ न
९ त	१ हाँ	१० त	२ हाँ	११ ता	३ रे	१२ घि	४ रैं	१३ क	५ रैं	१४ सा	६ थ	१५ म	७ नु	१६ प्रा	८ न

अश्वगति, यथा

१ ज	९ हाँ	२ ज	१० हाँ	३ प्या	११ रे	४ फि	१२ रैं
५ ध	१३ रैं	६ हा	१४ थ	७ ध	१५ नु	८ बा	१६ न
९ त	१ हाँ	१० त	२ हाँ	११ ता	३ रे	१२ घि	४ रैं
१३ क	५ रैं	१४ सा	६ थ	१५ म	७ नु	१६ प्रा	न

सुमुख-बंध, यथा—(भुजंगप्रयात)

भुमानी निदानी मृडानी भवानी।
दयानी कृपानी सुचानी विमानी।

विराजै सुराजै खलाजै सुसाजै।
सुचंडी प्रचंडी अखंडी अदंडी ॥ ८६ ॥

सुदानी	निदानी	मृडानी	भवानी
दयाली	कृपाली	सुचाली	विसाली
विराजै	सुराजै	खलाजै	सुसाजै
सुचंडी	प्रचंडी	अखंडी	अदंडी

सर्वतोमुख, यथा–(श्लोक)

मारारासुमुरारामारासजानिनिजासरा।
राजारवीवीरजारामुनिर्वीसुसुर्वीनिमु ॥ ८७ ॥

मा	रा	रा	मु	मु	रा	रा	मा
रा	स	जा	नि	नि	जा	स	रा
रा	जा	र	वी	वी	र	जा	रा
मु	नि	र्वी	सु	सु	र्वी	नि	मु
मु	नि	र्वी	सु	सु	र्वी	नि	मु
रा	जा	र	वी	वी	र	जा	रा
रा	स	जा	नि	नि	जा	स	रा
मा	रा	रा	मु	मु	रा	रा	मा

कामधेनु-लक्षणं–(दोहा)

गहि तजि प्रति कोठनि चढ़ै, उपजै छंद अपार।
व्यस्तसमस्त गतागतहु, कामधेनु-विस्तार ॥ ८८ ॥

---

[८६] सुभुज-दुभुज (सर०)। कृपाली-कृपानी (वही)। खलाजै-पलाजै (वही)। सुराजै-पराजै (वही)।

[८८] गहि-गति (सर०)। चढ़ै-पढ़ै (वही)।

कामधेनु-बंध, यथा—(सवैया)

दास	चहै	नहि	और	सों	यों	सब	मूठि	एहै	जन	जान	रहै	सति
आस	गहै	यहि	ठौर	सों	ज्यों	नव	रूठि	एसै	तन	प्रान	डरै	अति
वास	दहै	गहि	दौर	सों	ह्यो	अब	तूठि	एतै	मन	ठान	धरै	रति
हास	लहै	यहि	तौर	सों	प्यो	तव	मूठि	एमै	मन	मान	करै	मति

॥८६॥

चरणगुप्त, यथा—(ककुभ छंद)

री सखि कहा कहौं छवि गुन गनि अलिन्ह बसायो काननि मैं।
काननि तजि पुनि दृगनि बस्यो ज्यौं प्रानी बिरमे थाननि मैं।
क्रम क्रम दास रह्यो मिलि मन सौं कढ़ै न बिबिधि विधाननि मैं।
लूटै ज्ञान समूहनि को अब भ्रमै बिहारी प्राननि मैं ॥९०॥

	५		४		३	
	री	सखिक	हा	कहौंछ	वि	
	गु यो जि	नगनि काननि पुनिद	अ मैं ग	लिन्हब कानन निबस्यो	सा त ज्यौं	
६	प्रा	नीबिर	मे ६	थाननि	मैं	२
	क्र लि धि	मक्रम मनसौं बिधान	दा क नि	सरह्यो ढैनबि मैंलूटै	मि बि ज्ञा	
७	न	समूह	नि	कोअब	भ्र	१
			८			

[९०] क्रमक्रम–कामक्रम (सर०)।

दूसरो अन्तरगुप्त, यथा–(कवित्त)

अभिलाषा करी सदा ऐसनि का होय नृत्य,
सब ठौर दिन सब याही सेवा चरचानि।
लोभा लई नीचे ज्ञान चलाचलही को अंतु,
अंत है किया पाताल निंदा रसही को खानि।
सेनापति देवी कर प्रभा गनती को भूप,
पन्ना मोती हीरा हेम सौदा हाल ही को जानि।
हीअ पर देव कर वढे जस रटे नाउँ,
खगासन नगधर सीतानाथ कौलपानि॥ ६१॥

(दोहा)

भूषन छयासी अर्थ के, आठ वाक्य के जोर।
त्रिगुन चारि पुनि कीजिये, अनुप्रास इक ठौर॥ ६२॥
सब्दालंकृत पाँच गनि, चित्रकाव्य इक पाठ।
एकइ रस ता दिक सहित, ठीक सै उपर आठ॥ ६३॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये चित्रकाव्यवर्णनं नाम
एकविंशमोल्लासः॥ २१॥

---

[६१] चलाचल–हलाहल (वेल०)। प्रभा–सोभा (वही)। (मिलाइए छंदार्णव १।५)। 'सर०' में यह दोहा अधिक है—या कवित्त अंतर अगन लै तुकंत द्वै छंडि। दान नाम तूल आम कहि रामभक्तिरस मंडि। (मिलाइए, छंदार्णव १।६)।

[६२] एक०–इकइस नातादिक (भारत, वेंक०, वेल०)। सै०–सतोपरि (वही)।

२२

अथ तुक-निर्णय-वर्णनं—(दोहा)

भाषा-बरनन मैं प्रथम, तुक चाहिये बिसेषि।
उत्तम मध्यम अधम सो, तीनि भाँति को लेखि ॥१॥

उत्तमतुक-भेद

समसरि कहुँ कहुँ विषमसरि, कहूँ कष्टसरि राज।
उत्तम तुक के होत हैं, तीनि भाँति के साज ॥२॥

समसरि, यथा—(कवित्त)

फेरि फेरि हेरि हेरि करि करि अभिलाष,
लाख लाख उपमा बिचारत हैं कहने।
विधि ही मनावै जौ घनेरे दृग पावै तौ,
चहत याहि संतत निहारतहीं रहने।
निमिष निमिष दास रीझत निहाल होत,
लूटे लेत मानो लाख कोटिन के लहने।
एरी बाल तेरे भाल-चदन के लेप आगे,
लोपि जाते और के जराइन के गहने ॥३॥

अस्य तिलक

कहने रहने लहने गहने समसरि भए। ३ अ ॥

विषमसरि—(सवैया)

कंज सकोचे गड़े रहैं कीच मैं मीननि बोरि दियो दह-नीरनि।
दास कहै मृगहू कौं उदास कै बास दियो है अरन्य गँभीरनि।
आपुस मैं उपमा उपमेय ह्वै नैन ये निंदत हैं कवि धीरनि।
खंजनहूँ कौं उड़ाइ दियो, हलुके करि दीन्हे अनंग के तीरनि ॥४॥

---

[३] निहारतहीं-निहारतहि (सर०)। के लेप-की लेप (वही)। जाते-जात (वही)।

[३अ] लहने-लहने और (भारत)। समसरि भए- X (भारत, वेंक०)।

[४] सकोचे-सकोचि (भारत, वेंक०, वेल०)। कौं-के (सर०)। हलुके-हलुको (सर०, वेंक०)। दीन्हे-दीन्हो (भारत, वेल०); दीन्ह्यो (वेंक०)।

अस्य तिलक

नीरनि गँभीरनि धीरनि तीरनि एक मैं चारि वर्न है तातैं विषमसरि भए । ४ अ ॥

कष्टसरि

सात घरीहूँ नहीं बिलगात लजात औ' बात गुने मुसकात हैं ।
तेरी सौं खात हौं लोचन रात है सारसपातहू सौं सरसात हैं ।
राधिका माधौ उठे परभात हैं नैन अघात हैं पेखि प्रभा तहैं ।
आरस गात भरे अरसात हैं लागि सो लागि गरे गिरि जात हैं ॥५॥

अस्य तिलक

प्रभा तहैं, द्वै पद तैं आयो तातैं कष्टसरि है । ५ अ ॥

मध्यमतुक-वर्णनं—(दोहा)

असंयोगमिलि स्वरमिलित, दुर्मिल तीनि प्रकार ।
मध्यम तुक ठहरावते, जिनके बुद्धि अपार ॥६॥

असंयोगमिलित, यथा—(दोहा)

मोहिं भरोसो जाउँगी, स्याम किसोरहि ब्याहि ।
आली मो अँखिया नवरु, इन्हैं न रहतीं चाहि ॥७॥

ब्याहि चाहि असंजोग है ब्याहि च्याहि चाहिये । ७ अ ॥

स्वरमिलित, यथा—(सवैया)

कछु हेरन के मिस हेरि उतै चलि आए कहा हौ महा विष वै ।
दृग वाके झरोखनि लागि रहे सब देह दही बिरहागि मैं तै ।
कहि दास बरैती न एती भली समुझौ वृषभानुलली वह है ।
खरी भाँवरी होत चली तब तैं जब तैं तुम आए हौ भाँवरी दै ॥८॥

अस्य तिलक

विष वै, आगि मैं तै, वह है, भाँवरी दै, यातैं स्वरमिलित भए । ८ अ ॥

---

[५] औ'—जो (भारत, वेंक०, वेल०) । सौं—तैं (वही) । अरसात—अँगिरात (सर०) ।
[५अ] सरि—× (भारत, वेंक०) ।
[७अ] ब्याहि...है—× (भारत, वेंक०) । ब्याहि...चाहिये (सर०, वेंक०) ।
[८अ] × (भारत, वेंक०) ।

दुर्मिल, यथा–(सवैया)

चंद सो आनन राजतो तीय को चाँदनी सो उतरीय महुज्जल ।
फूल से दास झरैं बतियान मैं हाँसी सुधा सी लसै अति निर्मल ।
वाफते, कंचुकी बीच बने कुच साफ ते तारमुलम्मे, से श्रीफल ।
ऐसी प्रभा अभिराम लखे हियरा मैं किये मनो धाम हिमंचल ॥९॥

अस्य तिलक

दूरि से तुक मिले तातैं दुर्मिल कहिये । ९ अ ॥

अधमतुक-वर्णनं–(दोहा)

अमिल-सुमिल मत्ता-अमिल, आदि अत को होइ ।
ताहि अधम तुक कहत हैं, सकल सयाने लोइ ॥१०॥

अमिल-सुमिल, यथा–(तोटक)

अति सोहति नींद भरी पलकैं ।
श्रमबुंद कपोलन मैं झलकैं ।
अरु भीजि फुलेलन की अलकैं ।
अँखियाँ लखि लाल कि क्यौं न छकैं ॥११॥

अस्य तिलक

पलकैं, झलकैं, अलकैं, छकैं, एक पद द्वै वर्न तैं अमिल-सुमिल भयो । ११ अ ॥

आदिमत्त-अमिल, यथा–(तोटक)

मृदु बोलनि बीच सुधा स्रवती ।
तुलसीवन बेलिन मैं भँवती ।

---

[९] राजतो–राजत (भारत, वेल०) । मुलम्मे–मुलमे (सर०) ; मुलैमै (भारत, वेंक०) ; मुलम्म (वेल०) । से–औ (भारत, वेंक०, वेल०) । हियरा–हियरे (सर०) ।

[९अ] ×(भारत, वेंक०) ।

[११] 'भारत, वेंक०, वेल०' मैं दूसरा चरण तीसरा है । सोहति–सोहती (सर०) । भरी–भरे (वही) । भीजि–भीजी (वही) । की–तैं (वेल०) । कि–की (सर०) ।

नहिं जानिय कौन कि है जुवती।
उहि तें अब औंधि है रूपवती ॥१२॥

अस्य तिलक

स्रवती, भँवती, जुवती, रूपवती चारो तुक के आदिमत्ता अमिल हैं। १२ अ ॥

अंतमत्त-अमिल, यथा-(दोहा)

कंजनयनि निज कंजकर, नैननि अंजन देति।
विष मानो बानन भरति, मोहि मारिबे हेतु ॥१३॥

अस्य तिलक

देति, हेतु अंत के मत्ता अमिल हैं। १३ अ ॥

अन्य तुक-वर्णनं-(दोहा)

होत वीपसा जामकी, तुक अपने ही भाउ।
उत्तमादि तुक आगे ही, है लाटिया बनाउ ॥१४॥

वीप्सा, यथा—(कवित्त)

आजु सुरराइ पर कोप्यो तमराइ, कछू
भेदनि बढ़ाइ अपनाइ लै लै घनु घनु।
कीनी सब लोक मैं तिमिर अधिकारी तिमि-
रारि कौं बेगारी लै भरावै नीर छनु छनु।
लोप दुविवतन को देखियत व्याकुल
तरैयाँ भाजि आईं फिरैं जीगना है तनु तनु।

[१२] मैं-मो (सर०)। जानिय-जानिए (वही)। कि-कै (वही)।
उहि-वहि (भारत, वेंक० वेल०)।
[१२अ] ×(भारत, वेंक०)।
[१३] देति-देतु (भारत, वेंक०); देत (वेल०)। हेतु-हेत (वेल०)।
[१३अ] ×(भारत, वेंक०)।
[१४] आगे-आदि (सर०)।

इंद्रु की वधूटी सब साजनि की लूटी खरी,
लोहू घूँट घूँटी वै वगरि रहीं वनु वनु ॥१५॥

अथ तिलक

घनु [घनु], छनु छनु, तनु तनु, वनु वनु, एक पद द्वै वार आए तातें वीपसा भयो । १५ अ ॥

यामकी, यथा—(दोहा)

पाइ पावसै जो करै, प्रिय प्रीतम परि मान ।
दास ज्ञान को लेस नहिं, तिन में तिन-परिमान ॥१६॥

तिलक

परिमान द्वै तुक में आयो दोनों के द्वै अर्थ हैं। १६ अ ॥

लाटिया, यथा—(कवित्त)

तो विनु विहारी में निहारी गति औरई मैं,
बौरई के वृंदन समेटत फिरत हैं।
दाड़िम के फूलनि में दास दाखौ-दाना भरि,
चूमि मधुरसनि लपेटत फिरत हैं।
खंजन चकोरनि परेवा पिक मोरनि,
मराल सुक भौंरनि समेटत फिरत हैं।
कासमीर-हारनि कौं सोनजुही-मारनि कौं,
चंपक की डारन कौं भेंटत फिरत हैं ॥१७॥

तिलक

फिरत हैं चारयौ पद में है यातें लाटिया है ।१७ अ ॥

इति श्रीमकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये तुकनिर्णय-
वर्णनं नाम द्वाविंशमोल्लासः ॥ २२ ॥

---

[१५] लै घनु–सघनु (सर०); लै घनु (भारत, वेल०) । देखियत–देखिअति (भारत, वेंक०, वेल०) । इंदु–इद्र (वेल०) । साजनि–साजन (वही) । घूँट०–घूँटि घूँटि (भारत, वेंक०, वेल०) ।
[१५अ] × (भारत, वेंक०) ।
[१६अ] × (भारत, वेंक०) ।
[१७] दाना–दानो (सर०) ।
[१७अ] × (भारत, वेंक०) ।

२३

अथ दोष-लक्षणं—(दोहा)

दोष सब्दहूँ वाक्यहूँ, अर्थ रसहु में होइ।
तिहि तजि कविताई करै, सज्जन सुमति जु कोइ ॥१॥

अथ शब्ददोष-वर्णनं—(छप्पय)

श्रुतिकटु भाषाहीन अप्रयुक्तो असमर्थहि।
तजि निहतारथ अनुचितार्थ पुनि तजो निरर्थहि।
अवाचको अस्लील ग्राम्य संदिग्ध न कीजै।
अप्रतीत नेयार्थ क्लिष्ट को नाम न लीजै।
अविमृष्टविधेय विरुद्धमति, छँदसदुष्ट एक सब्द कहि।
कहुँ सब्द समासहि के मिले, कहूँ एक द्वै अच्छरहि ॥२॥

श्रुतिकटु, यथा—(दोहा)

कानन को जो कटु लगै, दास सु श्रुतिकटु-सृष्टि।
त्रिया अलक चक्षुश्रवा, डसै परतहीं दृष्टि ॥३॥

अस्य तिलक

चक्षुश्रवा औ' दृष्टि सब्द ही दुष्ट हैं, दास सु श्रुतिकटु यह वाक्य दुष्ट है तीनि सकारन की एकत्रता तैं, त्रिया सब्द को रकार या दुष्ट है यामैं तीन्यौ भाँति को श्रुतिकटु कह्यो। ३ अ ॥

---

[१] सुमति०—सुमति जो होइ (भारत, वेंक०); सुमती जोइ (वेल०)।
[२] नेयार्थ—नेअर्थ (सर०); नेअर्थ (भारत, वेंक०, वेल०)। एक—ये (वही)।
[३] सु—जो (वेल०)।
[३अ] दृष्टि सब्द—दृष्टि ये सब्द (भारत, वेंक०)। दास....त्रिया—श्रुति सब्द सकार के समान ते दुष्ट भयो त्रिया (भारत); श्रुति सब्द सकारन के समास ते दुष्ट भयो त्रिया (वेंक०)। को-मैं को (भारत, वेंक०)। या—ही (वही)। यामैं—इहाँ (वही)।

भाषाहीन-लक्षण-(दोहा)

बदलि गए घटि बढ़ि गए, मत्त बरन बिन रीति।
भाषाहीननि में गनैं, जिन्हैं काव्य-परतीति ॥ ४ ॥

यथा

वा दिन बैसंदर चहूँ, बन मैं लगी अचान।
जीवत क्यौं ब्रज बाचतो जौ ना पीवत कान ॥ ५ ॥

अस्य तिलक

बैश्वानर बदलिकै बैसंदर कह्यो, चहूँ *दिसि* को चहूँ कह्यो *अचानक* को *अचान* कह्यो, लघु नकार की ठौर गुरु नकार बोल्यो *कान्ह* कौं *कान* कह्यो ये सब भाँति को भाषाहीन है। ५ अ ॥

अप्रयुक्त, यथा-(दोहा)

सब्द सत्य, न लियो कबिन्ह, अप्रयुक्त सो ठाउ।
करै न बैयर हरिहि भी, कँदरप के सर घाउ ॥ ६ ॥

अस्य तिलक

बैयर सखी, *भी* भय, कँदरप काम भाषा औ' संस्कृत करिकै सुद्ध है पै काहू कबि कह्यो नाहीं तातैं अप्रयुक्त है। ६ अ ॥

असमर्थ-लक्षण-(दोहा)

सब्द धर्‌यो जा अर्थ को, तापर तासु न सक्ति।
चित दौरै पर अर्थ कौं, सो असमर्थ अभक्ति ॥ ७ ॥

---

[४] बढ़ि गए-बढ़ि भए (भारत, वेंक०, वेल०)। परतीति-पर प्रीति (वही)।

[५] अचान-अयान (सर०)।

[५अ] बैसदर कह्यो-०भयो (भारत, वेंक०)। अचानक...कान कह्यो-× (वही)।

[६] न लियो०-नहि कबि कह्यो (भारत, वेंक०)।

[६अ] भय-हरेहूँ (सर०); यह (भारत, वेंक०)। काम-काम को ब्रज (वही)। करिकै-करिकै सब (वही)। कह्यो-लयो (वेंक०)।

[७] तासु-जासु (वेंक०)।

यथा

कान्ह-कृपा फल-भोग कौं, करि जान्यो सतिभाम ।
असुरसाखि सुरपुर कियो, समुरसाखि निज धाम ॥ ८ ॥

अस्य तिलक

सुरसाखि कल्पतरु को कह्यो अकार औ' सकार तें यह अर्थ धर्यो है जो बिन कल्पतरु वो समेत कल्पतरु । ८ अ ॥

निहतार्थ-लक्षणं-(दोहा)

द्वयर्थ सब्द में राखिये, अप्रसिद्ध ही चाहि ।
जानो जाइ प्रसिद्ध ही, निहितारथ सो आहि ॥ ९ ॥

यथा

रे रे सठ नीरद भयो, चपला त्रिधु चित लाइ ।
भव-मकरध्वज तरन कौं, नाहिंन और उपाइ ॥ १० ॥

अस्य तिलक

नीरद बिना दाँत, त्रिधु बिष्नु, चपला लक्ष्मी, मकरध्वज समुद्र को राख्यो बादर, चंद्रमा, बीजुरी, काम जान्यो जातु है । १० अ ॥

अनुचितार्थ-लक्षणं-(दोहा)

अनुचितार्थ कहिये जहाँ, उचित न सब्द अकाल ।
नाँगो ह्वै दह कूदिकै, गहि ल्यायो हरि ब्याल ॥ ११ ॥

---

[८] भाम-बाम (भारत, वेंक०, वेल०) ।

[८अ] को-X (भारत, वेंक०) । औ'-ते (भारत) ; ते औ (वेंक०) । सकार ते-X (भारत) । जो-कि (वही) ; X (वेंक०) । वो-को सुरलोक कियो (भारत, वेंक०) । कल्पतरु-कलपतरु अपनो घर कियो सत्यभामा ने जो कृष्ण की कृपा को फल है (वही) ।

[९] जाइ-और (सर०) ।

[१०] लाइ-लाउ (वेल०) । उपाइ-उपाउ (वही) ।

[१०अ] समुद्र-नाम समुद्र (भारत) । राख्यो-राख्यो पर (वही) । काम-कामदेव (भारत, वेंक०) ।

यथा

जिहिँ जावक अँखिया रँग्यो, दई नखच्छत गात।
रे पिय सठ क्यौँ हठ करै, वाही पै किन जात॥ १२॥

अस्य तिलक

नाँगी सब्द ही दुष्ट है, *पिय* के समास तैँ सठ सब्द दुष्ट भयो, रँगी चाहिये *रँग्यो* कह्यो, *दयो* चाहिये दई कह्यो या मात्रादुष्ट है। १२ अ॥

निरर्थक, यथा—(दोहा)

छंदहि पूरन कौँ परै, सब्द निरर्थक धीर।
अरी हनत दृग-तीर सौँ, तो हिय ईर न पीर॥ १३॥

अस्य तिलक

ईर सब्द निरर्थक है। १३ अ॥

अवाचक-लक्षणं—(दोहा)

उहै अवाचक, रीति तजि लेइ नाम ठहराइ।
कह्यो न काहू जानि यह, नहिँ मानैँ कविराइ॥ १४॥

यथा

प्रगट भयो लखि विषमहय, विष्णुधाम सानंदि।
सहसपान निद्रा तज्यो, खुलो पीतमुख वंदि॥ १५॥

अस्य तिलक

सूरज कौँ सप्तहय कहत हैँ, कमल कौँ सहस्रपत्र कहत हैँ, *विषमहय* औ' *सहसपान* कह्यो आधे आधे सब्द दुष्ट हैँ। *पीतमुख* भौँर कौँ, *विष्णुधाम* आकास को जद्यपि संभवतु है पै काहू नाहीँ कह्यो। *नीँद तजिबो* फूलिबे कौँ, *सानंदिबो* आनदित ह्वैबे कौँ ये सब अवाचक हैँ। १५ अ॥

---

[१२] रँग्यो–रँगे (भारत, वेंक०, वेल०)। पिय०–सठ तू (सर०)।

[१२अ] रँग्यो–रँगे (भारत, वेंक०)। या०–इहाँ (वही)।

[१३] तो०–तोहिँ परै रन ईर (भारत, वेल०), तोहिँ परै रन पीर (वेंक०)।

[१४] उहै–नु है (सर०); वहै (भारत, वेंक०, वेल०)।

[१५] पान–पानि (सर०)। पीत–पीर (वेंक०)।

[१५अ] आधे आधे–आधे (भारत)। ह्वैबे०–ह्वैगो (भारत, वेंक०)। सब–सब्द (वही)।

अश्लील, यथा—(दोहा)

पदऽस्लील पैये जहाँ, घृना असुभ लज्जान।
जीमूतनि दिन पित्रिगृह, तिय पग यह गुदरान ॥ १६ ॥

अस्य तिलक

जीमूत बादर कों कह्यो *मूत* सब्द सों घृना है, *पित्रिगृह* पितरलोकहूँ कों कहिये तातें अश्लील असुभ है, *गुद* औ' *रान* मार्ग जंघाहू कों कहिये तातें लज्जा है—तीन्यौ अस्लील आए। १६ अ ॥

ग्राम्य-लक्षणं—(दोहा)

केवल लोक-प्रसिद्ध कों, ग्राम्य कहैं कविराइ।
क्या झल्लै टुक गल्ल सुनि, भल्लर भल्लर भाइ ॥ १७ ॥

अस्य तिलक

क्या सब्द *झल्ल* सब्द *भल्ल* सब्द *गल्ल* सब्द *टुक* शब्द *भाइ* सब्द ये सब्द लहुलोक ही में हैं, काव्य में नहीं प्रसिद्ध हैं। १७ अ ॥

संदग्धि-वर्णनं—(दोहा)

नाम धर्‌यो संदिग्ध पद, सब्द सँदेहिल जासु।
वंद्या तेरी लक्ष्मी, करै वंदना तासु ॥ १८ ॥

अस्य तिलक

वंद्या वंदी बानीहूँ सों कहिये ताकों वंदना कहा उचित है, वंदनीय कों कह्यो होइ तौ वंदना उचित है। १८ अ ॥

अप्रतीत-वर्णनं—(दोहा)

एकहि ठौर जो कहुँ सुन्यो, अप्रतीत-सो गाउ।
रे सठ कारे चोर के चरनन सों चित लाउ ॥ १९ ॥

---

[१६] पैये—कहिये (भारत, वेंक०, वेल०)। जहाँ—तहाँ (भारत, वेंक०)। लज्जान—लज्यान (सर०)। पग—पृग (वही)।
[१६अ] पितर—पित्र (सर०), पितृ (भारत, वेंक)। कहिये—कह्यो (वही)। अस्लील—× (वही)। तीन्यौ०—तीनो स्लील (वही)।
[१७अ] लहु—यहु (भारत)। नहीं प्रसिद्ध हैं—प्रसिद्ध नहीं (वही)।
[१८] सँदेहिल—सँदेहल (सर०)।
[१८अ] बानी—बान (सर०)। सों—को (भारत, वेंक०)।
[१९] जो कहुँ—जु कहि (भारत, वेंक०, वेल०)।

अस्य तिलक

कारे चोर श्रीकृष्न कौँ कालिदास ही की काव्य मो सुन्यो है, अनत नाहीँ सोइ सिंगारही मैं । १६ अ ॥

नेयार्थ-वर्णनं—(दोहा)

नेयारथ लच्यार्थ जहँ, ज्यौँ त्यौँ लीजै लेखि ।
चंद्र चारि कौड़ी लहै, तव आनन-छवि देखि ॥ २० ॥

अस्य तिलक

अर्थात् तेरे मुख को बराबरी नहीँ करि सकतो । २० अ ॥

समास तेँ, यथा—(दोहा)

है दुपंचस्यंदन-सपथ, सौ-हजार-मन तोहि ।
बल आपन देखराउ जौ, मुनि करि जानसि मोहि ॥ २१ ॥

अस्य तिलक

दुपचस्यदन दसरथ कौँ कह्यो सिगरो सब्द फेरयो, *सौ-हजार-मन* लछमन कौँ कह्यो आधो फेरयो । २१ अ ॥

पुनः, यथा—(दोहा)

तब लगि रहौ जगंभरा, राहु निविड़ तम छाइ ।
जौ लौँ पटवैदूर्य नहिँ, हाथ वगारत आइ ॥ २२ ॥

अस्य तिलक

जगंभरा कहैं विश्वंभरा पृथ्वी, *राहु* को नाम कह्यो *तम* अँध्यारहू कौँ कहिये, *पटवैदूर्य* अंबरमनि के अर्थ सूर्य, *हाथ* कर एकै है कर किरिनि कौँ कहिये । २२ अ ॥

[१६अ] मो—मैं (भारत, वेंक०) । ही—हू (सर०) ।
[२०] कौडी—कौड़ा (सर०) ।
[२०अ] करि—कै (भारत, वेंक०) ।
[२१] पंच—पज (सर०) । सौ—सै (भारत, वेंक० वेल०) । आपन०—आपनो देखाउ (वही) । जानसि—जानै (वही) ।
[२१अ] पच—पंच (सर०) । सिगरो सब्द फेरयो—× (सर०) ।
[२२] लगि—लौँ (भारत, वेंक०, वेल०) । जौ—जब (वही) ।
[२२अ] सूर्य—× (भारत, वेंक०) । एकै—एक (वही) ।

क्लिष्ट-लक्षणं–(दोहा)

सीढ़ी सीढ़ी अर्थगति, क्लिष्ट कहावै ऐन।
खगपतिपतितियपितुवधू-जल समान तुव बैन ॥ २३ ॥

अस्य तिलक

गंगाजल समान बैन कह्यो। २३ अ ॥

यथा वा–(दोहा)

व रु ना हाथ क ती च लै, स पा ल लीन्हे साथ।
आदि स अंत य मध्य हा, होहिं बिहारी नाथ ॥ २४ ॥

अस्य तिलक

ब्रह्मा रुद्र नारायण कमल त्रिसूल चक्र लिये सरस्वती पार्वती लक्ष्मी साथ बिहारी सहाय होहिं। २४ अ ॥

अविमृष्टविधेय, यथा–(दोहा)

है अविमृष्टविधेय पद छाड़ै प्रगट विधान।
क्यों मुख-हरि लखि चख-मृगी, रहिहै मन मैं मान ॥ २५ ॥

अस्य तिलक

हरिमुख *मृगचखी* विधेय है। २५ अ ॥

पुनः, यथा (दोहा)

नाथ प्रान कौं देखतै, जौ असकी बस ठानि।
धृग धृग सखि बेकाज की, वृथा बड़ी अँखियानि ॥ २६ ॥

प्रसिद्धविधेय

प्राननाथ कौं देखतै, जौ न सकी बस ठानि।
तौ सखि धिग बिन काज की, बड़ी बड़ी अँखियानि ॥ २७ ॥

---

[२४] स पा ल–स प ला (सर०) ;
[२४अ] सहाय०–सहाइ होइ (सर०)।
[२५] छाड़ै–छोड़ै (भारत, वेंक०, वेल०)।
[२५अ] मृग–मृगी (भारत, वेंक०, वेल०) । चखी – X (वही)।
[२६] असकी–रसकी (सर०) । बडी–बड़ी (भारत, वेंक०)।
[२७] 'सर०' में नहीं है।

विरुद्धमतिकृत, यथा

सो विरुद्धमतिकृत सुने लगै विरुद्ध विसेषि।
भाल अंबिकारमन के बाल-सुधाकर देखि ॥ २८ ॥

पुनः, यथा

काम गरीबनि को करैं, जे अकाज के मित्र।
जो माँगिय सो पाइये, ते धनि पुरुष बिचित्र ॥ २९ ॥

अस्य तिलक

अंबिका माता कों कहिये, धाकर नीच ब्राह्मन कों कहिये तातें विरुद्धमतिकृत भयो। दूसरे दोहा मो जो जो बात स्तुति की कह्यो है सबमें निंदा प्रगट ही है। २९ अ ॥

इति शब्ददोष

अथ वाक्य-दोष—(छप्पय)

प्रतिकूलाच्छर जानि मानि हतवृत्त विसन्धनि।
न्यूनाधिक-पद कथितसव्द पुनि पतितप्रकर्पनि।
तजि समाप्तपुनरात्त चरनअंतरगतपद गहि।
पुनि अभवन्मतजोग जानि अकथितकथनीयहि।
पदअस्थानस्थ सँकीरनो, गर्भित अमतपरारथहि।
पुनि प्रक्रमभग प्रसिद्धहत, छ दस वाक्य-दूपन तजहि ॥३०॥

प्रतिकूलाच्छर, यथा—(दोहा)

अच्छर नहिं रसजोग्य सो प्रतिकूलाच्छर ठट्टि।
पिय तिय लुट्टत हैं सुरस ठट्ट लपट्टि लपट्टि ॥३१॥

अस्य तिलक

ऐसे अच्छर रुद्ररस में चाहिये सो सिंगार में धस्यो। ३१ अ ॥

---

[२८] विसेषि-विसेप (भारत, वेंक०, वेल०)। देखि-देख (वही)।
[२९] को-के (भारत, वेंक०, वेल०)। जै-जे (वही)।
[२९अ] कहिये०-कहि सु धाकर (भारत, वेंक०)। नीच-नीचे (वही)।
[३०] छ दस०-छद सवाक्य (भारत, वेंक०, वेल०)।
[३१] रस०-रद जोग सों (भारत, वेंक० वेल)। ठट्ट-ठट्टि (वही)।
[३१अ] सो- × (भारत, वेंक०)।

हतवृत्त, यथा-(दोहा)

ताहि कहत हतवृत्त जहँ, छंदोभंग सु वर्न।
लाल कमल जीत्यो सु वृप भानुलली के चर्न ॥३२॥
यहौ कहत हतवृत्त जहँ, नहीं सुमिल पदरीति।
दृगनि खज जंघनि कदलि, रदनि मुक्त लिय जीति ॥३३॥

अस्य तिलक

दृग दंत कहि लेतो तब जंघ कहतो। ३३ अ ॥

विसंधि, यथा-(दोहा)

सो विसंधि निज रुचि धरै, संधि बिगारि सँवारि।
मुरअरि जस उज्जल जनै, तेरी स्याम तर्वारि ॥३४॥

अस्य तिलक

मुरारि तरवारि चाहिये। ३४ अ ॥

पुनः, यथा-(दोहा)

यही विसंधि दु सब्द के बीच कुपद परि जाइ।
प्रीतमजू तिय लीजिये, भली भाँति उर लाइ ॥३५॥

अस्य तिलक

जूतिय सब्द अस्लील परि जातु है। ३५ अ ॥

न्यूनपद, यथा-(दोहा)

सब्द रहै कछु कहन कौं, वहै न्यूनपद मूल।
राज विहारी सङ्ग तैं, प्रगट भयो जस-फूल ॥३६॥

---

[३२] सु-वहै (सर०)।
[३३] दृगनि०-दृग खंजनि (भारत); दृगन खजनि (वेंक०); दृग खंजन (वेल०)।
[३३अ] दृग-दृग औ (भारत, वेंक०)।
[३४] धरै-धरत (सर०)।
[३४अ] मुरारि-मुरारि औ (भारत, वेंक०)। तरवारि-तरवारि (सर०)।
[३५] यहौ०-पुनि विसंधि है (वेल०)।
[३५अ] अस्लील-स्लील (भारत, वेंक०)। परि जातु-होतु (वही)।
[३६] विहारी-विहारे (भारत, वेल०)।

अस्य तिलक

खड्ग-लता तें जस-फूल चाहिये। ३६ अ ॥

अधिकपद, यथा–(दोहा)

सु है अधिकपद जहँ परै, अधिक सब्द बिनु काज।
डसै तिहारे सत्रु को, खड्गलता-अहिराज ॥३७॥

अस्य तिलक

इहाँ *लता* सब्द अधिक है। ३७ अ ॥

पतत्प्रकर्ष-लक्षणं–(दोहा)

सो है पततप्रकर्ष जहँ, लई रीति निबहै न।
कान्ह कृष्न केसव कृपा-सागर राजिवनैन ॥३८॥

अस्य तिलक

चारि नाउ कंकारादि कह्यो, आगे न निबह्यो। ३८ अ ॥

कथितशब्द, यथा–(दोहा)

कह्यो फेरि कहै कथितपद, अरु पुनरुक्ति कहीय।
जो तिय मो मन लै गई, कहाँ गई वह तीय ॥३९॥

अस्य तिलक

तिय तिय द्वै बार आयो। ३९ अ ॥

समाप्तपुनरात्त-लक्षणं–(दोहा)

करि समाप्त बातहि कहै, फिरि आगे कछु बात।
सो समाप्तपुनरात्त है दूषन मति-अवदात ॥४०॥

यथा

डाभ बराए पग धरौ, ओढ़ौ पट अति घाम।
सियहि सिखायो, निरखतीं दृग जल भरि मगबाम ॥४१॥

अस्य तिलक

निरखिकै सिखावतिं चाहिये। ४१ अ ॥

---

[३७] सु है–सोइ (बेल०)।

[३९] कहै–कह (सर०)। अरु–औ (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४०] करि–कहि (भारत, वेंक०)।

[४१] बराए–बचाएँ (भारत, वेंक०)। सिखायो–सिखै यों (भारत, वेंक०)। निरखतीं–निरखतै (बेल०)।

चरणांतर्गतपद-वर्णनं—(दोहा)

चरणांतर्गत एक पद, द्वै चरनन के मॉंझ।
गैयन लीन्हे आजु कान्हहि मैं देख्यो सॉंझ ॥४२॥

अस्य तिलक

कान्ह सब्द द्वै चरन के मॉंझ पर्‌यो। ४२ अ ॥

अभवन्मतयोग-लक्षणं—(दोहा)

मुख्यहि मुख्य जु गनत नहिं, सो अभवन्मतजोग।
प्रान प्रानपति बिनु रह्यो, अब लौं धृग ब्रजलोग ॥४३॥

अस्य तिलक

प्रान ही कौं *धृग* चाहिये। ४३ अ ॥

पुनः, यथा—(दोहा)

बसन जोन्ह मुकुता उडुग, तिय-निसि के मुख चंद।
झिल्लीगन मंजीररव, उरज सरोरुह बंद ॥४४॥

अस्य तिलक

इहॉं *तियनिसि* करिकै वर्नन है सो मुख्य करिकै समस्या में चाहिये। ४४ अ ॥

अकथितकथनीय-लक्षणं—(दोहा)

नहिं अवस्य कहिबो कहै सो अकथितकथनीय।
पीतमु पाय लग्यो, नहीं मान छोड़ती तीय ॥४५॥

अस्य तिलक

पाय लगेहू चाहिये सो न कह्यो। ४५ अ ॥

---

[४२] लीन्हे—कीन्हे (सर०)। कान्हहि मैं—मैं कान्हहि (भारत, वेंक०); मैं कान्हे (वेल०)।

[४३] जु—जो (भारत, वेंक० वेल०)। नहिं—नहि (वही)।

[४४] 'सर०' में छूट गया है।

[४४अ] इहॉं—यहॉं (भारत, वेंक०)। वर्नन—वर्नतु (वेंक०)।

[४५अ] पाय—पॉंइ (भारत, वेंक०)। लगेहू—लागेहू (वेंक०)। न—नहीं (भारत), नाहीं (वेंक०)।

पुनः, यथा—(दोहा)

सिर पर सोहै पीतपट, चंदन को रँग भाल ।
पान-लीक अधरन लगी, लई नई छवि लाल ॥४६॥

अस्य तिलक

नई छवि कह्यो तौ यह कहिबो अवस्य है—नीलपट, जावक को रँग, स्यामलीक । ४६ अ ॥

अस्थानस्थपद, यथा—(दोहा)

सो है अस्थानस्थपद, जहँ चहियत तहँ नाहिं ।
हैं वै कुटिल गड़ीं अजौं, अलकैं मो मन माहिं ॥४७॥

अस्य तिलक

कुटिल पद अलक के ढिग चाहिये—
अजौं कुटिल अलकैं गड़ी हैं वै मो मन माहिं । ४७ अ ॥

संकीर्णपद, यथा—(दोहा)

दूरि दूरि ज्यौं त्यौं मिलै, संकीरनपद जान ।
तजि पीतमु पायनि पस्यो, अजहूँ लखि तिय मान ॥४८॥

अस्य तिलक

पीतमु पायनि पस्यो लखिकै मान तजि—यौं अर्थ बनत है । पै ऐसो चाहिये—लखि पीतमु पायनि पस्यौ, अजहूँ तजि तिय मान । ४८ अ ॥

गर्भितपद, यथा—(दोहा)

और वाक्य दै बीच जौ वाक्य रचै कवि कोइ ।
गर्भित दूपन कहत हैं, ताहि सयाने लोइ ॥४९॥

---

[४६] सिर तन (भारत) ।

[४६अ] तौ–है तौ (भारत, वेंक०) । यह–यौं (वही) । है–है कि (वही) । रँग–रँग और (वही) ।

[४७] अस्थान–स्थान (सर०, वेंक०) । जहँ–जहाँ (सर०) । चहियत–चाहियत (सर०) , चाहिये (भारत, वेंक०, बेल०) । वै–यौं (वही) ।

[४७अ] अजौं...माहिं–× (भारत, वेंक०) ।

[४८अ] पै–× (भारत, वेंक०) । लखि–यथा लखि (वही) ।

[४९] जौ–को (भारत, वेंक०) ।

यथा

साधु संग औ' हरिभजन, विषतरु यह संसारु ।
सकल भाँति विप सौं भखो, द्वै अंमृतफल चारु ॥५०॥

अस्य तिलक

यौं चाहिये—साधुसंग औ' हरिभजन, द्वै अंमृतफल चारु । सकल भाँति विप सौं भखो, विषतरु यह संसारु । ५० अ ॥

अमतपरार्थ, यथा—(दोहा)

औरै रस मैं राखिये, औरै रस की बात ।
अमतपरारथ कहत हैं, लखि कविमत को घात ॥५१॥
राम-काम-सायक लगे, विकल भई अकुलाइ ।
क्यौं न सदन परपुरुष के, तुरत तारका जाइ ॥५२॥

अस्य तिलक

ऐसो रूपक सिंगार रस मैं चाहिये । ५२ अ ॥

प्रक्रमभंग, यथा—(दोहा)

सो है प्रकरमभंग जहँ, विधिसमेत नहिं बात ।
जहाँ रैनि जागे सकल, ताही पै किन जात ॥५३॥

अस्य तिलक

जापै निसि जागे सकल—यौं चाहिये । ५३ अ ॥

पुनः—(दोहा)

जथासंख्य जहँ नहिं मिलै, सोऊ प्रकरमभंग ।
रमा उमा बानी सदा, विधि हरि हर के संग ॥५४॥

अस्य तिलक

हरि हर विधि चाहिये । ५४ अ ॥

---

[५०] विप-दुख (भारत, वेल०) । सौं-स (मर०) । द्वै०—होहि अमृत (वही) ।
[५०अ] चाहिये—चाहिये यथा दोहा (भारत); चाहिये यथा (वैंक०) । द्वै०—है दि अमृत (स०) । विप-दुख (भारत, वेल०) । 'भारत, वैंक०, वेल०' मैं प्रथम दल दूसरा है ।
[५१] राखिये—चाहिये (मर०) ।
[५२अ] चाहिये—चाहिये रामायन सानरम है वहाँ न चाहिये (भारत, वैंक०) ।
[५४अ] विधि—विधि के संग (भारत) ।

पुनः–(दोहा)

सोऊ अकरमभंग जहँ, नहीँ एक सम बैन।
तूँ हरि की अँखियाँ बसी, कान्ह बसे तुव नैन ॥५५॥

अस्य तिलक

कान्ह-नैन मैं तूँ बसी–यौँ चाहिये। ५५ अ ॥

प्रसिद्धहत, यथा–(दोहा)

परसिधहत जु प्रसिद्ध मत, तजै और फल लेखि।
कूजि उठे गोकरभ सब, जसुमति-सावक देखि ॥५६॥

अस्य तिलक

कूजिबो पच्छिन को प्रसिद्ध है, करभ हाथी ही के बचा कौँ, सावक मृगादिक के बच्चे कौँ प्रसिद्ध है, और ही और थल कह्यो तातैँ प्रसिद्धहत भयो। ५६ अ ॥

इति वाक्यदोष

अथ अर्थदोष-कथनं–(छप्पय)

अपुष्टार्थ कष्टार्थ व्याहतो पुनरुक्तो जित।
दुःक्रम ग्राम्य सँदिग्घ जु निरहेतो अनवीकृत।
नियम अनियम प्रवृत्ति विसेप समान्य प्रबृति कहि।
साकांक्षा पद-अजुत सविधि अनुवाद अजुक्तहि।
जु विरुद्धप्रसिद्ध प्रकासितनि सहचर भिन्नोऽस्लील धुनि।
है त्यक्तपुनःस्वीकृत सहित अर्थदोष बाईस पुनि ॥५७॥

अपुष्टार्थ, यथा–(दोहा)

प्रौढ़ उक्ति जहँ व्याज है, अपुष्टार्थ सो वंक।
ज्यों अति बड़े गगन मैं, उज्जल चारु मयक ॥५८॥

---

[५६] परसिध–प्रसिद्ध (सर०) ; प्रसिघहत जु परसिद्ध मत (वेंक०) ; परिसिध हत परसिद्ध मत (बेल०)। और–एक (भारत, वेंक०, वेल०)।

[५६ अ] बचा कौँ–बचा कौँ कहिये (भारत, वेंक०)। प्रसिद्ध है–कहिये (वही)। और ही . भयो–सो नहीँ मान्यो सब एक सौँ लेखिकै और ही और कह्यो (भारत, वेंक०)।

[५७] जु निरहेतो–जु नीरहतो (भारत, वेंक०) ; अपर निर्हेतु (वेल०)।

[५८] व्याज–अर्थ (भारत, वेंक०, वेल०)। ज्यों–ज्यो (वेंक०)। बड़े–बडो (वही)।

अस्य तिलक

गगन अति बड़ो है ही, चंद्रमा उज्जल चारु है ही—यह कहिबो व्यर्थ है। *गगन में मयंक उड्यो*—एतनो कहिबो पुष्टार्थ है, और अपुष्ट है। ५८ अ ॥

कष्टार्थ, यथा—(दोहा)

अर्थ भिन्न अच्छरनि तेँ, कष्टारथ सु विचारि।
तो पर वारौँ चारि मृग, चारि विहग फल चारि ॥५९॥

अस्य तिलक

नैन पर मृग, घूंघट पर हय, गति पर गज, कटि पर सिंह योँ चारि मृग। बैन पर कोकिल, ग्रीवा पर कपोत, केस पर मोर, नासिका पर सुक योँ चारि विहंग। दंत पर दाखौ, कुच पर श्रीफल, अधर पर बिंब कपोल पर मधूक योँ चारयो फल। ५९ अ ॥

व्याहत दोष, यथा—(दोहा)

सत असतहु एकै कहै, व्याहत सुधि बिसराइ।
चंदमुखी के बदन सम हिमकर कह्यो न जाइ ॥६०॥

अस्य तिलक

चंदमुखी कहतु हैं, चंद सम बदन ही कहतो। ६० अ ॥

पुनरुक्त, यथा—(दोहा)

जहै अर्थ पुनि पुनि मिलै, सब्द और पुनरुक्ति।
मृदु बानी मीठी लगै, बात कबिन की उक्ति ॥६१॥

अस्य तिलक

बानी, बात, उक्ति को अर्थ एक ही है। ६१ अ ॥

[५८अ] यह—याहू (भारत, वेंक०)। एतनो—इतनो ही (वही)।

[५९अ] मृग मृग वारयो (भारत, वेंक०)। कोकिल—कोकिला (वही)। मोर—मौर (सर०)। विहग—विहंग वारयो (भारत, वेंक०)। दारयो—दाडिम (भारत)। मधूक-मधुकर (सर०)। चारयो—फल चारयो वारयो (भारत, वेंक०)।

[६०अ] ही—नहीं, भारत, वेंक०)।

[६१अ] बात—बात औ (भारत, वेंक०)।

दुष्क्रम, यथा–(दोहा)

कम बिचार क्रम को कियो, दुःक्रम है यहि काल।
वर बाजी कै बारनै, दैहै रीझि दयाल ॥६२॥

अस्य तिलक

बारन ही कै बाजिही दैहै चाहिये। ६२ अ ॥

ग्राम्यार्थ, यथा–(दोहा)

चतुरन की सी बात नहिं, ग्राम्यारथ सो चेति।
अली पास पौढ़ी भले, मोहिं किन पौढ़न देति ॥६३॥

अस्य तिलक

पुरुष ह्वै कै इस्त्री को दॉजु करत है, तातैं ग्राम्यार्थ भयो। ६३ अ ॥

संदिग्ध, यथा–(दोहा)

संदिग्धार्थ जु अर्थ बहु, एक कहत संदेह।
केहि कारन कामिनि लिख्यो, सिवमूरति निज गेह ॥६४॥

अस्य तिलक

काम की डर औ'। ६४ अ ॥

निर्हेतु, यथा–(दोहा)

बात कहै बिन हेत की, सो निरहेतु बिचारि।
सुमन भख्यो मानो अली, मदन दियो सर डारि ॥६५॥

अस्य तिलक

काम कौन हेत सर डारि दियो सो नहीं कह्यो। ६५ अ ॥

अनवीकृत लच्छन–(दोहा)

जो न नए अर्थहि धरै, अनवीकृत सु विसेषि।
जग्नि लाटानुप्रास अरु आवृतिदीपक देखि ॥६६॥

---

[६२] कम–क्रम (सर्वत्र)।

[६३अ] इस्त्री–स्त्री (भारत, वेंक०)। तातैं–यह (वही)। भयो–है (वही)।

[६४अ] की–के (भारत); को (वेंक०)। डर औ–डर वो (सर०); डरयो (वेंक०)।

[६५अ] काम–काम ने (भारत)।

[६६] नए–नुये (भारत, वेंक०)।

यथा—(सवैया)

कौन अचंभो जौ पावक जारै तौ कौन अचंभो गरू गिरि भाई।
कौन अचंभो खराई पयोधि की कौन अचंभो गयंद-कराई।
कौन अचंभो सुधा-मधुराई औ' कौन अचंभो विषो करुआई।
कौन अचंभो वृषो वहै भार औ' कौन अचंभो भलेहि भलाई ॥६७॥

अस्य तिलक

नवीकृत यों चाहिये—
कौन अचंभो जौ पावक जारै गरू गिरि है तौ कहा अधिकाई।
सिंधुतरंग सदैव खराई नई न है सिंधुर-अंग कराई।
मीठो पियूष करू विष-रीतियै दासजू यामें न निंद बड़ाई।
भार चलाइहि आए धुरीन भलेनि के अंग सुभावै भलाई ॥६७अ॥

नियमपरिवृत्ति-अनियमपरिवृत्ति-लक्षण—(दोहा)

अनियम थल नेमहि गहै, नियम-ठौर जु अनेम।
नियम-अनियम-प्रवृत्ति है, दूषन दुओ अप्रेम ॥ ६८ ॥

नियमपरिवृत्ति, यथा

जाकी सुभदायक रुचिर, कर तें मनि गिरि जाइ।
क्यों पाए आभासमनि, होइ तासु चित चाइ ॥ ६९ ॥

अस्य तिलक

आभासमनि उपल के नग को कहत हैं पै इहाँ अनेम बात चाहिये, यथा—क्यों लहि छाया मात्र मनि, होइ तासु चित चाइ। ६९ अ ॥

अनियमपरिवृत्ति, यथा—(दोहा)

है कारी भैंकारियै, लेन चाहती जीय।
तनु तापनि वाढ़ित करै, जामिनि ही सम-तीय ॥७०॥

---

[६७] पयोधि०-पयोनिधि (भारत, वेंक) वृषो०-वहै वृष (भारत, वेल०); वृषै वहै (वेंक०)।

[६७अ] रीतियै-रीति पै भारत, वेंक०, वेल०)। चलाइहि०-चलावहिं आपुहि वैल (भारत, वेल०); चलाइहि आपु धरीन (वेंक०)। कै-को (वही)।

[६९अ] भार०' में नहीं है। अनेम-अनेक (भारत)।

[७०] है-म्ये (भारत, वेंक०, वेल०)।

अस्य तिलक

भैकारियै जामिनी ही यह नेम चाहिये, यों अनेम चाहिये—

है कारी भैकारिनी, लेन चाहती जीय।
तनु तापनि ताड़ित करै, जामिनि जम की तीय ।७० अ ॥

विशेषपरिवृत्ति-लक्षणं-(दोहा)

जहाँ ठौर सामान्य को, कहै विसेष अयान।
ताहि विसेषप्रवृत्ति गनि, दूषन गनै सुजान ॥७१॥

यथा

कहा सिंधु लोपत मनिन्ह, वीचिन्ह कीच चढ़ाइ।
सक्यो कवस्तुव-जोरं तूँ, हरि सौं हाथ ओड़ाइ ॥७२॥

अस्य तिलक

कवस्तुव विसेष न चाहिये, सामान्य ही चाहिये—

कहा मनिन्ह मूँदत जलधि, वीचिन्ह कीच मचाइ।
सक्यो कवस्तुव जोर तूँ, हरि सौं हाथ ओडाइ ।७२ अ ॥

सामान्यपरिवृत्ति, यथा–(दोहा)

जहाँ कहत सामान्य ही, थल विसेष को देखि।
सो सामान्यप्रवृत्ति है, दूषन दृढ़ अवरेखि ॥७३॥

यथा

रैनि स्याम रँग पूरि ससि चूरि कमल करि दूरि।
जहाँ वहाँ हौं पिय लखौं, ये भ्रमदायक भूरि ॥७४॥

अस्य तिलक

रैनि सामान्य है सितौ असितौ है इहाँ जोन्ह विसेषि चाहिये। ७४ अ ॥

[७०अ] यह नेम–प्रहरे मुन (भारत; वेंक०)। दोहा–यथा दोहा (भारत); यथा (वेंक०)।

[७२] कवस्तुव–कौस्तुभ (भारत, वेंक०, वेल०)। ओडाइ–वोडाइ (वही)।

[७४] पूरि–पूर (वेल०)। चूरि–चोर (वही)। दूरि–दौर (वही)। भ्रमदायक–भ्रमदासक (सर०, वेंक०)। भूरि–मूरि (सर०); भौर (वेल०)।

[७४अ] जोन्ह–जो न (भारत, वेंक०)।

साकांक्ष-लक्षणं–(दोहा)

आकांक्षा कछु सब्द की, जहाँ परत है जानि।
सो दूषन साकांक्ष है, सुमति कहैं उर आनि ॥७५॥

यथा

परम विरागी चित्त निज, पुनि देवन्ह को काम।
जननी-रुचि पुनि पितु-वचन, क्यौं तजिहैं वन राम ॥७६॥

अस्य तिलक

वन जाइवो क्यौं तजिहैं राम–यौं चाहिये, जाइवे सब्द की आकांक्षा है। ७६ अ ॥

अयुक्त-लक्षणं–(दोहा)

पद कै विधि अनुवाद कै, जहँ अजोग्य ह्वै जाइ।
तहँ अजुक्त दूषन कहैं, जे प्रवीन कविराइ ॥७७॥

पद-अयुक्त, यथा

मोहनछवि अँखियन बसी, हिये मधुर मुसुकानि।
गुनचरचा बतियान में, उन सम और न जानि ॥७८॥

अस्य तिलक

चौथे चरन अजुक्त है। यौं चाहिये–*स्रौननि मृदु बतलानि*। ७८ अ ॥

विधि-अयुक्त, यथा–(दोहा)

पवन-अहारी व्याल है, व्यालहि खात मयूर।
व्याधौ खात मयूर कौं, कौन सत्रु बिन कूर ॥७९॥

अस्य तिलक

अहारी न चाहिये, उहऊ *खात* सब्द चाहिये। ७९ अ ॥

अनुवाद-अयुक्त, यथा–(दोहा)

रे केसव-कर-आभरन, मोदकरन श्रीधाम।
कमल, वियोगी त्यौ-हरन, कहाँ प्रिया अभिराम ॥८०॥

[७६अ] वन...राम–क्यौं न जाँय वन राम (भारत, वेंक०, वेल०)।
[७८अ] चौथो–चौथे (भर०)। स्रौननि–और न (भारत, वेंक० वेल०)।
[७९] मयूर कौं–मयूरऊ (भर०)।
[८०] वियोगी–विरोगी (सर०)।

अस्य तिलक

वियोगी-ज्यौं-हरन इन बातनि के साथ कहिबो अजुक्त है। ८० अ ॥

प्रसिद्धविद्याविरुद्ध–(दोहा)

लोक बेद कबिरीति अरु, देस काल तैं भिन्न।
सो प्रसिद्धबिद्यानि के है बिरुद्ध मति खिन्न ॥८१॥

यथा–(सवैया)

कौल खुले कच गूँदती मूँदती चारु नखच्छत अंगद के तरु।
दोहद मैं रति के समभार बड़े बल कै धरती पग भू परु।
पंथ असोकनि कौंप लगावती है जस गावती सिंजित के भरु।
भावती भादौं की चाँदनी मैं जगी भावते संग चली अपने घरु ॥८२॥

अस्य तिलक

असोक को इस्त्री के पाँव छुए तैं फूलिबो कहिबो लोकरीति है, यह पल्लव लागे कहत है तातैं लोकबिरुद्ध है। दोहद मैं रति बर्जित है सो कह्यो तातैं वेदबिरुद्ध है। भादौं की चाँदनी बरनिबो कबिरीति-बिरुद्ध है। आतुर चली भोर न होन पायो, यह रसबिरुद्ध है। नखच्छत कुच मैं चाहिये भुजा मैं कह्यो, यह अंग-देसबिरुद्ध है। ८२ अ ॥

प्रकाशितविरुद्ध, यथा–(दोहा)

जो लच्छन कहिये परै तासु बिरुद्ध लखाइ।
वहै प्रकासित बात को है बिरुद्ध कबिराइ ॥८३॥

यथा

हँसनि तकनि बोलनि चलनि, सकल सकुच-मै जासु।
रोष न केहूँ कै सकै, सुकबि कहै सुकिया सु ॥८४॥

अस्य तिलक

यामैं परकीयाहू को अर्थ लगि जात है। ८४ अ ॥

---

[८१] के–को (सर०)।
[८२] मैं–के (सर०)। परु–धरु (भारत, वेंक०, वेल०)।
[८२अ] लागे–लाग्यो (भारत, वेंक०)।
[८४] कै–करि (सर०)।

सहचरभिन्न-वर्णन–(दोहा)

सो है सहचरभिन्न जहँ, सग कहत न विवेक।
निज पर पुत्रनि मानते, साधु काग-विधि एक ॥८५॥

अस्य तिलक

काग कोइल के पुत्र धोखे पालतु है, साधु की समता न चाहिये। ८५ अ ॥

पुनः, यथा–(दोहा)

निसि ससि सौं जल कमल सौं, मूढ़ बिसन सौं मित्त।
गज मद सौं नृप तेज सौं, सोभा पावत नित्त ॥८६॥

अस्य तिलक

मूढ़ बिसन सौं सगति सौं भिन्न है। ८६ अ ॥

अश्लीलार्थ, यथा–(दोहा)

कहिये अश्लीलार्थ जहँ, भौंडो भेद लखाइ।
उन्नतु है परछिद्र कौं क्यों न जाइ मुरुझाइ ॥८७॥

अस्य तिलक

व्यग्यार्थ में मुख्य ग जान्यो जातु है। ८७ अ ॥

त्यक्तपुनःस्वीकृत, यथा–(दोहा)

त्यक्तपुनःस्वीकृत कहैं, छोड़ि वात पुनि लेत।
मो सुधि बुधि हरि हरि लई, काम करौं डर हेत ॥८८॥

अस्य तिलक

सुधि बुधि हरि जाति तौ काम क्यों करि सकती। ८८ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये शब्दार्थ-
दूषणवर्णनं नाम त्रयोविंशमो-
ल्लास. ॥ २३ ॥

[८५अ] के–को (भारत, वेंक०)। की–× (वही)।
[८६] बिसन–व्यसन (भारत, वेंक०, वेल०)।
[८७अ] व्यंग्यार्थ–विज्ञानार्थ (सर०)। ग–गज (भारत, वेंक०, वेल०)।

२४

अथ दोषोद्धार-वर्णन—(दोहा)

कहुँ सब्दालंकार कहुँ छंद कहूँ तुक हेत।
कहुँ प्रकरनबस दोषहूँ, गनैं अदोष सचेत ॥१॥
कहूँ अदोषै होत, कहुँ दोष होत गुनखानि।
उदाहरन कछु कछु कहौं, सरल सुमति ढिग जानि ॥२॥

यथा

हरि स्रुति को कुंडल मुकुत-हार हिये को स्वच्छ।
आँखिन देख्यो सो रह्यौ, हिय मैं छाइ प्रतच्छ ॥३॥

अस्य तिलक

स्वच्छ सब्द स्रुतिकटु है, *प्रतच्छ* सब्द भाषाहीन है, *मुकुतहार* सब्द चरनांतरगत की ठौर है वाक्यदोष है औ' *स्रुति को कुंडल हिय को हार आँखिन को देखिबो* अर्थदोष में अपुष्टार्थ है कुंडल हार को देख्यो इतनो ही कहे अर्थ को बोधु है। तद्यपि तुकबस तैं स्रुतिकटु भाषाहीन औ' छंदबस तैं चरनांतरगतपद औ' लोकोक्तिबस तैं अपुष्टार्थ अदोष है। औ' कुंडल हार कान हृदय तैं भिन्नहूँ धर्यो रहतु है औ' दरसन में स्रवन चित्र स्वप्नौ गन्यो है। हार जद्यपि मोती ही के हार कौं कहत हैं तद्यपि भाषा-कविन्ह हार कौं साधारनै लिख्यो है यह कबिरीतिबस है। ३ अ ॥

---

[२] अदोषै–अदोषौ (भारत, वेंक०, वेल०)। होत कहुँ–दोष कहुँ (वेल०)। ढिग–दृढ़ (वही)।

[३] मुकुत–मुकुट (भारत, वेंक०, वेल०)। हिये–हियो (सर०)। आँखिन–आखिय (वही); अँखियन (भारत, वेंक०, वेल०)। प्रतच्छ–प्रत्यच्छ (भारत, वेंक०); प्रचच्छ (वेल०)।

[३अ] वाक्यदोष है–वाक्यदोष (भारत, वेंक०)। तुक०–तु कमल (वही); चित्र–चित (सर०)। साधारनै०–साधारन ही लिख्यो यह (भारत, वेंक०)।

पुनः, यथा-(कवित्त)

सिंह कटि मेषला ज्यौं *कुंभ* कुच *मिथुन* त्यौं,
मुखवास *अलि* गूँजैं भौं हैं *धनुलीक* है।
वृषभान-*कन्या* *मीननैनी* सुबरन अंगी,
नजरि-*तुला* मैं तोसौं रति सो *रतीक* है।
ह्वैहै बिलगात उर *करक* कटाच्छन सौं,
चाहियै *गलग्रह* तौ लोग सुघरी कहै।
कुंडल *मकर*वारे सौं लगी लगन अब,
बारहो लगन को बनाव बन्यो ठीक है ॥४॥

अस्य तिलक

ला निरर्थक, *मिथुन* सब्द द्वै कौं अप्रयुक्ति, *अलि* सब्द निहितारथ, *धनुलीक* सब्द अवाचक, *कन्या* सब्द सिंगार में अनुचितार्थ, *गलग्रह* मिलिबे कौं अप्रतीत, *कुंडल मकर* सब्द अविमृष्टविधेय, *अब बारहो* सब्द श्रुतिकटु द्वै बकार की संधि तें, औ' पहिले बिलगाइबे की बात कह्यो पीछे मिलवे की यह त्यक्तपुन स्वीकृत अर्थदोष है, *रति* कौं *रतीक* कह्यो राधा कौं नाउ न कह्यो यह साकांक्ष है—सो स्लेष मुद्रालंकार करिकै बारह लग्न को नाम आन्यो चाह्यो तातें सब अदुष्ट है। औ' जैसे मेंडु को मेंड़ला कहत हैं तैसे मेष कौं मेषला कह्यो तातें निरर्थकहू को निवारन है। ४ अ ॥

अश्लील क्वचित् अदोष क्वचित् गुण, यथा-(दोहा)

कहुँ अस्लील दोषै नहीं, जथा सुभग भगवंत।
कहूँ हास निंदादि तें ऽस्लील गुनैं गुन संत ॥५॥

---

[४] ज्यौं-ज्यौं (भारत, वेंक०) ; X (वेल०)। कुंभ०-कुच कुंभ (वही)। त्यौं-त्यौं ही (वही)। तोसौं-तोसे (वही)। सो-सौ (वही)। ह्वैहै-ह्वैकै (भारत, वेंक०), नेगौ (वेल०)। उर-अरि (वही)। करक०-जान कर (भारत, वेंक०)। चाहियै-ह्वै गए (वेल०)। तौ-त (सर०) ; X (भारत, वेंक०) ; तौं (वेल०)।

[४अ] ला मन्द-ला (भारत, वेंक०)। अब-औ (वही)। साकांक्ष-साकांक्षा (वही)। मेंडु-मेंडक (वही)। कहत-कहते (वही)। मेष कौं-X (वही)।

[५] अस्लील-स्लील (भारत, वेंक०, वेल०)। दोषै-दोषो (सर०) ; दूषन (भारत, वेंक०)। संत-सब (वेल०)।

पुनः

मीत न पैहै जान तूँ, यह खोजा-दरबार।
जो निसिदिन गुदरत रहै, ताही को पैठार ॥६॥

अस्य तिलक

यौं निंदादि मैं क्रीड़ाहास मैं अस्लील गुन है। ६ अ ॥

क्वचित् ग्राम्य गुण-(दोहा)

ग्रामीनोक्ति कहे कहूँ, ग्रामै गुन ह्वै जाइ।
अजौं तिया मुख की छिया, रही हिया पर छाइ ॥७॥

क्वचित् न्यूनपद गुण, यथा

नहीँ नहीँ सुनि नहि रह्यो, नेह-नहनि मैं नाह।
त्यौं त्यौं भा रति-मोद सौं, ज्यौं ज्यौं झारति बाँह ॥८॥

अस्य तिलक

यह समै सुरति को नहीँ है हम नहीँ मानती—सो नायिकावचन करिकै वल नहीँ, सो जान्यो जातु है, ऐसी ठौर ऐसो न्यून गुन है। ८ अ ॥

क्वचित् अधिकपद गुण-(दोहा)

खल वानी खल की कहा साधु जानते नाहिँ।
सब समझैं पै तेहि तहाँ, पतित करत सकुचाहिँ ॥ ९ ॥

अस्य तिलक

कहा जानते नाहिँ यामैं समुझिबे को अर्थ आइही बीत्यो, फेरि सब समझैं कह्यो तौ अति दिढ़ताई भई यह अधिकपद गुण है। ९ अ ॥

क्वचित् कथितपद गुण-(दोहा)

दीपक लाटा वीपसा, पुनरुक्ताप्रतिकास।
विधि भूपन मैं कथितपद, गुन करि लेख्यो दास ॥ १० ॥

[६ अ] यौं—जो (भारत, वेंक०)।
[७] अजौं—आज (वेल०)। मुख—मुख (वही)।
[८ अ] वल—बोल (भारत)।
[९] खल की—छल की (सर०)।
[९ अ] बोलो—बोल्यो (भारत, वेंक०)। दिढताई—दृढ़ता (वही)।
[१०] पुनरुक्ता०—पुनरुक्तिवदाभास (वेल०)। लेख्यो—लेख्यै (सर०); लेखो (भारत, वेंक०, वेल०)।

यथा

त्यौं दर्पन मैं पाइये, तरनि-तेज तैं आँच।
त्यौं पृथ्वीपति-तेज तैं, तरनि तपत यह साँच ॥ ११ ॥

अस्य तिलक

इहाँ तरनि तरनि द्वै वेर आयो है, सो गुण है। ११ अ ॥

गर्भितपद क्वचित् अदोष-(दोहा)

लाल अधर मैं कै सुधा, मधुर किये विनु पान।
कहा अधर मैं लेत हौ, धर मैं रहत न प्रान ॥ १२ ॥

अस्य तिलक

धर मैं रहत न प्रान यह वाक्य विनु पान के समीप चाहिये, ऐसी दूरान्वय भाषाकवि संसकृतकवि बहुत बनाइ आए हैं तातैं अदोष है। १२ अ ॥

प्रसिद्धविद्याविरुद्ध क्वचित् गुण, यथा-(दोहा)

जो प्रसिद्ध कविरीति मैं सो संवत गुन होइ।
लोकविरुद्ध विलोकिकैं, दूषन गनै न कोइ ॥ १३ ।
महा अँध्यारी रैनि मैं, कीर्ति विहारी गाइ।
अभिसारी पिय पै गई, उजियारी अधिकाइ ॥१४॥

अस्य तिलक

कीर्ति के गाइवे तें उज्यारी ह्वैवो लोकविरुद्ध है, सो कविरीति गुन है। १४ अ ॥

सहचरभिन्न क्वचित् गुण-(दोहा)

मोहन नो दृग पूतरी, वै छवि सिगरी प्रान।
सुधा चितौनि सुहावनी, नीचु बाँसुरी तान ॥ १५ ॥

अस्य तिलक

इहाँ सब मत मैं बाँसुरी-तान असत है, सो विसेपोक्ति अलकर भयो गुन है। १५ अ ॥

---

[१२] कै-कौ (भारत, वेंक०, वेल०)। हौ-है (वही)।
[१५अ] सब मैं-समय (भारत, वेंक०)। विसेपोक्ति-विनोक्ति (सर०)।
] दृग्गा-नगता (भारत, वेंक०, वेल०)।

(दोहा)

इहि विधि औरौ जानिये, जहाँ सुमति चित लेत ।
दोष होत निरदोष तहँ, अरु समता गुन हेत ॥ १६ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवशावतसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये अथे अदोष-
वर्णनं नाम चतुर्विंशतिमोल्लासः ॥ २४ ॥

२५

अथ रसदोष-वर्णनं—(दोहा)

रस अरु चर थिर भाव की, सब्दवाच्यता होइ ।
ताहि कहत रसदोष हैं, कहूँ अदोषिल सोइ ॥ १ ॥
अंचल ऐंचि जु सिर धरत, चचलनैनी चारु ।
कुचकोरनि हिय कोरिकै, भरयो सु रस सिंगार ॥ २ ॥

अस्य तिलक

इहाँ *सिंगार रस* ही कहत हैं सिंगार को नाम कहिवो अनुचित है, वाके अनुभाव तें कह्यो चाहिये, यथा—कुचकोरनि हिय कोरिकै, दुख भरि गई अपार । २ अ ॥

व्यभिचारीभाव की शब्दवाच्यता—(सवैया)

आनन-ओर सलज्ज गयंद की खालन पै करुनानि मिलाई ।
दास भुजंगनि त्रास धरे अरु गंग तरंग धरे इरषाई ।
भूति-भरयो सित अंग सदीनता चंद्रप्रभा सवितर्क महाई ।
व्याह-समै हर-ओर चहैं चर भाव भईं अँखियाँ गिरिजाई ॥ ३ ॥

---

[३] आनन-आनँद (सर्वत्र) । ओर०-औ रस लज्जा (भारत, वेंक०, वेल०) । हर ओर-हर और (वेल०) । भईं—गईं (वेंक०) ।

अस्य तिलक

इहाँ लज्जादिक व्यभिचारी भावनि को वाच्य ही में कह्यो, इनको अनुभाव ही वाच्य में आनिकै व्यंजित करिबो उत्तम काव्य है, यथा-

आनन-सोभ पै ह्वैकै निर्चाही गयंद की खाल पै ह्वै जलसाई।
दास भुजंगनि संजुत कंप औ' गंग-तरंग समेत ललाई।
भूति-भर्‍यो तनु लै मलिनाई औ चंद्रप्रभा अनिमेष महाई।
ब्याह-समै हर-ओर निहारै नई नई डीठिन सौं गिरिजाई॥ ३ अ॥

स्थायीभाव की शब्दवाच्यता—(दोहा)

अकनि अकनि रन परसपर, असिप्रहार झनकार।
महा महा जोधनि हिये, बढ़त उछाह अपार॥ ४॥

अस्य तिलक

इहाँ उछाह वाच्य में कहे तैं अवर काव्य होत है, *संगल बढ़ति अपार* कहे *अपार उछाह* व्यंगि में पाइयतु है। ४ अ॥

शब्दवाच्यता तें अदोष-वर्णनं-(दोहा)

जात जगायो है न अलि, आँगन आयो भानु।
रससोये सोयो दोऊ - प्रेम - समोयो प्रानु॥ ५॥

अस्य तिलक

इहाँ नाइका को संजुक्त भाव व्यभिचारी वरनतु है सो यों कहे तैं सब्दवाच्यता होति है वहाँ सोइबे को पुनि और भाँति कहिबो नहीं भलो होत। औ' रसहू की, प्रेमहू की सब्दवाच्यता है सो अत्यंत रसिकता अत्यंत प्रतीति को हेतु है। औ' अपरांग ह्वै व्यंगि में सखिन की दुहूँन पर प्रीति थाई भाव है, तातें गुन है। ५ अ॥

अन्य रसदोष-वर्णनं-(दोहा)

जहँ विभाव अनुभाव की कष्टकल्पना-व्यक्ति।
रसदूषन ताहू कहैं, जिन्हैं काव्य की सक्ति॥ ६॥

[३अ] ललाई-जलाई (सर्वत्र)।

[४अ] अवर-और (भारत, वेंक०)। कहे अपार-कहे (वही)। व्यंगि-पंगि (वही)।

[५अ] संजुक्त भाव-स्वभाव भारत, (वेंक०)। कहे तैं-कहते (वही)। अत्यंत रसिकता-× (सर०)। सखिन-सखी (भारत, वेंक०,)। की-को (सर्वत्र)। पर-को पर (भारत, वेंक०)।

विभाव की कष्टकल्पना-व्यक्ति

उठति गिरति फिरि फिरि उठति, उठि उठि गिरि गिरि जाति।
कहा करौं कासौं कहौं, क्यौं जीवै इहि राति ॥ ७ ॥

अस्य तिलक

इहाँ नाइका की बिरहदसा कहत हैं सो औरी व्याधि तें औरहू पर लागत है, तातें कष्टकल्पना व्यक्ति है। ७ अ ॥

अस्य अदोषता, यथा—(दोहा)

कै चलि आगि परोस की, दूरि करौ घनस्याम।
कै हम कौं कहि दीजियै, बसैं और ही ग्राम ॥ ८ ॥

अस्य तिलक

इहाँ और ही भाँति की आगि जानी जाति है पै वह छिपाइकै कहति है तातें नायकनाइकहि की बिरहागि जानी जाति है, यह गुन है दोष नहीं। ८ अ ॥

अनुभाव की कष्टकल्पना-व्यक्ति (सवैया)

चैत की चाँदनी छीरनि सौं दिगमंडल मानो पखारन लागी।
तापर सीरी बयारि कपूर की धूरि सी लै लै बगारन लागी।
भौंरन की अवली करि गान पियूष सो कान में ढारन लागी।
भावती भावते-ओर चितै सहजै ही में भूमि निहारन लागी ॥ ९ ॥

अस्य तिलक

इहाँ कछु प्रेम को अनुभाव कहिबो उचित है सहजै ही में भूमि निहारिबो कहे प्रेम नहीं जान्यो जातु। यौं चाहिये, जथा—आँखिन कै ललचौहीं लजौहीं प्रिया पिय-ओर निहारन लागी। ९ अ ॥

अन्य रसदोष-लच्छन—(दोहा)

भाव रसनि प्रतिकूलता, पुनि पुनि दीपति जुक्ति।
येऊ हैं रसदोष जहँ, असमै उक्ति न उक्ति ॥१०॥

[७अ] औरी—और (भारत, वेंक०)।
[८] कौं—सौं (भारत, वेंक०)।
[८अ] इहाँ—यह (भारत, वेंक०)। नाइकहि—नायिका ही (वही)।
[९] लैलै—लैकै (सर०)।
[१०] जुक्ति—उक्ति (भारत, वेल०)। न उक्ति—अनुक्ति (वही)।

अरी खेलि हँसि बोलि चलि भुज पीतम-गल डारि।
आयु जात छिन छिन घटी, छीलरि कैसो वारि ॥११॥

अस्य तिलक

आयु घटिबे को ज्ञानु कहिबो सांतरस को विभाव है, सिंगार को नहीं। ११ अ।

पुनः—(दोहा)

बैठी गुरजन बीच सुनि बालम-बंसी चारु।
सकल छोड़ि बन जाउँ, यह तिय हिय करति बिचारु ॥१२॥

अस्य तिलक

नाइका मैं उत्कंठा बर्नतु हैं सकल छोड़ि बन जाइबो—यह निरबेद थाईभाव सांतरस को हैं सो विरुद्धता दोष है, यौं चाहिये—कौने मिस बन जाउँ यह, तिय हिय करति बिचारु। १२ अ॥

अस्य अदोषता गुण, यथा—(दोहा)

बाध किये उपमा दिये, लिये पराए अंग।
प्रतिकूलौ रस भाव है, गुनमय पाइ प्रसंग ॥१३॥

बाध किये भाव प्रतिकूल गुण, यथा

धन संचै धन सौं सुरति-सरसन सुख जग माहिँ।
पै जीवन अति अलप लखि सज्जन मन न पत्याहिँ ॥१४॥

अस्य तिलक

इहाँ सिंगाररस बाधित करिकै सातरस पोषत है तातैं गुन है। १४ अ॥

पुनः—(सवैया)

दृग नासा न वौ तप-जाल लगी न सुगंध सनेह के ख्याल लगी।
स्रुति जीहा बिरागै न रागै पगी मति रामै रँगी औ' न कामै रँगी।

[११] चलि—चलु (भारत, वेंक०, वेंक०)। छीलरि०—छीजे नट सो (भारत, वेल०); छीलर० (वेंक०)।
[१२अ] हिय—जिय (सर०)।
[१३] बाध—बोध (सर्वत्र)।
[१४] सरसन—सरिसन (सर०); सरसत (भारत, वेंक०)।
[१४अ] ×(भारत, वेंक०)।

वपु मैं व्रत नेम न पूरन प्रेम न भूति जगी न बिभूति जगी।
जग जन्म वृथा तिनको जिनके गरे सेली लगी न नवेली लगी ॥१५॥

अस्य तिलक

यामैं दुहूँ को बाधक है, तातैं गुन है। १५ अ ॥

पुनः–(दोहा)

पल रोवति पल हँसति पल बोलति पलक चुपाति।
प्रेम तिहारो प्रेत ज्यौं, वाहि लग्यो दिन राति ॥१६॥

अस्य तिलक

इहाँ एक भाव बाध कै कै एक भाव होत है सो गुन है ।१६अ॥

उपमा तें विरुद्धता गुण, यथा–(कवित्त)

वेलिन के बिमल बितान तनि रहे जहाँ,
द्विजन को सोर कछू कह्यो न परत है।
ता वन दवागिनि की धूमनि सौं नैन,
मुकुतावली सी वारै डारै फूलनि झरत है।
फेरि फेरि अँगुठो भवावै मिसु काँटनि के,
फेरि फेरि आगे पीछे भाँवरै भरत है।
हिंदूपतिजू सौं बच्यो पाइ निज नाहैं,
वैरियनिता उछाहैं मानि ब्याह सो करत है ॥१७॥

अस्य तिलक

इहाँ वीररस वर्नतु हैं वैरिन मैं भयानक, उपमा रूपक मैं सिंगार ल्यायो तातैं गुन है। १७ अ ।

पुनः–(दोहा)

भक्ति तिहारी यौं बसै, मो मन मैं श्रीराम।
बसै कामिजन-हियनि ज्यौं परम सुंदरी वाम ॥१८॥

[१५अ] बाधक–बोधक (भारत, वेंक०)।

[१६अ] भाव०–भाव के बोधक (भारत, वेंक०)। सो–तातैं (वही)।

[१७] के–की (सर०)। तनि–तानि (वही)। द्विजन–दुर्जन (वही)। न–ना (भारत, वेंक०, वेल०)। परत–परति (सर०, भारत, वेंक०)। सी–सु (भारत, वेंक०, वेल०)। भवावै–छुवावै (वही)। काँटनि–कटनि (वही)।

[१७अ] उपमा–उपमा औ (भारत, वेंक०)।

पराये अंग लिये निरुद्धता गुण, यथा—(सवैया)

पीछे तिरीछे तकैं उचकैं न छोड़ाइ सकैं अटके द्रुम सारी।
जी मैं गहैं यौं लुटेरनि के भ्रम भागतीं दीन-अधीन दुखारी।
गोरी कृसोदरी भोरी चितै सँग ही फिरैं ढोरी किरान-कुमारी।
हिंदूनरेस के बैर तैं यौं बिचरैं बन बैरिन की बर नारी ॥१९॥

अस्य तिलक

इहाँ सिंगार करुना अद्भुत अपराग है, बीररस अंगी है। १९ अ॥

दीपति बार बार लच्छन—(दोहा)

पुनि पुनि दीपति ही कहै, उपमादिक कछु नाहिं।
ताही तें सज्जन गनैं, याहू दूषन माहिं ॥२०॥

यथा—(सवैया)

पंकज पाँयनि पैजनियाँ कटि घाँघरो किंकिनियाँ जरबीली।
मोती को हार हवेल बनीन पै सारी सोहावनी कंचुकी नीली।
ठोढ़ी मैं स्यामल बुंद अनूप वरयौनन की चुनियाँ चटकीली।
ईंगुर की सुरकी दुरकी नथ भाल मैं लाल की बेंदी छबीली ॥२१॥

असमय उक्ति, यथा—(दोहा)

सजि सिंगार सर पै चढ़ी, सुंदरि निपट सुबेस।
मनो जीति भुवलोक सब, चलि जीतन दिविदेस ॥२२॥

अस्य तिलक

सहगामिनी देखिकै सांतरस बरनिबो कै दाया बरनिबो उचित है, सिंगार नहीं। १२ अ॥

---

[१९] तिरीछे०—मिरै छमकै (वेंक०)। अटके—अटकी (भारत, वेल०); अटकै (वेंक०)। के—की (भारत, वेंक०)।

[२१] मोती को—मोतिन (भारत, वेंक०, वेल०)। हवेल—हमेल (वही)। बनीनि—बलीन (वही)। मैं—पै (वही)। लाल की—बाल के (भारत), बाल की (वेल०)।

[२२] चलि०—चली जितन (भारत, वेंक०, वेल०)।

[२२अ] दाया—दया (भारत, वेंक०)।

पुनः-(दोहा)

राम आगमन सुनि कह्यो, राम-बंधु सौं बात।
कंकन मोहिँ छोराइबे, उतै जाहु तुम तात ॥२३॥

अस्य तिलक

इहाँ कंकन की भीर छाँडिकै राम को उन पै जाइबो उचित हो सो न कह्यो, यामैं कादरता जान्यो जात है। २३ अ॥

अन्य रसदोष-लक्षणं-(दोहा)

अंगहि को बरनन करै, अंगी देइ भुलाइ।
येऊ है रसदोष मैं, सुनो सकल कविराइ ॥२४॥

अंग को वर्णन, यथा

दासी सौं मडन समै, दर्पन मॉग्यो बाम।
वैठि गई सो सामुहे, करि आनन अभिराम ॥२५॥

अस्य तिलक

इहाँ नाइका अंगी है दासी अंग है, यातैं दासी की अति सोभा वर्निबो दोष है। २५ अ॥

अंगी को भूलिबो, यथा-(दोहा)

पीतम पठै सहेट निज, खेलन अटकी जाइ।
तकि तिहिँ आवत उतहि तैं, तिय मन मन पछिताइ ॥२६॥

अस्य तिलक

इहाँ नायक तैं खेल ही मैं प्रेम अधिक ठहर्यो तौ यह भूल्यो, यहै रसदोष है। २६ अ॥

प्रकृतिविपर्यय-वर्णनं-(दोहा)

तीनि भाँति कै प्रकृति है, दिव्य अदिव्य प्रमान।
तीजो दिव्यादिव्य यह, जानत सुकवि सुजान ॥२७॥
देव दिव्य करि मानिये, नर अदिव्य करि लेखि।
नर-अवतारी देवता, दिव्यादिव्य विसेषि ॥२८॥

[२३अ] हो-है (भारत, वेंक०)। जान्यो०-जानी जाति (भारत)।
[२५] सो-सोइ (भारत, वेंक०)।
[२६] तहिँ-तकि (सर०)। पछिताइ-पछितात (वही)।
[२६अ] ठहर्यो-ठहरायो (भारत, वेंक०)।

सोक हास रति अद्भुतहि, लीन अदिव्यै लोग।
दिव्यादिव्य मैं सकति तन नहीं दिव्य को जोग ॥२६॥
चारि भाँति नायक कह्यो, तिन्हैं चारि रस मूल।
किये और के और मैं, प्रकृतिविपर्जय तूल ॥३०॥
धीरोदात्त सु वीर मैं, धीरोद्धत रिसवंत।
धीरललित सिंगार सौं, सात धीरपरसंत ॥३१॥
स्वर्ग पताले जाइवो, सिंधुउलंघन-चाव।
भस्म ठानिवो क्रोध तैं, सातौ दिव्य-सुभाव ॥३२॥
ज्यों वरनत पितु मातु को, नहिं सिंगार रस लोग।
त्यों सुरतादिक दिव्य मैं, वरनत लगै अजोग ॥३३॥
एहि विधि औरौ जानिये, अनुचित वरनन चोख।
प्रकृति विपर्जय होत है, अरु सिगरो रसदोष ॥३४॥

(सवैया)

पाटी सी है परिपाटी कवित्त की ताकौं त्रिधा त्रिधि बुध्धि वनाई।
वीछन एक सुपंथ करै वरमानि लौं दास अरै जिहि ठाई।
पथहि पाइ भलो इक खोलै ज्यों होत सुदार की कील सुहाई।
एकै न पथ विचार को मानै विदारई जानै कुठार की नाई ॥३५॥

(दोहा)

अमित काव्य के भेद मैं, वरन्यो मति अनुरूप।
संपूरन कीन्हो सुमिरि, श्रीहरि-नाम अनूप ॥३६॥

श्रीरामनाम-महिमा-(सवैया)

पूरनसक्ति दुवर्न को मंत्र है जाहि सिवादि जपैं सब कोऊ।
पावक पौन से मीत लसै मिलि जारत पाप-पहार किवोऊ।

---

[२६] दिव्यादिव्य०–दिव्य।दिव्यन मैं सकति नहीं (भारत, वेंक०, वेल०)। को–के (वही)।

[३१] नाग–तत, सर०); सानि (वेंक०)। पर–सो (वही)।

[३३] सुरतादिक–सुर आदिक (वेल०)।

[३५] करै०–विचार का मालो (सर०)। खोलै–खोलै (भारत, वेंक०, वेल०)।

[३६] कीन्हो–कीन्हौ (सर०)।

दास दिनेस कलाधर भेस बने जग के निसतारक जोऊ।
मुक्ति-महीरुह के दुखते किधौं राम के नाम के आखर दोऊ ॥३७॥
आगर बुध्धि-उजागर है भवसागर की तरनी को खवैया।
व्यक्तविधान अनंदनिधान है भक्ति-सुधारस प्रान-भवैया॥
जानि यहै पुनि मानि वहै मन मानिकै दास भयो है सवैया।
मुक्ति को धाम है भुक्ति को दाम है राम को नाम है कामद गैया ॥३८॥
पावतो पार न वार कोऊ परिपूरन पाप को पानिप जो तो।
बूड़तो झूठि तरंगनि मैं मिलि मोहमई सरितानि को सोतो।
दासजू त्रास-तिमिंगिल सौं तम ग्राह के ग्रास तें बाँचतो को तो।
जौ भवसिंधु अथाह निबाह कौं राम को नाम मलाह न होतो ॥३९॥
आपु दसैसिर-सत्रु हन्यो यह सै-सिर दारिद को बधिको है।
सिंधु बँधाइ तर्‍यो तुम हौ यह तारन मोह-महोदधि को है।
रावरे कौं सुनिये यह जाहिर वासी सबै घट के मधि को है।
रामजू रावरे नाम मैं दास लख्यो गुन रावरे तें अधिको है ॥४०॥
सिध्धनि को सिरताज भयो कवि कोबिद नामहि की सेवकाई।
गीध गयंद अजामिल से तरि गे सब नामहि की प्रभुताई।
दास कहै प्रहलाद उचारत रामहु तें पहिले कहि ठाई।
राम बड़ाई न, नाम बड़ो भयो राम बड़ो निज नाम बड़ाई ॥४१॥
राम को दास कहावै सबै जग दासहु रावरो दास निहारो।
भारी भरोसो हिये सब ऊपर ह्वैहै मनोरथ सिध्ध हमारो।

---

[३७] से मीत-समेत (भारत वेंक०)। दुखते-द्रुम हैं (वही)।

[३८] है-हौ (सर०)। को-के (भारत, वेंक०, वेल०)। पुनि-अनु (भारत, वेंक०)। वहै-यहै (वही)। भयो है-भएहू (सर०); नएहू (वेंक०)।

[३९] निबाह कौं-निबाहते को (सर०); निबाहते (वेंक०)।

[४०] तर्‍यो०-तरे तुम तो (भारत, वेल०)। तारन-तारक (वही)। मोह-मोहि (सर्वत्र)। 'सर०' में चौथा चरण छूट गया है।

[४१] कहि-किहि (भारत, वेंक०)।

[४२] निनारो-निहारो (भारत, वेल०)। भयो-भए (सर०)। रहै-रह्यो (भारत, वेल०)।

राम अदेवनि के कुल घाले भयो रहै देवन को रखवारो।
दारिद घालिबो दीन को पालिबो राम को नाम है काम तिहारो ॥४२॥

क्यौं लिखौं राम को नाम तुम्हैं कहाँ कागद ऐसो पुनीत मैं पाऊँ।
आखर आछे अनूठे तिहारे क्यौं जूठी जुबान सौं हौं रट लाऊँ।
दासजू पावनता भरे पुंज हौ मोह भरे हिय मैं क्यौं बसाऊँ।
काम है मेरो तमाम यहै सब जाम गुलाम तिहारे कहाऊँ ॥४३॥

जानौं न भक्ति न ज्ञान की सक्ति हौं दास अनाथ अनाथ के स्वामि जू।
माँगौं इतो वर दीन दयानिधि दीनता मेरी चितै भरौ हामि जू।
क्यौं बिच नाम के नेह को ब्योर है अंतरजामि निरंतर जामि जू।
मो रसना को रुचै रस ना तजि राम नमामि नमामि नमामि जू ॥४४॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये रस-
दोषोद्धारवर्णनं नाम पंचविंशतिमो-
ल्लास. ॥ २५ ॥

---

[४३] तुम्हैं-हिये (भारत, वेल०); नि मैं (वेंक०)। जूठी-झूठी (वही)।
मोह-नोह (वही)। हिय मैं-हियरे (भारत, वेल०)। तिहारे-तिहारो
(भारत, वेंक०, वेल०)।

[४४] को-के (सर०)।

परिशिष्ट

१—आधार-पद्य

[बड़े कोष्ठक में पहली संख्या काव्यनिर्णय के उल्लास की और दूसरी छंद की है]

[१।१२] शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ।।
—काव्यप्रकाश, १ ३

प्रतिभैव श्रुताभ्याससहिता कवितां प्रति ।
हेतुर्मृदम्बुसम्बद्धबीजव्यक्तिर्लतामिव ।।
—चन्द्रालोक, १।६

[२।४८] मुखं विकसितस्मित वशितवक्रिम प्रेक्षितं ।
समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मतिः ।
उरो मुकुलितस्तन जघनमंसबन्धोद्धुरं
वतेन्दुवदनातनौ तरुणिमोद्गमो मोदते ।।
—काव्यप्रकाश, २।६

[२।४६] श्रीपरिचयाज्जडा अपि भवन्त्यभिज्ञा विदग्धचरितानाम् ।
उपदिशति कामिनीना यौवनमद एव ललितानि ।।
—वही, २।१०

[२।५६] अइपिहुलं जलकुंभं घेत्तूण समागदह्मि सहि तुरिअम् ।
समसेअसलिलणीसासणीसहा वीसमामि खणम् ।।
(अतिपृथुलं जलकुम्भं गृहीत्वा समागतास्मि सखि त्वरितम् ।
श्रमस्वेदसलिलनिःश्वासनिःसहा विश्राम्यामि क्षणम् ।।)
—वही, ३।१३

[२।५४] ओणिद्दं दोब्बल्लं चिंता अलसत्तणं सणीससिअम् ।
मह मंदभाइणीए केर सहि तुहवि अहह परिहवइ ।।
(औन्निद्र्यं दौर्बल्यं चिन्तालसत्वं सनिःश्वसितम् ।
मम मन्दभागिन्या कृते सखि त्वामपि अहह परिभवति ।।)
—वही, ३।१४

[२।५६] तइया मह गण्डत्थलणिमिअं दिट्ठिं ण णेसि अण्णत्तो ।
एण्हि सच्चेअ अहं ते अ कवोला ण सा दिट्ठि ।।

(तदा मम गण्डस्थलनिमग्नां दृष्टिं न नयस्यन्यत्र।
इदानीं सा चैवाहं तौ च कपोलौ न सा दृष्टि ॥)
— वही. ३।१६

[२।५७] उद्देशोऽयं सरसकदली श्रेणिशोभातिशायी।
कुञ्जोत्कर्षाङ्कुरितरमणीविभ्रमो नर्मदायाः।
किञ्चैतस्मिन् सुरतसुहृदस्तन्वि ते वान्ति वाता
येषामग्रे सरति कलिताकाण्डकोपो मनोभूः॥
—वही, ३।१७

[२।५८] णोल्लेइ अणुण्णमणा अत्ता मां घरभरम्मि सअलम्मि।
खणमेत्तं जइ संझाइ होइ ण व होइ वीसामो॥
(नुदति अनन्यमनाः श्वश्रूर्मां गृहभरे सकले।
क्षणमात्रं यदि सन्ध्याया भवति न वा भवति विश्राम.॥)
—वही ३।१८

[२।६०] सुव्वइ समागमिस्सदि तुज्झ पिओ अज्ज पहरमेत्तेण।
एमे अ किंत्ति चिट्ठसि ता सहि सज्जेसु करणिज्जम्॥
(श्रूयते समागमिष्यति तव प्रियोऽद्य प्रहरमात्रेण।
एवमेव किमिति तिष्ठसि तत्सखि सज्जय करणीयम्॥)
—वही, ३।१६

[२।६१] अन्यत्र यूयं कुसुमावचायं कुरुध्वमत्रास्मि करोमि सख्यः।
नाहं हि दूरं भ्रमितुं समर्था प्रसीदतायं रचितोऽञ्जलिर्वः॥
—वही, ३।२०

[२।६५] अत्ता एत्थ णिमज्जइ एत्थ अहं दिअहए पलोएहि।
मा पहिअ रत्तिअन्धअ सेज्जाए मह णिमज्जहिसि॥
श्वश्रूरत्र निमज्जत्यत्राहं दिवस एव प्रलोकय।
मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायां मम निमङ्क्ष्यसि॥
—काव्यप्रदीप, ३ २२

[२।६७] माए घरोवअरणं अज्ज हु णत्थि त्ति साहिअं तुमए।
ता भण किं करणिज्जं एमेअ ण वासरो ठाइ।
(मातर्गृहोपकरणमद्य हि नास्तीति साधितं त्वया।
तद्भण किं करणीयमेवमेव न वासर. स्थायी॥)
—काव्यप्रकाश, २।६

[२।६८] साहेन्ती सहि सुहअं खणे खणे दूणिआसि मज्झकए।
सब्भावणेहकरणिज्जसरिसअं दाव विरइअं तुमए॥
(साधयन्तो सखि सुभगं क्षणे क्षणे दुनोपि मत्कृते।
सद्भावस्नेहकरणीयसदृशकं तावद्विरचितं त्वया॥)
—वही, २।७

[२।६९] उअ णिच्चलणिप्पंदा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ वलाआ।
णिम्मलमरगअभाअणपरिट्ठिआ सखसुत्तिव्व॥
(ऊह निश्चलनिस्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते वलाका।
निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव॥)
—वही, २।८

[४।१७] वियदलिमलिनाम्बुगर्भमेघ
मधुकरकोकिलकूजितैर्दिशां श्रीः।
धरणिरभिनवाङ्कुराङ्कटङ्का
प्रणतिपरे दयिते प्रसीद मुग्धे॥
—वही, ४।२७

[४।३१] हरत्ययं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्॥
—वही, ४।४६

[५।१७] अविरलकरवालकम्पनैर्भ्रुकुटीतर्जनगर्जनैर्मुहुः।
ददृशे तव वैरिणां मदः स गतः क्वापि तवेक्षणे क्षणात्॥
—वही, ५।१२०

[६।१४] शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै-
र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता॥
—वही, ४।३०

[६।३२] अलससिरमणी धुत्ताणं अग्गिमो पुत्ति धणसमिद्धिमओ।
इअ भणिएण णअंगी पप्फुल्लविलोअणा जाआ॥
(अलसशिरोमणि धूर्तानामग्रिमः पुत्रि धनसमृद्धिमयः।
इति भणितेन नताङ्गी प्रफुल्लविलोचना जाता॥)
—वही, ४।६०

[६।३४] धन्याऽसि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि
विस्रब्धचाटुकशतानि रतान्तरेषु।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ।।
—वही, ४।६१

[६।३७] कैलासस्य प्रथमशिखरे वेणुसंमूर्छनाभिः
श्रुत्वा कीर्त्तिं विबुधरमणीगीयमानां यदीयाम्।
स्रस्तापाङ्गाः सरसबिसिनीकाण्डसंजातशङ्का
दिङ्मातङ्गा श्रवणपुलिने हस्तमावर्त्तयन्ति ।।
– वही, ४।६४

[६।३९] सहि विरइऊण माणस्स मज्झ धीरत्तणेण आसासम्।
पिअदंसणविहलंखलखणम्मि सहसत्ति तेण ओसरिअम् ।।
(सखि विरचय्य मानस्य मम धीरत्वेनाश्वासम्।
प्रियदर्शनविश्रृङ्खलक्षणे सहसेति तेनापसृतम् ।।
—वही, ४।६६

[६।४१] उल्लोल्लकरअरअणक्खएहिं तुअ लोअणेसु मह दिण्णम्।
रत्तंसुअ पसाओ कोवेण पुणो इमे ण अक्कमिए ।।
(आर्द्रार्द्रकरजरदनक्षतैस्तव लोचनयोर्मम दत्तम्।
रक्तांशुक प्रसादः कोपेन पुनरिमे नाक्रान्ते ।।)
—वही, ४।७०

[६।४३] जा ठेरं च हसंती कइवअणंबुरुहबद्धविणिवेसा।
दावेइ भुअणमंडलमण्णं विअ जअइ सा वाणी ।।
(या स्थविरमिव हसन्ती कविवदनाम्बुरुह रुद्धविनिवेशा।
दर्शयति भुवनमण्डलमन्यदिव जयति सा वाणी ।।
—वही, ४।६७

[६।५८] राईसु चंदधवलासु ललिअमप्फालिऊण जो चावम्।
एकच्छत्तं विअ कुणइ भुअणरज्ज विअंभंतो ।।
(रात्रीषु चन्द्रधवलासु ललितमास्फाल्य यश्चापं।
एकच्छत्रमिव करोति भुवनराज्यं विजृम्भमाणः ।।)
—वही, ४।८४

[६।६६] णाणारिअम्हि गामे वसामि, णअरट्ठिइं ण जाणामि।
णाअरिआणं पइणो हरेमि जा होमि सा होमि।

(ग्रामरुहास्मि ग्रामे वसामि नगरस्थितिं न जानामि ।
नागरिकीणां पतीन् हरामि या भवामि सा भवामि ॥
—वही, ४।१०१

[७।५] गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य ।
तेनाम्बा यदि सुतनी वद वन्ध्या कीदृशी भवति ॥
—सुभाषित

[७।११] ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।
जामदग्न्यस्तथामित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥
—काव्यप्रकाश, ५।१३०

[७।१४] अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विश्लेषभीरुता ।
नादृष्टेन न दृष्टेन भवता विद्यते सुखम् ॥*
—वही, ५।१२८

[७।१८] अभिमरतिमलसहृदयता प्रलयं मूर्च्छां तमः शरीरसादञ्च ।
मरणं च जलदभुजगजं प्रसह्य कुरुते विषं वियोगिनीनाम् ॥
—वही, ५।१२६

[७।२१] हरस्तु किञ्चित्परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे विम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥
—वही, ५।१२६

[७।२३] वाणीरकुडंगुड्डीणसउणिकोलाहलं सुणंतीए ।
घरकम्मवावडाए वहुए सीअंति अंगाइं ॥
(वानीरकुञ्जोड्डीनशकुनिकोलाहलं शृण्वन्त्याः ।
गृहकर्मव्यापृतायाः वध्वाः सीदन्त्यङ्गानि ॥)
—वही, ५।१३२

[८।४५] दृष्टंचेद्वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना ।
—चंद्रालोक, ५।१६

[८।४८] गुणदोषौ बुधोगृह्णन्निदुक्ष्वेडाविवेश्वरः ।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ॥
—कुवलयानंद, ६

---

* इन दुखिया अँखियान कौं, सुख सिरजौई नाहिं ।
देखत बनै न देखतैं, अनदेखे अकुलाहिं ॥
—बिहारी

[८।६३] दानं ददत्यपि जलैः सहसाधिरूढे
को विद्यमानगतिरासितुमुत्सहेत ।
यद्दन्तिनः कटकटाहतटान्मिमंक्षो
र्मंक्षूदपाति परितः पटलैरलीनाम् ॥

—वही, १२२

[८।७४] अरण्यरुदितं कृतं शवशरीरमुद्वर्तितं
स्थलेऽब्जमवरोपितं सुचिरमूषरे वर्षितम् ।
श्वपुच्छमवनामितं बधिरकर्णजापः कृतो
धृतोऽन्धमुखदर्पणो यदबुधो जनः सेवितः ॥

—वही, ५२

[८।८६] यश्च निम्बं परशुना यश्चैनं मधुसर्पिषा ।
यश्चैनं गन्धमाल्याद्यैः सर्वस्य कटुरेव सः ॥

—वही, ४५

[९।२८] वदनमिदं न सरोजं नयने नेन्दीवरे एते ।
इह सविधे मुग्धदृशो मधुकर न मुधा परिभ्रान्य ॥

—साहित्यदर्पण, १०।३६

[१०।६] नित्योदितप्रतापेन त्रियामामीलितप्रभः ।
भास्वतानेन भूपेन भास्वानेषः विनिर्जितः ॥

—काव्यप्रकाश १०।४६६

[१०।८] इयं सुनयना दासीकृततामरसश्रिया ।
आननेनाकलङ्केन निन्दतीन्दुं कलङ्किनम् ॥

—वही, १०।४६५

[११।४] अन्येयं रूपसंपत्तिरन्या वैदग्ध्यधोरणी ।
नैषा नलिनपत्राक्षी सृष्टिः साधारणी विधेः ॥

—कुवलयानंद, ३७

[११।७] अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयोर्जृम्भमाणयोः ।
अवकाशो न पर्याप्तस्तव बाहुलतान्तरे ॥

—वही, ३६

[११।६] कतिपयदिवसैः क्षयं प्रयायात्कनकगिरिः कृतवासरावसानः ।
इति मुदमुपयाति चक्रवाकी वितरणशालिनि वीररुद्रदेवे ॥

—वही, ३८

[११।१२] यामि न यामीति धवे वदति पुरस्तात्क्षणेन तन्वङ्ग्याः।
गलितानि पुरो वलयान्यपराणि तथैव दलितानि ॥
—वही, ४१

[११।१५] आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्च ते।
—चंद्रालोक, ५।४०

[११।१६] मुञ्चति मुञ्चति कोशं भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्गः।
हम्मीरवीरखड्गे त्यजति त्यजति क्षमामाशु ॥
—कुवलयानंद, ४०

[११।१८] त्वयि दातरि राजेन्द्र याचकाः कल्पशाखिनः।
—चंद्रालोक, ५।२६

[११।२३] असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिंधुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥
—महिम्नःस्तोत्र

[११।२७] त्वत्सूक्तिषु सुधा राजन्भ्रान्ताः पश्यन्ति तां विधौ।
—चंद्रालोक, ५।३६

[११।२६] अनुच्छिष्टो देवैरपरिदलितो राहुदशनैः
कलङ्केनाश्लिष्टो न खलु परिभूतो दिनकृता।
कुहूभिर्नो लिप्तो न च युवतिवक्त्रेण विजितः
कलानाथः कोऽयं कनकलतिकायामुदयते ॥
—सुभाषित

[११।४३] यन्मध्यदेशादपि ते सूक्ष्मं लोलाक्षि दृश्यते।
मृणालसूत्रमपि ते न संमाति स्तनान्तरे ॥
—कुवलयानंद, ६६

[११।४५] दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणगणा येषाम्।
रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमिह कवयो न ते वन्द्याः ॥
—काव्यप्रकाश, १०।५५६

[१२।२०] व्यावल्गत्कुचभारमाकुलकचं व्यालोलहारावलि
प्रेङ्खत्कुण्डलशोभिगण्डयुगलं प्रस्वेदि वक्त्राम्बुजम्।

---

* कागज धरनि करै द्रुम लेखनि जल सायर मसि घोर।
लिखैं गनेस जनम भरि मम कृत तऊ दोष नहिं ओर ॥—सूरदास

शश्वद्दत्ताकरप्रहारमधिकश्वास रसादेतया
यस्मात्कन्दुक सादरं सुभगया संसेव्यसे तत्कृती ॥

—कुवलयानद, ६०

[१२।२६] विधिरेवविशेषगर्हणीय. करट त्व रट कस्तवापराधः ।
सहकारतरौ चकार यस्ते सहवासं सरलेन कोकिलेन ॥

—वही, ७१

[१२।३३] यद्वक्त्रं मुहुरीक्षसे न धनिना ब्रूपे न चाटून्मृषा
नैषां गर्ववचः शृणोपि न च तान्प्रत्याशया धावसि ।
काले बालतृणानि खादसि पर निद्रासि निद्रागमे
तन्मे ब्रूहि कुरङ्ग कुत्र भवता किन्नाम तप्त तप. ।

—वही, ७०

[१२।३४] लावण्यद्रविणव्ययो न गणित. क्लेशो महानर्जितः
स्वच्छन्द चरतो जनस्य हृदये चिन्ताज्वरो निर्मित. ।
एषापि स्वगुणानुरूपरमणाभावाद्वराकी हता
कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्वीमिमां तन्वता ।

—वही, ७१

[१३।३१] लुब्धो न विसृजत्यर्थं नरो दारिद्र्यशङ्कया
दातापि विसृजत्यर्थं तयैव ननु शङ्कया ॥

—वही, १०२

[१३।३४] हृदि स्नेहक्षयो नाभूत्स्मरदीपे ज्वलत्यपि ।

—चंद्रालोक, ५।८२

[१३।४१] त्वत्खड्गखण्डितसपत्नविलासिनीनां
भूपा भवन्त्यभिनवा भुवनैकवीर ।
नेत्रेषु कङ्कणमथोरुषु पत्रवल्ली
चोलेन्द्रसिंह तिलकं करपल्लवेषु ॥

—कुवलयानद, ८५

[१३।४३] मोहं जगत्त्रयभुवामपनेतुमेतदादाय रूपमखिलेश्वर देहभाजाम्।
निःसीमकांतिरसनीरधिनामुनैव मोहं प्रवर्धयसि मुग्धविलासिनीनाम् ॥

—वही, ८६

[१३।५१] सिंहिकासुतसंत्रस्तः शश. शीतांशुमाश्रितः ।
जग्रसे साश्रयं तत्र ,तमन्यः सिंहिकासुतः ॥

—काव्यप्रकाश, ५३८

दिवि श्रितवतश्चन्द्रं सैंहिकेयभयाद्भुवि ।
शशस्य पश्य तन्वं ङ्गिसाश्रयस्य ततो भयम् ॥

—कुवलयानंद, ८६

[१४।४] अपि मां पावयेत्साध्वी स्नात्वेतीच्छति जान्हवी ।

—चंद्रालोक, ५।१३२

[१४।११] लोकानन्दन चंदनद्रुम सखे मास्मिन्वने स्थीयतां
दुर्वंशैः परुषैरसारहृदयैराक्रान्तमेतद्वनम् ।
ते ह्यन्योन्यनिघर्षजातदहनज्वालावलीसंकुला
न स्वान्येव कुलानि केवलमिदं सर्वं दहेयुर्वनम् ॥

—कुवलयानद, १३४

[१४।१५] त्व चेत्सचरसे वृपेण लघुता का नाम दिग्दन्तिना
व्यालैः कङ्कणभूषणानि कुरुषे हानिर्न हेम्नामपि ।
मूर्द्धन्यं कुरुषे सितांशुमयशः किं नाम लोकत्रयी-
दीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं ब्रूमहे ॥

—वही, १३५

[१४।२३] आघ्रातं परिचुम्बित परिमुहुर्लीढं पुनश्चर्वितं
त्यक्त वा भुवि नीरसेन मनसा तत्र व्यथां मा कृथा. ।
हे सद्रत्न तवैव देव कुशलं यद्वानरेणादरा-
दन्तःसारविलोकनव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना ॥

—कुवलयानद, १३४

[१४।२६] प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवनहेतोर्विमुञ्चति प्राणान् ।
दुःखीयति सुखहेतोः को मूढ. सेवकादन्यः ॥

—साहित्यदर्पण, १०।७१

नमन्ति सन्तस्त्रैलोक्यादपि लब्धुं समुन्नतिम् ।

—चंद्रालोक, ५।६३

[१४।३५] द्वारं खड्गिभिरावृतम्बहिरपि प्रस्विन्नगण्डैर्गजै-
रन्तः कञ्चुकिभिः स्फुरन्मणिधरैरध्यासिता भूमयः ।
आक्रान्तं महिषीभिरेव शयनं त्वद्विषां मन्दिरे
राजन्सैव चिरन्तनप्रणयिनी शून्येऽपि राज्यस्थितिः ॥

— कुवलयानंद, १४२

[१४।३६] नीलोत्पलानि दधते कटाक्षैरविनीलताम् ।

—चंद्रालोक, १४४

[१४।३६] ये कन्दरासु निवसन्ति सदा हिमाद्रे-
स्त्वत्पातशङ्कितधियो विवशा द्विपस्ते।
अप्यङ्गमुत्पुलकमुद्वहतां सकम्पं
तेषामहो बत भियां न बुधोऽप्यभिज्ञः॥

—काव्यप्रकाश, ५४७

[१५।८] नीचप्रवणता लक्ष्मीर्जलजायास्तवोचिता।

—चंद्रालोक, ५।६१

[१५।६] दवदहनादुत्पन्नो धूमो घनतामवाप्य वर्षैस्तम्।
यच्छमयति तद्युक्तं सोऽपि च दवमेव निर्दहति॥

—कुवलयानद, ६१

[१५।१७] अद्यापि तिष्ठति दृशोरिदमुत्तरीय धर्तुं पुरःस्तनतटात्पतितं प्रवृत्ते।
वाच निशम्य नयनं नयनं ममेति किंचित्तदा यदकरोत्स्मितमायताक्षी॥

—वही, १६०

[१५।२६] कस्तूरिकामृगाणामण्डाद्गन्धगुणमखिलमादाय।
यदि पुनरहं विधिः स्यां खलजिह्वायां निवेशयिष्यामि॥

—वही, १२५

[१५।३५] यौवन धनसपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

—सुभाषित

[१५।३६] त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया।

—चंद्रालोक, ५।६७

[१५।४२] यथोर्ध्वाक्ष. पिबत्यम्बु पथिको विरलांगुलिः।
तथा प्रपापालिकापि धारां वितनुते तनुम्॥

—कुवलयानद, ६७

[१५।४४] सद्य' शिरासि चापान्वा नमयन्तु महीभुजः।

—चद्रालोक, ५।११२

[१५।४५] पतत्यविरतं वारि नृत्यन्ति च कलापिनः।
अद्य कान्त. कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं करिष्यति॥

— कुवलयानंद, ११२

[१५।४७] अधरोऽयमधीराक्ष्या बन्धुजीवप्रभाहर.
अन्यजीवप्रभां हन्त हरतीति किमद्भुतम्॥

— वही, ११६

[१६।२३] ग्रामेऽस्मिन्प्रस्तरप्राये न किंचित्पान्थ विद्यते ।
पयोधरोन्नतिं दृष्ट्वा वस्तुमिच्छसि चेद्वस ॥

—वही, १४८

१६।२६] सुधांशुकलितोत्तंसस्तापं हरतु वः शिवः ।

— चंद्रालोक, ५।६१

[१७।८] माने नेच्छति वारयत्युपशमे क्ष्मामालिखन्त्यां ह्रियां
स्वातन्त्र्ये परिवृत्य तिष्ठति करौ व्याधूय धैर्ये गते ।
तृष्णे त्वामनुबध्नता फलमियत्प्राप्तं जनेनामुना
यत्स्पृष्टो न पदा स एव चरणौ स्प्रष्टुं न संमन्यते ॥

—कुवलयानंद, १६६

[१७।१६] असंशय क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणस्य वृत्तयः ॥

—वही, १७०

[१७।२०] स्फुटमसदवलग्नं तन्वि निश्चिन्वते ते
तदनुपलभमानास्तर्कयन्तोऽपि लोकाः ।
कुचगिरिवरयुग्मं यद्विनाधारमास्ते
तदिह मकरकेतोरिन्द्रजालं प्रतीमः ॥

—वही

[१७।२२] ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

—वही

[१७।२३] निर्णेतु शक्यमस्तीति मध्य तव नितम्बिनी ।
अन्यथा नोपपद्येत पयोधरभरस्थितिः ॥

—वही

[१७।३१] ईदृशैश्चरितैर्जाने सत्यं दोषाकरो भवान् ।

—चद्रालोके, ५।१६३

[१७।३५] सहस्व कतिचिन्मासान्मीलयित्वा विलोचने ।

—वही, ५।१५६

[१७।३८] मम रूपकीर्तिमहरद्भुवि यस्तदनु प्रविष्टहृदयेयमिति ।
त्वयि मत्सरादिव निरस्तदयः सुतरां क्षिणोति खलु तां मदनः ॥

—कुवलयानंद, ११८

[१८।१०] विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम् ॥
—सुभाषित

[१८।२१] श्रोणीबन्धस्त्यजति[1] तनुतां सेवते मध्यभागः
पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्याम् ।
धत्ते वक्षः[2] कुचसचिवतामद्वितीयत्वमास्य
तद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥
—काव्यप्रकाश-टीका, पर्याय में

[१८।२४] प्रायश्चरित्वा वसुधामशेषां छायासु विश्रम्य ततस्तरूणाम् ।
प्रौढिं गते सम्प्रति तिग्मभानौ शैत्यं शनैरन्तरपामयासीत् ॥
—कुवलयानद. १०६

[१८।२५] बिम्बोष्ट एव रागस्ते तन्वि पूर्वमदृश्यत ।
अधुना हृदयेऽप्येष मृगशावाक्षि लक्ष्यते ॥
—काव्यप्रकाश, १०।५१४

[१८।२७] पुराभूदस्माकं प्रथममविभिन्ना तनुरियं
ततो नु त्वं प्रेयान्वयमपि हताशाः प्रियतमाः ।
इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं
हतानां प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥
—कुवलयानद, ११०

[१६।६८] चित्ते विहुट्टदि ण खिट्टदि सा गुणेसु
सेज्जासु लोट्टदि विसट्टदि दिम्मुहेसु ।
बोल्लम्मि वट्टदि पवट्टदि कव्वबन्धे
धाणेण तुट्टदि खण तरुणी तरट्टी ॥
(चित्ते विघटिते न त्रुट्यसि सा गुणेषु शय्यासु लुठति विसर्पति दिङ्मुखेषु ।
वाक्ये वर्तते प्रवर्तते काव्यबन्धे ध्यानेन त्रुट्यति चिरं तरुणी प्रगल्भा ॥)
—काव्यप्रकाश, ८।३४३

[१६।६६] मित्रे क्वापि गते सरोरुहवने बद्धानने ताम्यति
क्रन्दत्सु भ्रमरेषु वीक्ष्य दयितासक्तं पुरः सारसम् ।
चक्राह्वेन वियोगिना बिसलता नास्वादिता नोज्झिता
कण्ठे केवलमर्गलेव निहिता जीवस्य निर्गच्छतः ॥
—वही, ८।३४४

पाठांतर—१-भाग । २—च वक्त्रम् ।

[१६।७०] अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ।
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला ॥
—वही, ८।३४१

[२३।१५] प्राभ्रभ्राड्विष्णुधामाप्य विषमाश्वः करोत्ययम् ।
निद्रां सहस्रपर्णानां पलायनपरायणाम् ॥
—वही, ७।१७४

[२३।१८] आशीःपरम्परां वन्द्यां कर्णे कृत्वा कृपां कुरु ।
—वही, ७ १५४

[२३।२०] शरत्कालसमुल्लासिपूर्णिमाशर्वरीप्रियम् ।
करोति ते मुखं तन्वि चपेटापातनातिथिम् ॥
—वही, ७।१५७

[२३।२२] वज्रवैदूर्य्यचरणैः क्षतसत्त्वरजःपरा ।
निष्कम्पा रचिता नेत्रयुद्ध वेदय साम्प्रतम् ॥
—वही, ७।१८१

[२३।२३] क्लिष्टमर्थो यदीयोऽर्थश्रेणितः श्रेणिमृच्छति ।
हरिप्रियापितृवधूप्रवाहप्रतिमं वचः ॥
—चंद्रालोक, २।१२

[२३।२४] विहंगा वाहनं येषां त्रिकचा यत्र भूषणम् ।
सालया वामभागे च ते देवाः शरणं मम ॥
—सुभाषित

[२३।३६] न्यूनं त्वत्खड्गसम्भूतयशःपुष्पं नभस्तलम् ।
—चंद्रालोक, २।१८

[२३।३७] अधिकं भवतः शत्रून् दशत्यसिलताफणी ।
—वही

[२३।४१] मसृणचरणपातं गम्यतां भूः सदर्भा
विरचय सिचयान्तं मूर्ध्नि घर्मः कठोरः ।
तदिति जनकपुत्री लोचनैरश्रुपूर्णैः
पथि पथिकवधूभिः शिक्षिता वीक्षिता च ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२२६

[२३।४५] चरणानतकान्तायास्तन्वि कोपस्तथापि ते ।
—साहित्यदर्पण, ७।७

[२३।४८] किमिति न पश्यसि कोपं पादगतं बहुगुणं गृहाणेमम् ।
ननु मुञ्च हृदयनाथं कण्ठे मनसस्तमोरूपम् ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२३६

[२३।५२] राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी ।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥
—वही, ७।२५४

[२३।५८] अतिविततगगनसरणिप्रसरणपरिमुक्तविश्रमानन्दः ।
मरुदुल्लासितसौरभकमलाकरहासकृद्रविर्जयति ॥
—वही, ७।२५५

[२३।६०] सहस्रपत्रमित्र ते वक्त्रं केनोपमीयते ।
कुतस्तत्रोपमा यत्र पुनरुक्तः सुधाकरः ॥
—चन्द्रालोक, २।३१

[२३।६२] भूपालरत्न निर्दैन्यप्रदानप्रथितोत्सव ।
विश्राणय तुरङ्गम्मे मातङ्गं वा मदालसम् ॥
—काव्यप्रकाश, ७ २६०

देहि मे वाजिन राजन् गजेन्द्रं वा मदालसम् ।
—साहित्यदर्पण, ७।६

[२३।६३] स्वपिति यावदयं निकटे जनः स्वपिमि तावदहं किमपैति ते ।
तदुपसहर कूर्परमायतं त्वरितमूरुमुदञ्चय कुञ्चितम् ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२६१

स्वपिहि त्वं समीपे मे स्वपिम्येवाधुना प्रिये ।
—साहित्यदर्पण, ७।६

२३।६४] ब्रूत किं सेव्यता चन्द्रमुखोचन्द्रकिरीटयो ॥
—चंद्रालोक, २।३४

[२३।६७] यदि दहत्यनलोऽत्र किमद्भुतं यदि च गौरवमद्रिषु किं ततः ।
लवणमम्बु सदैव महोदधेः प्रकृतिरेव सतामविषादिता ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२७२

[२३।६६] यावा· प्राणभृतां मनोरथगतीरुल्लङ्घ्य यत्सम्पद-
स्तस्याभासमणीकृताश्मसु मणेरश्मत्वमेवोचितम् ॥
—वही, ७।२७३

[२३।७२] कल्लोलवेल्लितदृषत्परुषप्रहारै
रत्नान्यमूनि मकराकर मावमंस्थाः ।
किं कौस्तुभेन भवतो विहितो न नाम
याञ्चाप्रसारितकरः पुरुषोत्तमोऽपि ॥
—वही, ७।२७६

[२३।७४] श्यामां श्यामलिमानमानयत भोः सान्द्रैर्म्मसीकूर्चकै-
र्म्मन्त्र तन्त्रमपि प्रयुज्य हरत श्वेतोत्पलानां श्रियम् ।
चन्द्रं चूर्णयत क्षणाच्च कणशः कृत्वा शिलापट्टके
येन द्रष्टुमहं क्षमे दश दिशस्तद्वक्त्रमुद्राङ्किताः ।
—वही, ७।२७५

[२३।७६] वाताहारतया जगद्विषधरैराश्वास्य निःशेषितं
ते ग्रस्ताः पुनरभ्रतोयकणिकातीव्रव्रतैर्बर्हिभिः ।
तेऽपि क्रूरचमूरुचर्म्मवसनैर्नीताः क्षयं लुब्धकै-
र्दम्भस्य स्फुरितं विदन्नपि जनो जाल्मो गुणानीहते ॥
—वही, ७।२८२

[२३।८०] अरे रामाहस्ताभरण भसलश्रेणिशरण
स्मरक्रीडाव्रीडाशमन विरहिप्राणदमन
सरोहंसोत्तंस प्रचलदल नीलोत्पल सखे
सखेदोऽहं मोहं श्लथय कथय क्वेन्दुवदना ।
— वही, ७।२८३

[२३।८५] ध्वाङ्क्षाः सन्तश्च तनयं स्व परञ्च न जानते ।
—चन्द्रालोक, २।३८

[२३।८६] श्रुतेन बुद्धिर्व्यसनेन मूर्खता मदेन नारी सलिलेन निम्नगा ।
निशा शशाङ्केन धृतिः समाधिना नयेन चालङ्क्रियते नरेन्द्रता॥
—काव्यप्रकाश, ७।२८६

[२३।८७] हन्तुमेव प्रवृत्तस्य स्तब्धस्य विवरैषिणः ।
यथाऽऽशु जायते पातो न तथा पुनरुन्नतिः ॥
—वही, ७।२८५

[२४।६] यद्वञ्चनाहितमतिर्बहु चाटुगर्भं
कार्योन्मुखः खलजनः कृतकं ब्रवीति ।

तत्साधवो न न विदन्ति विदन्ति किन्तु
कर्त्तुं वृथा प्रणयमस्य न पारयन्ति
—वही. ७।११२

[२४।१४] सुसितवसनालङ्कारायां कदाचन कौमुदी-
महसि सुदृशि स्वैरं यान्त्या गतोऽस्तमभूद्विधुः ।
तदनु भवतः कीर्तिः केनाप्यगीयत येन सा
प्रियगृहमगान्मुक्ताशङ्का क नासि शुभप्रदः ॥
—वही, ७।२६६

[२५।३] सव्रीडा दयितानने सकरुणा मातङ्गचर्माम्बरे
सत्रासा भुजगे सविस्मयरसा चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि ।
सेर्ष्या जह्नुसुतावलोकनविधौ दीना कपालोदरे
पार्वत्या नवसङ्गमप्रणयिनी दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥
—वही, ७।३२१

[२५।३अ] व्यानम्रा दयितानने मुकुलिता मातङ्गचर्माम्बरे
सोत्कम्पा भुजगे निमेषरहिता चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि ।
मीलद्भ्रूः सुरसिन्धुदर्शनविधौ म्लाना कपालोदरे
पार्वत्या नवसङ्गमप्रणयिनी दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥
—वही (वृत्ति), ७।३२१

[२५।४] संप्रहारे प्रहरणैः प्रहाराणां परस्परम् ।
ठणत्कारैः श्रुतिगतैरुत्साहस्तस्य कोऽप्यभूत् ॥
—वही, ७।३२४

[२५।७] परिहरति रतिं मतिं लुनीते स्खलतितरां परिवर्त्तते च भूयः ।
इति बत विषमा दशास्य देहं परिभवति प्रसभं किमत्र कुर्मः ॥
—वही, ७।३२६

[२५।६] कर्पूरधूलिधवलद्युतिपूरधौतदिङ्मण्डले शिशिररोचिषि तस्य यूनः ।
लीलाशिरोंऽशुकनिवेशविशेषक्लृप्तिव्यक्तस्तनोन्नतिरभून्नयनावनौ सा ॥
—वही. ७।३२५

[२५।११] प्रसादे वर्त्तस्व प्रकटय मुदं सन्त्यज रुषं
प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः ।
निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥
—वही, ७।३२७

[२५।१२] णिहुअरमणम्मि लोअणपहम्मि पडिए गुरुअणमज्झम्मि ।
सअलपरिहाररहिअआ वणगमणं एव्व महइ वहू ॥
(निभृतरमणे लोचनपथं पतिते गुरुजनमध्ये ।
सकलपरिहारहृदया वनगमनमेव महति वधूः ॥)

—वही, ७।१२८

[२५।१६] एहि गच्छ पतोत्तिष्ठ वद मौनं समाचर ।
एवमाशाग्रहग्रस्तैः क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः ॥

—वही, ७।१३६

[२५।१७] क्रामन्त्यः क्षतकोमलाङ्गुलिगलद्रक्तैः सदर्भाः स्थलीः
पादैः पातितयावकैरिव गलद्बाष्पाम्बुधौताननाः ।
भीत्या भर्तृकरावलम्बितकरास्त्वद्वैरिनार्योऽधुना ।
दावाग्निं परितो भ्रमन्ति पुनरप्युद्यद्विवाहा इव ॥

—वही, ७।१३८

२—प्रतीकानुक्रम

[पहली संख्या उल्लास की और दूसरी छंद की है]

अघोर=अघोरपंथ की साधना करने-वाला, अघोरी। ४-३७
अचकाँ=अचानक, सहसा। १६-२५
अचै=पीकर; भलीभाँति देखकर। २-२४
अचैकै=पीकर, त्याग कर। २-२५
अचैन=बेचैन, व्याकुल। १३-२३
अचैबो=पीना। १५-५२
अछुकन्ह=न छुके हुओं को। ४-५३
अजौं=आज भी, अब भी। ११-१४
अज्जा=(आर्या) बड़ी जेठी स्त्री। २-६५
अतन=कामदेव। १०-३०, २१-४५
अतूल=अद्वितीय। ६-४१
अदेह=अनंग, कामदेव। १०-१६
अदोखिल=दोषरहित। २४-१
अधंग=अर्द्धांग, आधा अंग। १७-५
अध ऊरध=नीचे ऊपर। १८-३४
अधरछत=(अधर + क्षत) ओठ में का घाव। ३-१२
अधरा=(अधर) होंठ। ११-२५
अधिकारी=अधिकता। २१-३५
अधीस=(अधीश) स्वामी, (अधीन = वश में)। २१-३८
अधोमुहै=अधोमुख, नीचे मुँह किए हुए। १०-३६
अनंग=काम। १८-४१, १६-६२
अनगकला=कामकला, रतिक्रीड़ा। ४-२२
अनद के कद=आनद के मूल (श्रीकृष्ण)। ४-२२
अनखानी=बुरा माननेवाली। १६-२६
अनखौहैं=बुरा मानने को उन्मुख, अप्रसन्न। १७-६
अनगन=अगणित। ५-१५
अनत=अन्यत्र। ४-४०, १३-३६
अनबन्यो=बिगड़ा। १-७
अनमिल=असबद्ध, बेमेल। १३-२
अनयास=अनायास। १४-६
अनसंनिधि=अन्यसनिधिवैशिष्ट्य। २-५१
अनहद=बेहद, अपार। १६-४६
अनाकनी=आनाकानी; सुनी अनसुनी करना। ११-१८
अनारी=अनारवाले। ३-५४
अनारी=अनाड़ी, अनभिज्ञ। १०-३७
अनी=सेना। ४-३४, १०-४०
अनु=(अणु) कण। १५-७
अनूप=अनुपम, अद्वितीय। २-६६
अनेम=नियमरहित। २३-६६ अ
अनैसी=अप्रिय। १३-२१
अनैसो=अनिष्टकारक। १३-११
अन्यास=अनायास, अकस्मात्। ४-५०
अपत=पत्रविहीन, अप्रतिष्ठित। २-४५
अपति=अप्रतिष्ठा। १०-१०
अपलोक=अपयश। ४-३३
अपूरब=(अपूर्व) अनोखी। १३ ३४
अब को=(बको) बगुला पक्षी, अब कौन। २०-१३
अबर=अश्रेष्ठ, अधम। २५-४ अ
अबलनि=बल से रहितों; अबलाओं। १३-४३
अबूत=शक्तिहीन। ५-७
अब्द=मेघ, बादल। १६-४६
अभरन=(आभरण) आभूषण। २०-१०
अभिनयादिकनि=अभिनय इत्यादि, मुद्रा चेष्टा आदि। २-१६
अभिराम=सुदर। १०-२३

अभिसारी=अभिसारिका (नायिका)। २४-१४
अभेरै=भिड़ाए हुए। ६-४४
अभै=(अभय) २१-७०।
अमत्त=मात्रारहित। २१-३६
अमत्ता=(अमत्त) मात्रारहित। २१-४४
अमर=देवता। २१-४३
अमर-निकेत=देवलोक। ६-४६
अमर (भाषा)=देवभाषा, संस्कृत। १ १५
अमरैआ=अमराई, आम का बगीचा। ६-५१
अमल=निर्मल, निर्धूम। ३-४८
अमान=अपरिमित, अत्यंत। ८-३६
अमित=अपरिमित। २६-६
अयान=अज्ञान, अज्ञानी। २३-७१
अयानै=(अज्ञान) मूर्ख ही। ११-२७
अरगजा=(अर्गजा) बैंड़ा। १६-६६
अरधंग=अर्द्धांग, आधा अंग। १३-१०
अरव्वीवारे=(अरव्वी=इंद्र, वारे=छोटे) उपेंद्र, श्रीकृष्ण, अरव की संख्या। २०-१६
अरीनि=शत्रुता रखनेवाली स्त्रियाँ, सौतें। २०-१७
अरुनाई=अरुणाई, ललाई। १२-१७
अरुनारे=लाल। १०-२७, ११ २५
अरो=अड़ा, अड़ गया। २१ १५
अर्क=सूर्य। २०-१४
अर्थ-प्रसंग=अर्थ की संगति, अर्थ की स्थिति। २ १८
अर्थप्रकरन=अर्थप्रकरण ही। २-११
अर्न=(अर्ण) जल, अश्रु। ४-१३
अरसात=आलस्य करते हैं। २२-५
अरविंद=कमल। ८ ४५
अरन्य=(अरण्य) वन, जंगल। २२-४
अरजुन=चमकीलापन; चाँदी की चमक; एकलौता बेटा (सिंहिनी सिंह को जन्म देकर मर जाती है, ऐसा प्रसिद्ध है), पांडुपुत्र अर्जुन। २०-७
अरचत=अर्चना (पूजा) करते हैं। २१-४५
अलग-ओर। ११-१२
अलक=केश की लट। ४-१६, २०-१३-२३-३
अलसानि=आलस्य। २ ५३
अलापी=आलाप करनेवाले, बोलनेवाले। ४-१७
अलिन्ह=सखियों ने। २१ ६०
अलेख=जिसका लेख न हो, अदृश्य, देवता। १०-२७
अलेखी-जिसका लेखन न हो सके, अलेख्य, सूक्ष्म देवयोनि। २०-१०
अवकास = निर्बाध, स्वच्छंद। ४-१७
अवदात = स्वच्छ, निर्मल। १२-४
अवनीपै=राजा को। ६-६
अवराधी=आराधित की, ग्रहण की। १८-२३
अवराधो=आराधना। ६-७
अवरेखि = समझो। ६-७१
अवरोह=उतार। १६-२०
अवसि = (अवश्य)। १२-३५
अवहित्थ=(अवहित्था) आत्मगोपन। ४-३६
अवास=(आवास) निवासस्थान, घर। ६-४४

अष्ट सिद्धी=अणिमादिक आठ प्रकार की सिद्धियाँ। ६-१
असजोग=वियोग। २-८
असकति=अशक्त, शक्तिहीन। २-६१
असकी=न सकी। २३-२६
असत=असाधु। ३-८
असन=(अशन) भोजन। १२-३३
असमसरी=(असमशरी) कामदेव की पत्नी रति, अ+समसरी (चमत्कारार्थ)। २०-१०
असमै=(असमय)। २५-१०
असवारी=अश्वारोही सेना। १०-३७
असारु=सारहीन। १४-११
असि=तलवार। ८-१४
असितौ=अश्वेत (काली) भी। २३-७४अ
असु=प्राण। ११-१६
असुरसाखि=(अ+सुरसाखि) कल्पवृक्ष से रहित। २३ ८
असूया=ईर्ष्या। ४-२१
असेष=परिपूर्ण। २-६४
अहि-छौने=सर्प के बच्चे। ४-१६
अहितू=शत्रु। ४-४२
अहिसगी=सर्प का साथी (चदन के वृक्ष में सर्प लिपटे रहते हैं); विषैला। १३ ११
अहीर=श्रीकृष्ण। २१-७५
आँगी=(अगिका) अँगिया, चोली। १८-४१
आँगुरिन फोरि=उँगलियाँ चटकाकर। १७-६
आँब=आम। १४-२४
आक=अर्क, मदार। १४-५
आगमु=आगमन, होनहार। ४-३१
आगर=घर। २०-६
आगार=घर। २१-१२
आगि=अग्नि। ४-४६
आड़=आडा तिलक। ६-६८
आदिगुर=आदिगुरु, आदिमगुरु। ११
आधिक=आधी। ११-१२
आनँदनिकंदु=(आनदनि+कदु) आनंदों की जड, आनददायक (सूर्य चंद्र), (आनँद+निकद) सुख को नष्ट करनेवाला (सिंह), आनददाता (श्रीकृष्ण)। २०-७
आन=(अन्य) दूसरा। २-१३
आन=शपथ। २०-१५
आन=आनबान। २०-१५
आनि=लाकर। ४-३६
आनि=शपथ। १६-५५
आनि=ले आ। १६-५५
आनु=(आनय) ले आ। ५-७
आपु=आप (आदरार्थ सर्वनाम); जल। २१-३१
आभरन=(आभरण) आभूषण। ७-१२
आभरन=पोषण करनेवाला; अलकार; पेट भरनेवाला, भूषण। २०-७
आभा=छटा, ज्योति, चमक। ३-५४
आममौर=आम की मजरी। ६-५१
आमिल=(अमल=प्रबध, आमिल=प्रबधक) हाकिम, शासनाधिकारी। १२-२१ अ
आयसु=(आदेश) आज्ञा, कवच। २०-५
आरज=(आर्य) पति। १२-१७

आरस = आलस्य । ८-६४, २२-५
आरसी = (आदर्श) दर्पण । ५-६, ८-५३
आरोपन = (आरोपण) स्थापित करना । ३-१६
आलम = कवि-नाम । १-१६
आवनिहार = आनेवाला । २-६०
आसा = डंडा । १३-७
आसै = आशा [आनै = नकल आनै, स्वाँग करते हैं] । २१-३८
आहिन = हूँ । २१-७६
इंदिरा = लक्ष्मी । ८-३७
इंदीवर = कमल । ८-५१
इंदु = चंद्रमा । ३-४८
इंदु की वधूटी = वीरवहूटी, लाल रंग का बरसाती कीड़ा । २२-१५
इंदुमती = अज की पत्नी । ८-३७
इंदुवै = चंद्रमा ही । १६-१६
इंद्रजाली = (ऐंद्रजालिक) मायावी । १७-२०
इकंक = निश्चय, भली भाँति । ६-५८
इकठोरी = एक स्थान पर, एक साथ । ५-१३
इतहि = यहीं, पास ही । २-६१
इती = इतनी सी (छोटी) । २-१६
इते = इतना । २-१६
इरखाति = ईर्ष्या करती (है) । ५-२५
इलाजै = युक्ति, उपाय । १७-३६
इस्त्री = स्त्री । १६-३२ अ
ईठ = (इष्ठ) मित्र । ३-५४
ईठि = सहेली । ६-३०
ईर = 'पीर' शब्द के अंत्य अंश की अनुवृत्ति । २३ १३
उछंग = (उत्संग) गोद । ४-३०
उछरत = उछलता है । २१-२५
उछाह = (उत्साह) उमंग । ४-५
उडुगन = तारे । २३-४४
उतंग = (उत्तुंग) उच्च । ४-४८
उतपल = (उत्पल) कमल । १०-३६
उतरीय = (उत्तरीय) ओढ़नी । २२-६
उतरु = उत्तर । ४-३२
उताल = उतावली में । २-५३
उताली = उतावली, शीघ्रता । ११-११
उत्साह-ठान = उत्साह की ठान, उत्साह की अभिव्यक्ति । ४-७
उत्साहिल = उत्साहित । ४ ५
उदयाद्रि = उदयाचल, पुराणानुसार पूर्व दिशा का एक पर्वत जहाँ से सूर्य निकलता है । १-२
उदोत = प्रकाश, प्रगट होना । २-२२
उद्दात = उदात्त । ३-१८
उद्योत = प्रकाश । ३-३३
उनमानि = अनुमानकर । ५ १५
उनहारी = अनुहारी, समता । १७-३०
उनीदता = (उन्निद्रता) नींद उचटना । २-५४
उन्नत = ऊपर छाए (ऊँचे) । १६-२३
उन्नतताई = उच्चता, कठोरता । १३ १५
उपखान = (उपाख्यान) कथा । १७-३४
उपचार = (विरह दूर करने के) प्रयास । १०-३६
उपदेश = शिक्षा देना, जगाना । २-४६
उफिनातु = उबाल खाता है, उफनता है । १२ १२

कंदरप=(कदर्प) कामदेव । १०-१०
कटुक=गेंद । ८-८९
कंबु=शंख । ६-२
कंसारि=कंस के शत्रु (श्रीकृष्ण) । ७-३
ककै=(कैकै) कर करके । ५-१४
कच=केश । ६-२
कचभार=चोटी । ११-१६
कजरारे=काजल लगे । ३-३१
कज्जल=काजल । ११-७३
कटक=सेना । १०-१३
कटीले=रोमाचयुक्त । ४-१८
कट्टि=काटकर । ११ ८
कठिनाति=कठोर होती है । ५-२५
कढी=निकली । २-३२
कढै=निकले । ७-६६
कत=क्यों । २-५६
कतल-काती=क़त्ल करनेवाली छोटी तलवार । ६-४
कथ्य=कथा, गाथा । १६-४६
कदंबिनि=कादंबिनी, मेघमाला । १३-४७
कद=शरीर । ४-२४
कदन=नाश करनेवाले, संहारक । १६-१७
कदम=कदंब (फूल) । ४-२४
कन=(जल) कण । २१-४१
कनकपात=धतूरे का पत्ता । १४-१५
कनकाभरन=सोने का आभूषण । १४-४०
कनखा=तिरछी चितवन । ७-६३
कनि=(कने) पास । १५-७
कनीनिका=आँख की पुतली । १५-६
कने=कण । २१-७८
कन्हाई=कृष्ण । १-८
कपि=बंदर (हनुमान्) । ३-१७
कपीस=श्रेष्ठ बंदर । २१-२५
कबिपंथ=कविपरंपरा । १-५
कबिराइ=(कविराज) श्रेष्ठ कवि । २-३३
कबूलि गो=स्वीकार कर चुका । ४-२४
कमलज=ब्रह्मा । २१-४३
कमल-से=कमल के समान, कम+लसे । २-१६
कमलाकर=सरोवर, तालाब । १४-४६
कमलाकला=लक्ष्मी की शोभा । २१-५३
कर=किरण, हाथ । ८-४६
कर=हाथ, कलाई । २०-१६ ।
कर=का । २१-६१
करकि=कड़क (उठा), टूटने की ध्वनि कर बैठा । ४-३४
करतलगत आमलक=हस्तामलक, प्रत्यक्ष । ११-३८
करतार=ब्रह्मा । २१-३८
कर तार (देत)=महसूल अदा कर देते हैं । २१-३८
करतूति=तूती पक्षी, करनी । २०-१३
करन=हाथों को । ५-५
करन=(कर्ण) कान । ८-६३
करन=कान; कर्ण (राजा) । १०-२७
करबीर=कनेर का फूल । १४ ३१
करहति डारै=कराहती हुई डाल देती है । १६-५६
कर हति डारै=(किंशुक के पुष्पों के कारण) काली दिखती डालें । १६-५६
कर हति डारैगी=हाथ से छाती को हत डालेगी (पीटेगी) । १६-५६

करहाट=कमलनाल । ११ ४३
करहाट=कमलों का समूह । ११-३३
करहिंगे कंठ=कंठस्थ करेंगे, याद करेंगे । १-६
कराई=कालापन । ८-६६
कराकृति=(कर + आकृति) सूँड का आकार । ८-७८ ।
करि देइ=कर दे । २-३५
करिवर=श्रेष्ठ हाथी । १०-२८
करी=हाथी । ८-६३
करुआई=कड़वाहट । २३-६७
करु=कड़वा । २३-६७
करोटी=कालापन । १७-४७
करोरि=व्याकुल होकर; करोड़ संख्या) । २०-१६
करोरै-करोड़ों ही । १४-११
कल=चैन, सुख । २-५८
कलई उघरैगी=वास्तविक रूप जाहिर होगा, भेद प्रकट होगा । १६-१६
कल धुनि=मधुर ध्वनि । २-५५
कलप=(कल्प) तुल्य, समान । ३-५४
कलप=(कल्प) काल का एक विभाग जिसे ब्रह्मा का दिन कहते हैं । ११-२३
कल पैये=चैन पाती हूँ । ४-२७
कलपैये-दुखी करूँ । ४-२७
कलरव=कोकिल । १७-२६
कलरौ=कलरव, पक्षियों की मधुर ध्वनि । १३-२३ ।
कलस=घड़ा । ८-८६
कलानिधि=चद्रमा । ११-२७
कलाप=समूह, झुंड । २०-१२
कलापी=मयूर, मोर । ४-१७
कलामुख=चद्रमा । ६-२५
कलामैं=गातें । १२-४३
कलिंद=जिस पर्वत से यमुना नदी निकलती है । १६-१३
कलिंदजा=यमुना । २-५७
कलिंदी=यमुना । १६-१३
कलोलैं=क्रीडाएँ, नीचे-ऊपर आगे-पीछे जाना आना । ४-१७
कल्प=तुल्य । ३-५५
कवन कौन । ६-२१
कवस्तुब=(कौस्तुभ) एक रत्न जो समुद्रमंथन के समय निकला था । २३-७२ अ
कसिबे=कसने के । २-६३
कसोटी=कसौटी, निकष । १७-४७
कहँरति=कराहती (है) । ५-२५
कहनावति=उक्ति । ६-१८
कहर=आफत, गजब । १५-१७
कहा=क्या । ३-५
कहिबी=कहना । ६-५१
कही = कथित कही हुई बात । ५-७
काकताल को न्याइ=काकतालीयन्याय, सयोगवश घटित होना । १५-११
काकु=कठध्वनिविकार । ७-५१
काढ़िबो=निकालिएगा । १३-२६
कादर=डरपोक । १६-६५, २१-३१
कानन=कानों (में) । ५-११
काननि=कानों में (श्रवणदर्शन) । २१-६०
कान्ह=कन्हैया । २-३
कान्हर = कन्हैया, श्रीकृष्ण । ६-५५
कामजेता = काम को जीतनेवाले । २१-६६

कामद=कामनादायक । ८-५३
कामदगैया=कामधेनु । २५-३८
कामदुधा=कामधेनु । १०-६
कामवत=कामवृत्तिवाला । २१-६१
कामैं=किसमैं, काम (कामदेव) का ही । २१-२१
कारनौ=कारण भी । ३-५५
कारी = काली । ६-३६
कारे चोर=काले रग वाला माखनचोर, श्रीकृष्ण । २३-१६
कारो = काला । २१-१६
काल=समय । २-१७
कालकूट = भयकर विष । ६-२७
कालिदास = कवि-नाम । १-१६
काल्हि = कल । २-५६
कास = काँसा, एक घास (जिसके फूल श्वेत होते हैं) । ८-१६
किंकिनियाँ=करधनी । २५-२१
किअ=किया । २१-७७
कित=(कुत्र) कहाँ । ५-२४
कितेक=कितने ही । ४-३२
कितै=कहाँ । २१-२५
किन=क्यों नहीं । २३-५३
किनूका=कण । १०-२६
किरकिरी=आँख में पडकर पीडा करनेवाला पदार्थ । १८-३६
किरनारि=किरणपक्ति । ६-३७
किरवानु=(कृपाण) तलवार । ६-ˆ६
किरातकुमारी=कोल-भीलों की लडकियाँ । २५-१६
किरीट=मुकुट । ५-११
किल=निश्चय । ८-८६
किसलै=नए कोमल पत्ते । २०-१५
किसानो=कृषक । ६-४६
कीक=कॉव कॉव । २१-४७
कीबी=करना । ६-५१
कीमति=शक्ति । २०-६
कीर=तोता । ३-४७
कीरति=(कीर्ति) यश । १-१८
कील=लोहे या काठ की मेख । २५-३५
कुज=अनेक सघन वृक्षों वाला स्थान । २-५७
कुजर=हाथी । ६-१४
कुत=भाला । २-२८
कुभ=घडा (स्तन) । १८-१८
कुचाली=नीचता, कुटिलता । १३-३३
कुठाल=कुठार, कुल्हाडी । ८-८६
कुदारु=कुत्सित काष्ठ (वृक्ष) । ८-६४
कुनेहिल=अस्नेही, पापी । २१-७८
कुवलय=(कु + वलय) पृथ्वीमडल, कमल । १०-१७
कुवलय=कुमुदिनी । १६-१२
कुवलय=नीला कमल, कुई; हाथी, भूमडल । २०-७
कुवलै=(कुवलय) रात में फूलनेवाला सफेद कमल, कुईं; दिन में फूलनेवाला कमल, नील कमल । २-१७
कुमुख = कुत्सितमुख । ८-४६
कुरग = मृग । १२-३३
कुरवान = निछावर । १२-२२
कुरबिंद = (कुरुविंद) कुल्माष, लालकुलथी । ३ ५८
कुरर = पक्षीविशेष, क्रौंच । २१-७२
कुराई = नीची-ऊँची भूमि । १२-२०
कुरूपता = असुदरता । १ १३

कुलकानि = वंश की मर्यादा। १२-२२
कुलकानिनि=कुल की मर्यादा का विचार करनेवाली। १७-३३
कुलधरम = कुलधर्म, वंश की मर्यादा। २-२५
कुस = कुश, राम के पुत्र, लव के भाई। २१-३२
कुहू = अमावास्या। ११-२५
कूर = अज्ञान, मूर्ख। २-३६
कृत = किया हुआ। १६-४६
कृतारथ = सफलमनोरथ, कृतकृत्य। १६-१६
कृतु = कृत्य, कार्य। १०-१६
कृपानि=(कृपाणी) तलवार। १६ ६२
कृपाबारिधर = दया के बादल। १६-२५
कृमि = कीड़े। ४-३७
कृसान=(कृशानु) आग। २-२६
कृसोदरी = (कृशोदरी) क्षीण कटि-वाली। २५-१६
कँवार = (कपाट) किवाड़। २१-५६
केका = मोर की बोली। १०-३७
केकी = 'केका' ध्वनि करनेवाला मोर। ७-१३
केतकि = केतकी, केवड़ा। १०-१२
केतकि = कितनी। १०-१२
केतकी = केवड़े का फूल। १६-५७
केतकी = कितनी ही, अत्यंत। १६-५७
केती = कितनी। २१-२७
केदार = क्यारी। १४-४०
केलियै = केलि के लिए।
केसरि = किंजल्क। १०-१२
केसरि-आड = केसर का तिलक। १८-१६
केसव = कवि केशवदास। १-१०
केसौ = आचार्य केशवदास। १-१६
केहूँ = किसी प्रकार। ११-२३
कै = अथवा। २३-६२
कैतव = बहाना। ६-३१
कैवा=कई बार। १४-२३
कैरव=कुमुद। १०-१७
कैसो=कैसा; (कै + सौ) कितने सौ। २०-१६
कौंप=कोंपल। २३-८२
कोक=चकवा। ८-४२
कोकनद=लाल कमल। १७-१३
को कहै=(कोक) चकवा पक्षी; कौन कहे। २०-१३
कोटि=करोड़। ११-२३
को तो=कौन था। २५-३६
कोदंड=(कोदड) धनुष। ४-३४
कोद=ओर। १५-१८
कोद=दिशा। २१-३१
कोन=कोना। ४-३६
कोप=क्रोध; कोंपल। २०-१५
कोप=कोप्र। २१-३१
कोपजुत=कोंपलयुक्त; क्रोधयुक्त। २-४५
कोबिद=पंडित। ८-५१
कोविद=(कोविद) पंडित अर्थात् ब्रह्मा। २१-३१
कोर=नोक। १०-२२
कोरिकै=खुरचकर। २५-२
कोरी = कोमल। १३-४७
कोरी = जुलाहा। १४-१६

कोल = शूकर, पृथ्वी का भार उठाने-
वाला। २१-३१
कोस=छत्ता, धन। ८ ३८
कोस=(कोश) म्यान। ११-१६
कोस=(कोश) सञ्चित धन, खजाना। ११-१६
कोस=निधि, गर्भ, बीच का भाग, म्यान। २०-६
कोह=क्रोध। १८-६
कौतुक=खेल। १३-१३
कौनप=(कौणप) राक्षस। २१-३१
कौर=ग्रास। ४-३७
कौल=कमल। ६-२
कौलपानि = कमलपाणि (विष्णु)। २१-६१
कौहर=इद्रायन, इनारू। ३-५४
क्यौँ हूँ = किसी प्रकार। २-३३
क्वै = कोई। २१-६५
खगा=कमी। २१-४७
खजरीट=खजन। ६-१६
खए=बाहुमूल, पखौरा। १३-४२
खगपतिपतितियपितुवधू जल=खगपति (गरुड) पति (स्वामी, विष्णु) तिय (स्त्री, लक्ष्मी) पितु (पिता, समुद्र) वधू (गगा) जल। ?३-२३
खगाधिप=पक्षिराज गरुड। ८ ७५
खगासन=गरुडवाहन, विष्णु। २१-६१
खगी=लीन हुई। २५-१५
खग्ग = (खड्ग) तलवार। १६-८
खचि (रही =एकत्र कर रही है। १२-३४
खड्ग=तलवार। ?१-५६
खड्गी=गैंडा। १४-३५
खन खन=क्षण क्षण। २१-४१
खर=तिनका। ४-३६
खराई=खारापन। ८-६६
खरी=अत्यत। ४-५२
खरे=अत्यत (या खड़े)। २१-७८
खरो=अत्यत। १८-१५
खरो = खडा। २०-१६
खरोट = खरौंच, नख-क्षत १४-३६
खल = खरल, दुष्ट। १२-१५
खलक = जगत्। ?१-४५
खलकत = खलभली हो जाती है। ११-३५
खलाजै = (खला=दुष्टा + जै = जय) दुष्टाओं को जीतनेवाली। २१-८६
खानि खानि = खान की खान, अनेक। १६-५३
खाली = रिक्त, केवल। १२-१५
खिस्याइ = (भेद के खुलने से) लज्जित होकर। ६-१४
खीन = (क्षीण)। ६-३८
खीलै = कील की भाँति जडता है। ८५-३५
खेत = (क्षेत्र) तीर्थस्थान, उपजाने की भूमि। ६-४६
खेलार=खिलाडी। १०-३५
खेह = धूल। ७-२८
खैखै = झमट, झगडा। ?१-४७
खोजा = (ख्वाजा रनिवास का नपुंसक भृत्य। २४-६
खोटि = दोषयुक्त। १२-४३
खोटी = खोटापन, कालापन। १७-४७

खौरि = चंदन का तिलक । ६-१६
ख्याल = खेल । ५-७
ख्याल = ध्यान । ५-७
गगाबासी=गगा में बसनेवाले; गगा के किनारे बसनेवाले । २-२१
गज = समूह । १२-१०
गधवह-(सुगंधित) वायु । ८-७७
गँवारिनि=गाँव की रहनेवाली, भोली । १२-२६
गई करि जाहि = छोड़ दे । ५-१४
गगनु = गगन, आकाश । २१-७८
गज = हाथी; नापने का औजार । १२-१४
गजकुभ = हाथी का मस्तक । ८-८६
गजमुकुता=(गजमुक्ता) हाथी के मस्तक का कल्पित मोती । ६-३८
गजराजु = गजरा (लंबी माला) ज्ञु, श्रेष्ठ हाथी । २०-५
गजाइ = गाँजकर, एकत्र कर । ११-२३
गतागत = (गया आया) सीधा उलटा । २१-२६
गति = दशा, स्थिति । २-४८
गथ = पूँजी । ८-८६
गदगद = गद्गद्) अत्यधिक आवेग से पूर्ण होकर आत्मविस्मृत हो जाना । ४-२४
गन = गण (शिव के) । २१-४५
गनपतिजननीनामबल =
१—गल = गला ।
२—नल = फौवारा ।
३—पल = मास ।
४—तिल = (तिलदान) ।
५—जल = पानी ।
६—नल=राम की सेना का बदर ।
७—नील=राम की सेना का बदर
८—नाल = कमल का डठल ।
६—मल = विष्ठा ।
१०—बल = बलराम ।
११—गनपतिजननीनामबल = गणेश की माता पार्वती (शक्ति) के नाम के बल से । २१-२५
गनराउ=गणराय, गणपति । १६-१७
गनाउ = गिनाओ, मानो । ४-८
गनि = गणना करके, गिनकर । २-२
गनै = (गण) समूह को । २१-७७
गब्बर = गर्वीले । ६-७०
गभीर = गहरा । ८-८४
गयंद = (गजेंद्र) श्रेष्ठ हाथी । ४-१६
गरलगर = गले में महाविष धारण करनेवाले २१-४५
गरा = गला, कठ । २१-२७ अ
गरू = (गुरु), गौरवशाली । ८-५०
गरुआई = गुरुता, भारीपन । १२-१८
गरे = गले में । २०-५
गर्भ = हमल । ५-१७
गर्भ = गर्व, घमड । ५-१७
गल = गला । १०-३६
गल्ल = बात । २३-१७
गवइँ = गाँव (का) । २-३८
गवावैं = गँवाते (खोते) हैं; गवाते गाने के लिए प्रेरित करते हैं । ३-५२
गसी = चुभी । २१-७५
गहागहे = (गहगहे) प्रसन्नतासूचक । २१-४७

गाड़ = गर्त, गड्ढा । ६ ६८
गाड़े = गड़े हुए, अटल । ६-३५
गाडो = (गाडा) गड्ढा । ३-४८
गात = (गात्र) शरीर । ४-१८
गातु = (गात्र) शरीर । १७-१२
गारेहूँ = डालने पर । ८-७०
गारो = ईंट जोड़ने का मसाला ।७-२८
गारो = गर्व, गारा (बरी, चूने आदि का) । १७-१४
गारो = अहंकार, गर्व । २१-६६
गिरिजा = पार्वती । १०-३६
गिरिजाई = हिमालयपुत्री पार्वती ही । २५-३
गिरिधारी = श्रीकृष्ण । १०-३७
गिलि गए = गीले हो गए । ६-३५
गीश्र = गीत । २१-४७
गुंज = (गुजा) घुँघची । ५-११
गुडहर = अडहुल का फूल, जपापुष्प । ३-५४
गुन = माधुर्यादि गुण । १-१८
गुन = (गुण) रस्सी, प्रत्यचा । १०-१६
गुनकरनी = गुण की करनी करनेवाला, गुण (डोर) और करनी (एक औजार) । १२-१४
गुनजाल = गुण का समूह, (आँखों के) डोरों का समूह । १५-६
गुनन्द = गुणों, तागों । १०-२६
गुनि राखौ = विचार कर लो । २-४
गुने = समझने पर । २२-५
गुमान=गर्व, घमंड । २१-२७
गुरगनि = गोरे अंगों में ।
गुर = गुरु । २६-१८
गुरजैं = (गुर्ज) गदाएँ । १६-४७
गुरुजन = नृत्य गान की शिक्षा देनेवाले उस्ताद लोग, (गुर्ज = गदा) गदाओं । २०-५
गुरौ = बृहस्पति ग्रह जिसका रंग पीला है । १८-१६
गुलाम = दास, सेवक । २५-४३
गूँदती = (केश) गूँथती है । २३ ८२
गूँदे = गुँथे हुए । १०-३६
गूजरी = ग्वालिन । १६-५८
गृही = गृहस्थ, घर बनानेवाला । १२-१४
गै गै = जा जाकर । २१-५५
गैबो = गान करना । ५-४
गैल = गली, मार्ग । ६-५४
गोइ = छिपाकर । ६-६
गोए = छिपाए हुए । ५-२४
गोत = (गोत्र) । १४-५
गोप = अहीर, ग्वाला । २-३८
गोप = गोपन, छिपाव । १६-६
गोपी रहो = गुप्त रही । ४-१४
गोरस = दूध, दही । १२-२६
गोसाँई = गोस्वामी । १-१०
गौने = चलने । ४-१६
ग्राम्य = ग्राम्यदोष । १६ १४
ग्राह = मगर । १६-७५
घन-अक्षरी=घने अक्षर, घनाक्षरी छंद । २०-१२
घटा = (गजघटा) हाथियों का समूह । ६-२०
घटिका = घड़ी (ढाई घड़ी का घटा होता है) । २१-२७

घतियाँ = घातें। ५-२४
घनसार = कपूर या चंदन। १६-७०
घनस्याम = श्रीकृष्ण, बादल। २०-१५
घनी = बहुत, अनेक। २-३०
घनु = बादल। २२-१५
घनेरे = घने, अनेक। २२-३
घरीक = (घडी + एक) घड़ी भर। ५-६
घरी दूघरी = घडी दो घड़ी में, शीघ्र ही। १६-५८
घहरानि = गर्जना। ६-२०
घाँघरो = लहँगा। ११-८
घाइ = घाव, चोट। १३-५२
घाइ = घूमकर, चक्कर काटकर। २१-४७
घाउ = (घात) घाव। २३-६
घात = दाँव। २३-५१
घाम = (घर्म) धूप। ६-३७
घाय = (घात) चोट, घाव। ६-३५, ८-२७
घालही = नष्ट कर देती है। ३-४७
घाले = नष्ट किए। २५-४२
घावरे = घामड, नासमझ। ८-८६, १७८
घिन = घृणा। ४-१-
घिनात = घृणा करता है। ४-३७
घीअ = (घृत) घी। २१-४७
घुमरि = घुमड़कर। ६-२६
घोरो = घोडा। २१-१५
घिना = घृणा। २१-२५

चचरीक=भ्रमर, भौंरा। ७-२७
चंडीपति=शिव। ७-२७
चँडोलनि=हाथी के हौदे के आकार की पालकी। १०-४०
चद्रक=कपूर। ४-२८
चंद्र-खत=द्वितीया का छोटा चद्रमा; नखक्षत। १३-१४
चंद्रभागा=राधिका की सखी। १२-४३
चंद्रिकनि=मोरपंख में की चद्राकृतियों के (पास)। १५-७
चंद्रिका पख=जिस पख पर चंद्रिका बनी हो, मोरपंख। १६-६
चपलतिका=राधिका की सखी। १२-४३
चँबेली = चमेली। २-५७
चकि = चकित होकर। ११-१४
चक = (चक्र) दिशा। ७-२७
चक्कवै = चक्रवर्ती। ७-२७
चक्र = पहिया। १-१२
चक्र=विपत्ति। ७-२७
चक्रधर=सुदर्शनचक्रधारी, विष्णु। ७-२७
चक्रवती=चकवा के आकार के, चक्रवर्ती राजा। १०-२२
चक्रवाक=चकवा, स्तन। ८-३०
चक्षुश्रवा=जो आँख से सुने, सर्प। २३-३
चख=(चक्षु) नेत्र। ८-३७
चख=उपमान पद्म। १२-४२
चखमृगों=मृग के नेत्र के समान नेत्रवाली, मृगनयनी। २३-२५
चटक=छटा, चमक। ४-१६
चटकीलो=चमकीला। ४-३८

चतुरानन = ब्रह्मा । ७-२७
चनूर=(चाणूर) कंस का प्रख्यात मल्ल । ४-३६
चपला=बिजली । ६-२६
चबाई=चबाता है, काटता है । ६-२५
चय=समूह । १५-४५
चर=सचारी । २५-१
चर-अचर = चराचर, जड़-चेतन । ११-४७
चरचा = वर्णन, जिक्र । १-१०
चरबन = चर्वण (करती है, चबाती है) । ५-५
चर्न = चरण, पैर । २३-३२
चल = अस्थिरता, अनिश्चय । ४-३२
चलदल पान = पीपल का पत्ता । २०-१२
चलन = प्रसग । १६-५६
चलन = प्रस्थान । १६-५६
चलन = गतिशील, प्रज्वलित होनेवाली । १६-५६
चलिहैं = चलेंगे, (शरीर त्याग देंगे) । ५-२२
चवाई=बदनामी करनेवाले । १३-४४
चाइ = चाव । ६-२५
चाउ = प्रबल इच्छा । ६-६८
चामर = चँवर, चौर । १६-२२
चाय = चाह । २-६३
चारि के अक = (४) चार के अक की भाँति बीच में पतली । ८-२०
चारि पदारथ = चारो पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) । ३-३८
चारु = सुदर, श्रेष्ठ । १८-११,
चारो = चारा, पक्षी आदि का खाद्य । ३-४८
चारयो-फलद = चारो फलों (धर्म, अर्थ काम मोक्ष) को देनेवाले । ७-२७
चाहि = बढकर । २-५७
चिंतामनि = कवि नाम, भूषण के बड़े भाई । १-१६
चिंति = चिंता करके । ५-२५
चितै = देखकर । २५-४४
चितौने = देखने, निरखने । ४-१६
चित्तचाही = मनचाही, इच्छित । ६-३३ अ
चित्र = चित्रकाव्य, कमलबधादि । १-१८
चित्ररेखा = एक अप्सरा । ८-३७
चिरानी = पुरानी । ७-२७
चिरी = (चिडिया) पक्षी । ६-३५
चिरु = बड़ी चिडिया, चिरकालीन । २०-१३
चिरैया = चिडिया (गरुड) । ७-२७
चिहुँटाइ = चिपटाकर, (निकट से) । १४-३०
चिहुटनी = घुँघची । १४-३०
चीरादिक = वस्त्रादि । ६-४६
चुनियाँ = चुन्नियाँ, माणिक या रत्न के छोटे टुकड़े । २५-२१
चूरे = चूड़े, कड़े । १६ १५
चूहरा = चाडालिनी । ७-२७
चैत = चेत, होश । २१-८१
चोख = चोखा, उत्कट । २५-३४
चोखी = तीक्ष्ण, तेज । ६-२५
चोप = उमंग । १८-४१

चोपकारियै = उमगित करनेवाले । ७-२७

चौकी = रखवाली । १६-१६

चौखँडे = घर के चौथे खंड पर (से) । ६-२० ।

चौदह बिद्यनि=चौदह प्रकार की विद्याएँ—चारो वेद, छओ अंग, मीमासा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण । १-१

चौबाहु=जिसके चार बाहें हों (गणेश जी का विशेषण) । १-१

चोहरी = चार घेरेवाली । ६-२५

छई = छाई हुई । २-४८

छकाइ (देत) = तृप्त (कर देती है) । ४-५३

छकिकै = छककर, तृप्त होकर । ४-२२

छजतु = सोहते हैं अर्थात् सिद्ध होते हैं । ११-१६

छनजोति = बिजली । १०-५

छनदान = (क्षणदान) आनंद का दान, (क्षणदा) रात्रि; निशा, रात; गोरस का प्रतिक्षण दान (कर) । २०-७

छनु = क्षणमात्र में । २१-६०

छनेक = क्षणभर । १६-३१

छपती = छिपती (है), समाप्त होती (है) । १६-५७

छपाइ = (क्षपा) रात्रि ही । १६-५७

छपाइ = (षट्पद) भौंरा । १६-५७

छपाइ = छिपाकर । १६-५७

छपाइ = छाप, दाग । १६-५७

छबिजेय = शोभा को जीतनेवाला । ३-३

छबिभूषन = गहने की शोभा । २१-२७

छबीलिनि = शोभावाली स्त्रियाँ । १७-३०

छरियादार = छड़ीबरदार, द्वारपाल । ३-१८

छला = छल्ला, मुँदरी । ६-५०

छवा = एँड़ी । १६-१३

छाँह = प्रतिबिंब । ४-५२

छाँह = शरण । १३-१६

छाकी = छकी, अघाई हुई । १-१८

छाके = छके हुए । १०-३६

छामता = (क्षामता) कृशता, क्षीणता । ११-१२

छामिनी = क्षीण । १५-५०

छामोदरी = (क्षामोदरी) क्षीण कटि-वाली । ११-७

छाया = सूर्य की एक पत्नी; कालिमा (छायाक = चंद्रमा), कात्यायनी; सौंदर्य । २०-७

छार = धूल । १६-१६

छिगुनिया = कानी उँगली, कनिष्ठिका । ६-५०

छिति = (क्षिति) पृथ्वी । ११-३१

छिन = क्षण । २-६३

छिया = छोकड़ी, मल । २४-७

छीट = छींटा । १०-३८

छीर = (क्षीर) दूध । १९-१२

छीरनीरन्याय = नीरक्षीरन्याय, दूध पानी की भाँति मेल, जहाँ पार्थक्य लक्षित न हो । ३-४६

छीलरि = छिछली तलैया । २५-११

छेम = क्षेम, कल्याण । २१-६५

छै = क्षय, नाश । २१-६५

छोने = छौने, बच्चे । १०-२८
छोभ = (क्षोभ) व्यग्रता, हड़बड़ी । २१-६६
छोर = किनारा, अग्रभाग । ११-४१
छोरति = खोलती है । ४-१८
छोरिकै = छीनकर । १६ २५
छोह = ममता, प्रेम । १२-१५
जँजीराजोर=जंजीरे का सा जोड़, श्रृंखलाबद्ध । ३ ४४, १८-६
जई = अंकुर । १३-४४
जकति = चकपकाती है । ५-२५
जकी = चकपकाई हुई । २-४८
जगभरा = विश्वभरा, पृथ्वी । २३-२२
जच्छिनी = यक्षिणी । १०-२६
जजीर = जंजीर, श्रृंखला । २१-८२
जतनै = (यत्न) उपाय ही । १५-२१
जति = जितने, कुल । २१-७२
जद्रिच्छा=(यदृच्छा) मनमानापन । २-२
जन = दास, सेवक । २१-२७
जनमजरी = जन्म से जली हुई । १३-७
जनी = स्त्री । १४-४३
जनी = दासी । १५-२३
जनेस = (जनेश) नरेश, राजा । ५-४
जनै = उत्पन्न करती है । २३-३४
जपा = जवा, अड़हुल । ८-१०
जम = (यम) । ११-२५
जमक = डटना । ८-१४
जमन (भाषा) = मुसलमानों की भाषा, खड़ी बोली । १-१५
जमाति = टोली । १४-१७
जमान = जमानतदार, जामिन । २-६२
जरद = पीले रंग की । ६-३५
जरबीली = भड़कीली । २५-२१
जरा = बुढ़ापा । २१-२७ अ
जराइ = जड़ाऊ, रत्नजटित । ५-४, २२-३
जराउ = रत्नों का जड़ाऊ काम । ६-३७
जराउ-जरे = रत्नजटित । १६-१५
जरावत = जलाता है । १२ १२
जरी = जली । १६-५८
जरे = जड़े, जटित । १७ ५
जरो = जला, जल गया । २१-१५
जल अनघ = पवित्र जल, गंगाजल । २१-४५
जलजा = लक्ष्मी । ११-४३
जलजात = जलज, कमल । १०-११
जलवा = 'जाल' का तिरस्कारसूचक रूप । २१-३२ अ
जलसाई = जलयुक्त । २५-२ अ
जलासै = (जलाशय) । ११-२३
जल्पति = बकती है । ५-२५
जवादि = जब्बाद, एक सुगंधित द्रव्य जिसे गंधमार्जार से निकालते हैं । १४-३३
जवास = (यवास) एक कँटीला क्षुप । ८-६२
जस = (यश) कीर्ति । ११
जस = यश, कीर्ति; [जन = लोग] । २१-३८
जसहद = यश की पराकाष्ठा । २१-६४
जसु = यश । २१-२७ अ
जहान = दुनिया, विश्व । ४-३८
जाई=उत्पन्न । १३-७

जाचिवे=याचना करने,माँगने। १०-१५
जाड़वै=जाड़ा ही। ६-१२
जातरूप=सोना। ६-६६
जान=(सुजान) पडित। २१-२६ अ
जान=जानकर। २१ ८१
जान=जानो, समझो। २१-८२
जानकीरवनयस=जानकीपति श्रीरामचद्र का यश। २१-२६ अ
जानन्ह=यानों (चंद्रमा के)। २१-८२
जानत्री=जानिए। २१-३८ अ
जानु=जाँघ। २-६३
जापी=जप करनेवाला। ८-८५
जाम=(याम) प्रहर। २५-४३
जामिनि=(यामिनी) रात्रि। २३ ७० अ
जामैं=जिसमें। १-१२
जाल=समूह। २-२६
जाली=जालीदार (ओढ़नी)। ६-३५
जावक=महावर। २१-१६
जाहि=जा, चली जा। २-६१
जाहिर=प्रकट, प्रत्यक्ष। ६-३८
जिकिर=जिक्र, चरचा। १२-१८
जी=मन, चित्त। ४-१८
जीगना=जुगनू। २२-१५
जीजति=जीते हैं। २१-७२
जीमूत=बादल। २५-१६
जीय=जी, प्राण। २३-७० अ
जीरो=जियरा, जी। १३-१८
जीवन=जल, पानी। २-१६
जीवन=पानी; जिंदगी। ८ ८५, १२-१३
जीहा=(जिह्वा) जीभ। ५-१४
जु=जो। २-४
जुगुति=(युक्ति), उपाय। १२-४३
जुत=युक्त। २-७
जुतजोति=ज्योतियुक्त। ८-८०
जुथ्थप=(यूथप) सेनापति। १६-८
जुवा=(युवा) जवान। २१-२६
जृंभ=जँभाई, जमुहाई। २-५४
जैतुवार=विजयी। १३-२४
जोगुनू=जुगनू, खद्योत। ८-७५
जोर=बल, शक्ति। ५ ५
जोहारै=प्रणाम करे। ८-८८
जो=यद्यपि। २१ ८२
जोग=योग, स्थिति। २-३१
जोजित=(योजित) संयुक्त। १२-८
जोटी=जोडी। १७-४७
जोति=ज्योति, ज्योत्स्ना। ४-४६
जोति=(ज्योति) प्रकाश; जोतकर। ६-४६
जोधा=(योद्धा) वीर, सिपाही। ३-२६
जोन्ह=ज्योत्स्ना, चाँदनी। २१-८१
जोर=बलपूर्वक, बरबस। ५-१७
जोहै=देखती है; जो है। २०-५
ज्ञान=सुधबुध। २१-६०
ज्ञानिये=ज्ञानी ही। १-१६
ज्यान=नुकसान, क्षति। २०-१६
ज्यावन=जिलानेवाला। ८-६५
ज्यौं त्यौं=किसी प्रकार, कठिनता से। २-६१
ज्यौं=जी। ११-३५
ज्वलन=आग, जलन। ६-२१
ज्वाब=जवाब, उत्तर। १०-१६
झपि=ढककर, छाकर। ६-५३

झँवावती = झाँवे से पैर की मैल छुड़-वाती है। ११-३४

झखकेतु = मीनध्वज, कामदेव। १३-६, १८-१६

झगा = बच्चों के पहनने का ढीला-कुरता। १६-१५

झझकारती = झिड़कती है, डाँट बताती है। १७-६

झमक = झनकार। ८ १४

झर = (पानी की) झड़ी। ४-१७

झर = वर्षा की झड़ी, (चमत्कारार्थ—ज्वाला)। १६-४७

झरसै = झुलसती है। १६ ४७

झर्पि = झोंका देकर। १६-४६

झलैं = (विष ही) बोल रही हैं। १६-४७

झल्लै = बकवाद करता है। २३-१७

झाँवतो हो = झाँवे से रगड़ता था। ५ २४

झाँवरी = झाँवे के रंग की, काली। २२ ८

झार = ज्वाला। १२ ६, १७ ८

झार = क्षुप, पौदे। २२-१७

झारति = झटकती है। २४-८

झिल्लो = झींगुर। ४-१७, २३-४४

झीन = अत्यंत महीन। ११-८

झुकति = रोष करती है। १७-६

झूठिए = झूठ ही। २१-८६

झोर = झटका। ६-२०

टकोर = टंकार, धनुष की ध्वनि। ५-१७

टकी = टकटकी। १५-४३।

टटको = टोटका, जादू। ६-३०

टहल = कार्य, काम। १२ २१ अ

टुक = थोड़ा, तनिक। २३-१७

टेक = संकल्प, सिद्धांत, शैली। ३-८

टोने = जादू। ४-१६

टोल = टोला, महल्ला। ६ ३६

ठई = युक्त। १०-४२

ठगि रहीं = ठगी जा रही हैं, स्तब्ध हो रही हैं। ८-३५

ठगौरी = ठगविद्या। ८-२८

ठट्ट = समूह। ४-३५

ठमक = ठसक। ८-१४

ठरी = अत्यंत शीतल। १६ ५८

ठहराइये = निश्चित कीजिए। ३-३१

ठहरात = ठहरता है, निश्चित होता है। २-१४

ठहरैहै = स्थिर होगा, काम में आएगा। १-८

ठाइँ = (ठाँव) स्थान में। १-१०

ठाउ = स्थापित करो, समझो। ४-२०

ठान = ठानो, स्थिर करो। २-२७

ठिकु = ठीक। १८-३०

ठौनि = ठवनि, मुद्रा। ९-४८, १८-३०

ठौर = स्थान, बदले। ११-१६ २१-२८ अ

डंबर = विलास। १४-४३

डगरी = चली। २-२६

डगी = डगमग करती। १६-२१

डगुलात = डगमगाता है, हिलता है। ५-१०

डरारी = डरावनी, भयावनी। १०-३७

डरारे = डरावने। ५-११

डहकायो = खोया, गँवाया। १५-१५
डहरैं = (डगर) गलियाँ। १६-१३
डाभ = (दर्भ) कुश। २३ ४१
डीठि बचाइ = आँख बचाकर, छिपाकर। ५-६
डौंरू = डमरू। १०-३६
डौर = (डौल) तौरतरीका। ४-३७
डौरु = डमरू। १३-१८
डौल = डोल। ६-३६
ढर = उडिलना। ४-५३
ढलकत = लहराती है, फहराती है। ११-३५
ढारिकै = ढालकर, उड़ेलकर। ५-१४
ढिग = पास। २-१३
ढुरकी = हिलती। २५-२१
ढेल = ढेला। ७-२८
ढोरी = लगन। ५-१३
ढौर = प्रकार, ढंग। १६-५४
तंत=(तंत्र) धधा। १३-१२
तत= तत्र) रहस्य। २१-६१
ततु=कमलनाल के रेशे। ११-४३
तबू=खेमा। ८-८६
तँही=तू ही। ५-७
तकाइकै=तकाकर, देखभाल के लिए सहेजकर। १५-२३
तकिकै=ताककर, देखकर। ४-२२
तकै=ताकती है, देखती है। २-६०
तकत=देखती है। ६-७०
तकस=(तरकश) तूणीर। ४-३४
तच्छन=(तत्क्षण) उसी क्षण, तत्काल। ४-३५
तचि=तपकर, तप्त होकर। १२-३४
तडित=बिजली। ८-२४
ततच्छन=(तत्क्षण) उसी क्षण। ४-४५
तति=पंक्ति। १४-१
ततु=तत्त्व। २१-३६
ततुतौ=तत्त्वतः। २१-४६
तदै=(तदा ही) उसी समय। २१-७६
तन=ओर, तरफ। २१-७६
तनकौ=तनिक भी। २१-८०
तनमै=तन्मय, तल्लीन। ६-७
तनी=बंद। ४-१८
तनु=शरीर। २-४८
तनु=छोटा। ११-४२
तनु=क्षीण। १२-१८
तनुताई=क्षीणता। १८-२१
तनै=शरीर के। १५-२१
तपपुंजनि=तपस्या का ढेर। १-१०
तपी=तपस्वी। २१-२६
तम=अंधकार, तमोगुण। ८-४६
तमक=जोश। ८-१४
तमतोम=अंधकार का समूह। ६-२०
तमराइ=(तमराज) घना अंधकार। २२-१५
तमीले=तमोगुण वाले, क्रुद्ध। ६-६५
तमोल = (ताम्बूल) पान। ६-३६
तरकि=तर्क करके। ५-१५
तरकि गईं=तडक गईं, टूट गईं। ११-१२
तरक्कि=तडक (उठा), चिटक (गया)। ४-३४
तरनि=तरणि, सूर्य। ८-५१
तरनी=नाव। २५-३८
तरपै=तडपती है, कडकती है। १६-४७
तरलो=द्रव (जल)। २१-८१

तरवारी=तलवार । १०-३७
तरह=ढब, प्रकार । ६-६६
तरिवर=तरुवर, वृक्ष । १०-२८
तरु=वृक्ष । ६-२०
तरु=तरुण (बड़े), वृक्ष (चमत्कारार्थ) । १०-१६
तरु = तर, नीचे । २३-८२
तरुनि=तरुणी, नायिका; वृक्ष । २०-१५
तरे=तले, नीचे । ६-६ अ
तरैयन=तारों । ८-५७
तरैयाँ = तारे । २२-१५
तर्जि=तर्जना देकर, धमकाकर । १६-४६
तल = (पैर का) तलवा । ८-४२
तलास=(तलाश) खोज । ५-१५
तस्कर=चोर । १३-३२
तहँ=वहाँ ।२२-५
ताए=तपाए हुए । ११-२५
ताकी=उसकी । १ १८
ताडित=पीडित । २३-७० अ
ताते=उस प्रिय से । २१-४६
ताते=इसलिए । २१-४६
ताते=तप्त । २१-४६
तातैं=तिससे, उस कारण । १-८
तापत=संतप्त करता है । ३-२२
तापनि = तापों से, ज्वालाओं से । २३-७० अ
तातपर्ज=तात्पर्य, अभिप्राय । १६-४८
तापर=तिसपर, उसपर । ५-१४
तापसी=तपस्या करनेवाली । ४-२८
तामरस=कमल । ८-८६
ताय=(ताप) गरमी । ६-३५
तार=ताल, मँजीरा । ४-१६
तार=(कमलनाल तोड़ने पर दिखाई पड़नेवाला) रेशा । ८-३३
तारका=ताडका राक्षसी । २३-५२
तारमुलम्मे=कलाबत्तू के । २२-६
तारिका = आँख की पुतली । १५-५५
तारे = सितारे (मोती के आभूषण) । ६-८
तारे = आँख की पुतलियाँ । २१-४१
तारे कसै = अपनी पुतलियों को जाँचती (टिकाती) है। २१-६२
तारे कसौटिन = पुतलियों रूपी कसौटियों पर । २१-६२
तासु = उसके । २-३७
तिक्ख = तीक्ष्ण, तेज । १६-४६
तिन = तिनका । २२-१६
तिनूका = तिनका । १०-२६
तिमहले = (घर के) तीसरे खंड (पर), तिमंजिले (पर) । ६-५
तिमिंगिल = मछली को निगल जाने-वाला समुद्री जलजीव । २५-३६
तिमिर = अंधकार । १३-५०
तिमिरारि = सूर्य । २२-१५
तियानि = स्त्रियों । १-११
तिरि = तिरकर, तैरकर । ६-६८
तिल आधु = आधे तिल के समान, अत्यंत छोटा । ५-२०
तिलक = टीका (गूढ ग्रंथ की), तिलक वृक्ष (वन में), तिल+क = पानी (तर्पणी में), घोड़ा (गोनी लादने-वाला), जनाना कुरता (गणिका), शिरोभूषण, टीका (बाल = सौभाग्य-

वती स्त्री); चंदन का टीका (भूमि-देव = ब्राह्मण) राजतिलक (भुवि-पाल = राजा) । ३-५३
तिल तंदुल से = तिल और चावल की भाँति पृथक्-पृथक् प्रतीत होनेवाले । ३-४६
तिलाम = तलाश, खोज । १७-३६
तिलोत्तमै = (तिलोत्तमा) एक अप्सरा । ७-१२
तिहूँ ताप = दैहिक, दैविक और भौतिक । ६-३१
ती = (स्त्री) नायिका । ३-४८
तीखी = तीक्ष्ण । १२-२७
तीछन = (तीक्ष्ण) तेज । २५-३५
तीत = अप्रिय । २१ ४६
तीतातीत = परस्पर तिक्त (अप्रिय) । २१-४६
तीति = (स्त्रीलिंग) अप्रिय । २१-४६
तीते = अप्रिय (बहुवचन) । २१-४६
तीतै = तिक्त ही, अप्रिय ही । २१-४६
तीरथ वेनी = त्रिवेणी, प्रयाग । २-६
तीसु = तीस (३० घड़ी रात्रि) । २१-२७ अ
तुअर = तमूरा । ४ १६
तुका = बिना फलवाला तीर । ६-३५
तुकौर = तिरस्कारसूचक सम्बोधन करना । २१-३२
तुचा = (त्वचा) । ६-८ अ
तुपक = छोटी बंदूक । ११-४६
तुनीर = (तूणीर) तरकश । १०-३०
तुरंग = घोड़ा । २-१८
तुराई = रजाई । १०-२६
तुरी = घोड़ा । १०-३५
तूठि = तुष्ट होकर । २१ ८६
तूरति = तोड़ती है । १५-१३
तूल = रूई । ८-७६
तूल = विस्तार । २५-३०
तेँहु = तो भी । २१-८२
ते = वे । २१-४७
तेता = उतना ही । २१-६६
तेह = वेग । १७-८
तेह = क्रोध । १२-३८, १७-८
तैं = तू । २-५४
तै = तपकर । २२ ८
तैये = तपाऊँ, तप्त करूँ । ४-२७
तौंबरि = तूँबड़ी, कद्दू । १३-४४
तोते = तोता, सुग्गा; तुमसे । २०-१३
तोते = तुमसे । २१-४६
तोपिकै = तोपकर, ढककर । ८-७६
तोम = समूह । ८-७३
तोरत = तोड़ता है; (तो + रत) तुझ में आसक्त । ६-५३
तोर्‌यो = तोड़ा । २-१४
तोल = तौल । ६ ३६
तोष = कविनाम । १-८
तौर = ढंग, तरीका । २१-८६
त्रिचख = त्रिचक्षु (गणेश का विशेषण) । १-१
त्रिदस=देवता; तेरह (चमत्कारार्थ) । १-१
त्रिधा = तीन प्रकार की । २५-३५
त्रिन तोरि = तिनका तोड़कर (सौंदर्य-रक्षा के लिए) । १७-६
त्रिनयन = तीन आँख वाला । २-१६
त्रिवली = पेट में पड़नेवाली तीन परतें । ८-४२

त्रिया=स्त्री। २३-३
थभ=स्तंभ। ४-१३
थँमि थँमि=रुक रुककर। ४-१७
थरथरी=कँपकँपी। ४-३६
थल=स्थल, अग। ४-३२
थलक्त=डोलती है, हिलती है। ११-३५
थली=स्थली। ८-५८
थहरै=हिलती है। ६-८
थाई=स्थायी। ४-८
थान=स्थान। १४-२६
थाप=स्थापना, चिह्न। १८-१८
थापिये=स्थापित कीजिए, आरोप कीजिए। २-३३
थिर=(स्थिर) स्थायी। ४-१
थिरता=(स्थिरता) अचंचलता। ३-४५
दंपति=नायक और नायिका। ४-२३
दई=दैव, ब्रह्मा। १०-४२
दई=दिया है, अर्पित किया है। १०-४२
दई के निहोरैं=दैव के निमित्त, ईश्वर के नाम पर। ५-२४
दईमारी=दैव की मारी, अभागिन। २-२५
दच्छिनपौन=मलयवायु। १३-११
दगो=दग्ध किया। २१-८१
दनुजारि=दानवों के शत्रु, श्रीकृष्ण। १३-२६
दपटि=डपटकर। ४-३५
दमयती=राजा नल की पत्नी। ८-३७
दरक्बि को=फटने के लिए। १३-२६
दरद=(दर्द) पीड़ा। २१ ७७
दरप=(दर्प) रोष, गर्व। १०-१०
दरपन=दर्पण (आईना), दर्प (अहंकार) न। २०-५
दरम्यान=बीच। ११-३०
दरिद्र=दरिद्रता। ६-३३ अ
दल=पत्ता। २-११
दल=सेना। २-११
दल=पखड़ी, सेना। ८-३८
दलकत=फट जाते हैं। ११-३५
दलन=संहार। ४-४७
दलन=सेनाएँ; पंखड़ियाँ, संहार। २०-६
दलगीर=उदास, (दल=पत्ता, गिर=गिरना) पत्तों का गिरना। २०-१५
दवन=(दमनक) दौना। २१-७२
दवानल=(दावानल) दावाग्नि। ५-६
दवारी=दौड़। १०-३७
दसकध=रावण। ४ ३४
दसदिसि=दसो दिशाओं में, सर्वत्र। १-१
दसन=(दशन) दाँत। २-६८
दसबदन=दशानन, रावण। २१ ४३
दसैसिर=दस सिर वाला रावण। २५-४०
दह=(ह्रद) कुंड। २२-४
दहे पर दाहि देत=जले पर जलाता है। ५-१४
दाँजु=स्पर्धा। २३-६३ अ
दाउ=दाँव। १२-३८
दाख=(द्राक्षा) अंगूर। ३-६
दागै=दागता है, जलाता है। २१-७६
दाडिम=अनार। २२-१७
दातन=देनेवालों। ६-६६
दानि=दानी, दाता। १-१

दामवत=धनवाला । २१-६१
दार=हे स्त्री । २१-१५
दारनि=नारियाँ । १५-३४
दारनो=दलन करनेवाले । २१-६६
दारिद=(दारिद्र्य) दरिद्रता । ५-१५
दारु=काष्ठ । १०-२६
दार्यौ=(दाडिम) अनार । ८-२६, २२-१७
दास=सेवक; [दान = देना] । २१-३८
दासी=सेविका; [दानी=दाता] । २१-३८
दस-साध = देखने की लालसा । १८-३२
दिगम्बर = दिशाओं का वस्त्र; नग्न रूप । १३-१६
दिठौना = अनखा, काजल की बिंदी जो नजर बचाने को लगाई जाती है । १७-६
दिढताई = दृढ़ता । २४-६ अ
दिनराज = सूर्य । २-६७
दिया = (दीपक) चिराग । २-३२
दिविदेस = स्वर्गलोक । २५-२२
दीत्य = देय । १७-१७
दीनी = दी । १-१२
दीन्ही पीठि= विमुख हो गए । ३-३६
दीपति = दीप्ति । ६-६
दीपै = द्वीपों में । ६-६
दीबी = दे देना । ६-५१
दुअन = दुर्जन । २१-६३
दुकुल = (दुकूल) वस्त्र । १०-३५
दुचित = दुचित्त, अस्थिरचित्त । २-६०
दुज = (द्विज) पक्षी । २-१५
दुज = (द्विज) ब्राह्मण । ८-४१
दुजराज = (द्विजराज) चंद्रमा । ६-२५
दुजराज = बड़ा दाँत । ६-२५
दुज-लात=(द्विज = ब्राह्मण भृगु + लात=पैर) भृगुलता । ३-२२
दुजेस=(द्विजेश) श्रेष्ठ ब्राह्मण । १३-३८
दूजो = (द्वितीय) दूसरा । २-२०
दुतिय = (द्वितीय) दूसरी । २-२६
दुतिय = (द्वितीय) (नल के बाद) दूसरा । २१-२५
दुती = (द्युति) ज्योति । २१-२७
दुद्वै = दो दो । २१-२६
दुनौने = झुकने । ४-१६
दुपंचस्यंदन = दुपच (दश) स्यदन (रथ), दशरथ । २३-३१
दुपहरी = दुपहरिया का फूल, बंधूक । १७-५०
दुबर्न = दो वर्ण (रा + म) । २५-३७
दुरन = छिपने (के लिए) । ३-११
दुराइ = छिपाकर, निषेध कर । ३-१२
दुराइबे=छिपाने (को) ।१२-४३
दुराए=छिपाए । १७-३६
दुरैं दुरैं=छिपे छिपे । ५-१०
दुरेफ= (द्विरेफ) भ्रमर । ८-४३
दुस्तर=कठिन । १७-२४
दुहुँ=दोनों (को) । १-७
दुहुँघा = दोनों ओर । १०-३५
दूनो = दोनों । १५-२३
दूनो = दूना, दुगुना । १५-२३
दूषन = कर्णकटु आदि दोष । १-१३
दूषि = निषेध करके । १२ ३६
दृग बचाइ = आँख बचाकर, छिपकर । ४-४६

धुरेटति=धूल धूसरित करती है। १७ ४०
धूत=(धूर्त) चालाक। ६-२३
धूम=धुआँ। २-८
धूरिधारा=धूल का स्तंभ। ११-३५
धूसरित=मटमैला। १०-३६
धृग=धिक् (धिक्कार)। ५-२२
धौं=न जाने। ४-४६
नँदनद=श्रीकृष्ण। ४-२२
नकमोतियै=नाक के आभूषण मैं का मोती ही। १८-१६
नकछोन=नकछोल, नकलनोर, मुनिया पक्षी। २०-१३
नकारै='न' अक्षर। २१-३८
न की=नहीं की। २१-२६ अ
नखचद=नखाकृति चंद्रमा, द्वितीया का चद्र; नखक्षत। ६-४१
नग=रत्न। ३-१८
नगधर=गोवर्धनधारी, श्रीकृष्ण। २१-६१
नगन=नग्न, नगे। २१-४५
नगराजसुती=हिमालयपुत्री, पार्वती। २१-२७ अ
नछत्र=(नक्षत्र) ग्रह। १-१२
न जा=मत जा। २१-२६ अ
नजीक=(नजदीक) निकट। ११-१०
नत=(नतु) नहीं तो। २१-७१
नतरु=नहीं तो। २२-७
नति=नम्रता। १६-५१
नथुनी=नथ,नाक का एक आभूषण। १४-२६
नद्रसी=नवश्री, नवीन छटा। २१-८२
नभ=आकाश मैं, अधर मैं। ८-३०
नमामि=प्रणाम करता हूँ। २५-४४
नय=नीति। २१-२६ अ
नयरित्यन=राक्षसों का। २१-६६
नयहु=नवीन (से) भी। २१-७०
नयो=(दिन) ढल गया (शाम होने को आई)। १६-१२
नरक=एक असुर। २१-६६
नराच=बाण। ११-२५
नर-ती=पुरुष और स्त्री (मैं)। २१-२७
नव=९, नौ। २१-२६ अ
नव=नवीन, नई। २१-८६
नवनिद्धि=(नवनिधि) नव प्रकार के पद्मादि खजाने। १-१
नव बाल=नवोढ़ा। ३-३४
नवला=नवेली, नवोढा। ४ १६
नवेली=नवोढा। ६-२
नहनि=डोरी मैं। २४-८
नहि रह्यो=नध (रहा), लग रहा। २४-८
न हेलियै=तिरस्कार मत करो। २०-१०
नाँगो=नग्न, नगा। २३-११
नाईं=तरह। १-१०
नाक=नासिका। १६-६०
नाक=स्वर्ग। १६-६०
नाग (भाषा)=नागों की भाषा, पिंगलभाषा, अपभ्रंश। १-१५
नागर=चतुर। २०-६
नागरी=नगर मैं रहनेवाली। ६-६६
नाथप्रान=प्राणनाथ, प्रियतम। २३-२६
नारी=स्त्री, गोपी। ८-६३

नारी = नाड़ी। ८ ६३
नासा = नासिका, नाक। ३-४७
नास्यो = नष्ट हो गया, समाप्त हो गया। ३-३३
नाह = (नाथ) स्वामी। २१-३०
निकर=समूह। ११-१०
निकाम= हे निकम्मे। ८ ७३
निकाय=समूह। ६-७।
निकारि=निकालकर। ६-६
निकेत=घर। ७-६३
निखरी=साफ, स्वच्छ, नि + खरी (चमत्कारार्थ)। २०-१०
निखोटि=दोषरहित। १२-४३
निचोने=निचोड़ने। ४-१६
निचोल=ओढ़नी। ६-३६
निचौंही=नीचे की ओर झुकने में प्रवृत्त। २५-३अ
निजा सरा=अपने शर्णों से। २१ ८७
निजु निश्चय। १५-४७
नितम्ब=चूतड़। ६-३६
नित्त=(नित्य) सदा। १८-१०
निदरि = निरादर कर अपमानित कर। ६-२
निदानी=आदिकारणरूपा। २१-८६
निदानु=अंततोगत्वा, अंत में। ६-१२
निदाह=(निदाघ) ग्रीष्मकाल। ११-२१
निद्रा तज्यो = विकसित हुआ। २५-१५
निधि=कविनाम। १-१६
निपट= निपट) अत्यंत। ६-१६
निपात=नेवल। २-१२
निपात=पतन, गिरना, दूर होना। १५-४८
निवारिवे=निवारण। १२-१२
निबाहु=(निर्वाह)। ११-२२
निबिड़=घना। २३-२२
निमिष=क्षण भर, पलक भाँजने भर का समय। ३-१७
निमोही = निर्मोही, मोहरहित। २१ ५२
नियरो = निकट, समीप। १३-३६
निरंजन=मायारहित। २१-६६
निरखनि = दृष्टि, कटाक्ष। २१-६७
निरसंक=(नि.शंक) शंकारहित, निर्भय। ३-४१
नींव=(निंब) नीम। ८-८६ -
नीठि=कठिनाई से। २-५६
नीप=कदम्ब (पुष्प)। ४-१७
नीवी=फुफुँदी। ४-१८
नीरचर=जलचर, मछली। १२-४६
नीरज=कमल। १६-२२
नीरद=(नि + रद दाँतरहित। २३-१०
नीरप्रद=पानी देनेवाला, बादल। २१-७०
नीरे=निकट, पास। २१ ५५
नीबर=निर्बल, कमजोर। २१-७१
नील = नील (रंग), नील (संख्या)। २०-१६
नीलकंठ = कविनाम। १-१६
नीलन = नीलम (नीला रत्न)। ६-३७
नीलगुन=नीला तागा। १०-३६
नृत्तित (करत)=नचाती हुई। १६ ४
नेगी=नेग पानेवाले। (नेग=शुभ कार्यों के अवसर पर संबंधियों. आश्रितों आदि का देने पाने का हक)। १५ ५१

नेम=नियम। ४-१२
नेरैं=(निकट) पास। ६-४४
नेवाज=रविनाम। १-१६
नेवारी=चमेली से मिलता जुलता एक सफेद पुष्प। ११-७२
नेसुक=थोड़ा। १२-१८
नेह=स्नेह, प्रीति। ४-२८
नैन वारि=अश्रु, आँसू। १९-५६
नौमु=नवमी (नवरात्रवाली)। १०-३९
नौनि=नमित होने का भाव, झुकने का भाव। १८-३१
नौलवधू=(नवलवधू) नवोढा। ९-३९
न्याइ=(न्याय) उचित, ठीक। १०-१०
निलै=(निलय) घर, स्थान। १५-२३
निवारे=(निवारण) दूर किए (रहो)। १८ ३२
निसतारक=निस्तार करनेवाले, अंत तक पार लगानेवाले। २५-३७
निसरि गो=निकल गया। २१-१५
निसर्ग=स्वाभाविक। १९-५
निसा=इच्छापूर्ति; रात्रि। १५-३१
निसि=(निशि) रात। २-१७
निसेनी=(निःश्रेणी) सीढ़ी। ८-९२
निसेस=(निशा+ईश) चद्रमा। १५ ५०
निस्चल=अटल। २-४
निह्चल=निश्चल। २-६९
निहचै=निश्चय ही। ९-२४
निहारि लही=(हारिल) हारिल पक्षी; देखकर जाना। २०-१३
निहाल=परितुष्ट। २२-३
निहिया=(नि+हिया) हृदयहीना। २१-८२
निहोर=एहसान, कृतज्ञता। १७-३६
निहोरो=निहोरा, प्रार्थना, विनती। १६-१२
पगति=(पंक्ति) श्रेणी। ७-१२
पगु=जिसके पैर चलने की शक्ति से रहित हों। १३-७
पचकर=जिसके पाँच हाथ हों (चार हाथ और एक सूँड)। १-१
पचदसहूँ=पद्रहो। १-१
पचबान=कामदेव। १७-४५
पंथ=मार्ग (के)। २३-८२
पननि=हरे रग के रत्न। ९-३७
पको=(पक्क) मजबूत, सशक्त। २१-७६
पक्ष=पख, पाँख। २-१३
पच्छ=ओर, तरफ। ४-३४
पखनि=पखों में। १५-८
पखा=पख। ९-३४
पखान=(पाषाण) पत्थर। ४-७
पषान=पाषाण; कड़े, कठोर। १६-२३
पखारैं=धोते हैं। ८-८५
पग-ठौनि=पैर रखने की मुद्रा। १५-३४
पगि रहीं=मीठे की भाँति चाशनी में डूब रही हैं, लीन हो रही हैं। २-२५
पगु सों=पैरों को। २-६३
पचिकै=परेशान होकर। २१-७१
पचै के=पचाकर, समाप्त कर। २-२५
पछाव=पछाड़ो। ४ ३५
पजरावत=एकदम जला देता है। २१-३१
पटा=दुपट्टा। १२-४२

पटीर=चदन। ६ ६८
पटैत=पटेबाज, पटा खेलनेवाला। १५-५१
पट्टत=पाटते हैं। १६-८
पतंग=पतिगा। ८-७६
पतनै=पतन से, गिरने से, मूर्छित या मृत होने से। १५-२१
पतियाँ=पत्रिकाएँ। ५-२४
पद=शब्द। ४-१६
पदारथ=(पदार्थ) वाच्यार्थादि। १-१८
पदिक=रत्न। १४-४१
पदुम=पद्म (कमल), पद्म (संख्या)। २०-५, २०-१६
पदुमिनि=पद्मिनी, नायिका, कमलिनी १०-१२
पन=प्रण, प्रतिज्ञा। ४-३४
पनहा=चोरी का पता देनेवाली। १७-३६
पना=(पन्ना) हरे रंग का रत्न। १८-१६
पनारो=पनाला। ३-४८
पनु=प्रण, प्रतिज्ञा। २१-६८
पव्रि=वज्र। १५-२७
पयोधर=बादल, स्तन। १६-२३
पयोधि=सागर, समुद्र। ६-१५
पयान=(प्रयाण) प्रस्थान। १२ ३७
पर=पख। ५-६
पर=शत्रु। २१-१३ अ
परगुन=दूसरे का गुण। २-२८
परचड=(प्रचड) भीषण। ४ ३४
पर जाहिर हैं=पर जाहिर (प्रकट) हैं, परजाहि रहैं, प्रजा ही बने रहते हैं। ३-५२
परतीति=(प्रतीति) बोध। २३-४
परदा=वस्त्र, आड। १३-१६
परदे (सौं)=परदा करके गुप्तरूप (से)। ५-६
परदेसौं=परदेश में भी। ५-६
परपची=(प्रपंची) प्रपंच रचनेवाला, बखेड़िया। ४-४६
परपिंड-प्रवेसी=परकाय में प्रवेशवाला। ६-७
परपुरुष=दूसरे पुरुष, परमपुरुष, विष्णु। २३-५२
परब-गन=(पर्वगण) सूर्यग्रहण, चंद्र-ग्रहण; पुण्यकाल, प्रतितिथि। २०-७
परब्बत=पर्वत, पहाड। २१-१३ अ
परब्बतसरदार=पर्वतों का नेता हिमालय। २१-१३ अ
परबीन=(प्रवीण) चतुर। ११-५
परबीनता=प्रवीणता, चतुराई। १७ ३३
परभृत=दूसरे को भरनेवाला; दूसरे के प्रकाश से भरा हुआ; (कात्यायिनी द्वारा) पोषित, (यशोदा द्वारा) पालित। २०-७
परसैन=शत्रु की सेना। २१-६५
पराग=अपराग, जहाँ रस-भाव किसी अन्य के अंग हों। १-१८
परा=दूसरे की। २१-५५
पराए=दूसरे, अन्य। १२-११
पराग=१-(परा + आग) तेज आग।
२-(प्र + राग) विशेष लाल।
३-पुष्पधूलि। २१-१६
पराधु=अपराध। ५-२०
परावन=भगानेवाला २१-३१
परि=पटकर, लेटकर। ५-४

परि=पर। २२-१६
परि गो=बंद हो गया। २०-५५
परिपाटी=रीति, नियम। २५-३५
परिमान=परिमाण, बराबर। २२-१६
परिवारु=वंश, समूह। १६-२४
परु=पर। २३-८२
परेवे=परेवा पक्षी; वे पड़ गए। २०-१३
परै=पर ही, परत ही। ७-१३
परै=दूर। २०-१०
पवारी=(प्रवाली) मूँगा। ३-५४
पल=पलक। १०-३६
पल=क्षण। १६-५५
पलो=पल भर, क्षणमात्र। २१-८१
पसुनाथ=पशुपति, शंकर। २१-६५
पस्यतोहर=देखते हुए (वस्तु) हर लेनेवाला; सोनार। १०-२७
पहाऊँ=प्रातःकाल। ५-१८
पहिराउ=पहिरावा। ६-३४
पहुँचनि=कलाइयों में। ११-४१
पाइ=(पाद) पावँ, पैर। ३-२६
पाकी=परिपक्व, पकी हुई। १-१८
पाग=पगड़ी। २०-१७
पागि रही=पग रही है, अनुरक्त हो रही है। ४-२२
पागी=पगा हुआ, लीन। १३-२३
पाटल=गुलाब। १४-२६
पाटी=लकड़ी की पट्टी। २५-३५
पात=पतन; पत्ता (चमत्कारार्थ)। २०-१६
पात्रता=योग्यता। १८-१०
पाथ=पथ, मार्ग। १४-४
पान=तांबूल। २१-१५
पानि=(पाणि) हाथ। ३-३६
पानिप=जल; आभा। ८-३६, १०-२७
पानिप=आब, चमक, शोभा, छटा। ८-५३
पानिप=द्युति, कांति; जल। १०-१०
पानिप=पानी (तलवार की आब); जल। १३-२२
पानिप=कांति, पानी, चमक। २०-६
पा पलुटैबो=पैर दबवाना। ५-४
पाय=(पाद) पाँव, पैर। ३-४५
पारद=पारा। ८-१६
पारसीक-वासी=फारस के रहनेवाले। २१-१६
पारस्यौ=पारसी (फारसी भाषा) भी। १-१४
पाल=नाव का पाल। ६-४१
पावक=अग्नि, आग। २-८
पावड़े=सम्मान के लिए किसी के आने के मार्ग में बिछाया हुआ कपड़ा। ८-२८
पावनता=पवित्रता। २५-४३
पावनो=(पावन) पवित्र। ४-३८
पावसै=(प्रावृष्) बरसात ही। २२-१६
पाहन=(पाषाण) पत्थर। १३-२१
पिक=कोयल। २१-७१
पिखि=देखकर। १६-८
पित्रिगृह=पिता का घर, पीहर; पितर-लोक। २५-१६
पियरे=पीले। ६-३४
पियूषमयूष=अमृत की किरणोंवाला, चंद्रमा। १३-११

पी=(पिय) प्रियतम। ८-७०
पीउ=(पिय) प्रियतम। २१-१०
पीतपटा=पीला वस्त्र, पीतांबर। १०-५
पीत-पटी=पीतांबर। ५-११
पीतमुख=पीले मुँह वाला, भौंरा। २५-१५
पीन=स्थूल। ६-३६
पीयूष=अमृत। ८-७८
पीर=पीडा, वेदना। १२-१२
पीरे पीरे=पीले पीले, पी (प्रिय) रे पी (प्रिय) रे। २०-१५
पील=(फील) हाथी। १०-३५
पुंज=समूह। १०-२६
पुरंदर=इंद्र। ५-६
पुर=नगर। ६-४१
पुरहूत=इंद्र। १२-२७
पुरैनि=(पुरइन) पद्मिनी-पत्र। ६-६
पुष्कर=दिग्गज, हाथी। १६-१७
पुष्करपाउ=कमलवत् चरणों वाले। १६-१७
पूजहिगी=पूजेगी, पूजा करेगी। २१-२७
पूतरी=आँख की पुतली, प्रकाशदायक, प्रिय। २-३४
पूनो=पूर्णिमा। ६-१५
पूर=पूर्ण, पूरा। २१-७५ अ
पूरिकै=पूर्ण होकर, भरकर। ४-३०
पेखि=देखकर। १७-६
पेच=उलझन। १७-६
पेस=(पेश) आगे। १५-५२
पैंड पैंड=कदम-कदम (पर)। १६-४०
पै=पर, परंतु। १-१४
पै=पास। २३-५३
पैजनियाँ=बजनेवाले खोखले कड़े। २५-२१
पैने=तीखे, तीक्ष्ण। २१-५५
पोटि पोटि=फुसला फुसलाकर। १२-४३
पौढ़ी=सोई। २३-६३
पौरिकै=तैरकर। १६-१५
प्यादे=हरकारा। ६-३४
प्यो=प्रिय। १६-४७
प्यौ=प्रिय। २१-८६
प्रगट=चालू, चलती। १-१८
प्रजक=(पर्यंक) पलंग। ५-४
प्रतच्छ=प्रत्यक्ष। ८-२५
प्रतिद्वदी=(प्रतिद्वंद्वी) विपक्षी, शत्रु। १५-५
प्रतीति=ज्ञान। २-१५
प्रतीति=विश्वास। १३-२१
प्रनतारतै=प्रणत और आर्त ही। २१-६६
प्रफुल्लित=फूले, आनंदित। २-२४
प्रबाल=किसलय। ४-४२
प्रबास=परदेश में बसना। ४-२१
प्रबिसी=पैठी। १६-७
प्रबीन=निपुण, पंडित। १-८
प्रबीन=वीणा बजाने में निपुण। ४-१६
प्रभा=दीप्ति। २-४८
प्रभाकर=सूर्य। ४ ५१
प्रभु ज्यों=स्वामी की भाँति (प्रभु-समित)। १-११
प्रमान=प्रमाण, प्रकार। २-२
प्रलंब=प्रलंबासुर, जिसे बलराम ने मारा था। २१-२५

प्रसग=वार्ता । ३-३४
प्रसाद=अनुग्रह, कृपा । ५-१३
प्रान=जी, अति प्रिय । २-३४
प्रान-धन=प्राणरूपी धन प्राणप्रिय, प्रियतम । २-३६
प्रिय=मन को भानेवाले; पिया (प्रियतम)। २०-१६
प्रेमपनो=प्रेमपन, प्रीति । १५-२५
फँदि=फंदे में पड़ (गया)। ६-२५
फदु=फंदा, जाल । २१-२३
फटिक=स्फटिक (मणि)। १४-३८
फनेस=(फणीश) शेषनाग । ५-४
फबिता=शोभा, छटा । ८-५३
फबे=शोभन लगे । १३-२१
फलकत=उछलकर चलने से । ११-३५
फली=सफल हुई, पूरी हुई । २-२४
फाल=डग । ४-३८
फिरादी=(फरियादी) फरियाद करने वाला । १८-२६
फिरो=फिर गया, लौट गया । २१-२५
फुर्यो=सत्य प्रमाणित हुआ । ६-५६
फुलेल=फूलवासित तिल से बना तेल । २२-११
फूल भरें=(फूल झड़ना) मुँह से सुखद बातें निकलती हैं । २२-६
फेर=चक्कर, प्रपंच । २-१८
फेर=परिवर्तन । ३-४
फेरनिहार=उलट पलटकर पकानेवाला; चाल सिखानेवाला, शोधकर सड़ा पान निकालनेवाला; बुला लानेवाला । २१-१५

फेरवदार=(फेरव=स्यार + दार = स्त्री) शृगालिनी । ५-५
फेरि=पुनः, पाटा फेरकर । ६-४६
फेरि=फिर, पुनः । ११-३०
फैल=फैलाव । ८-१६
बंकुरता=बाँकपन । २-४८
बंचि=बचाकर । ६-४०
बकुल=यहाँ अशोक । १६ ४५
बद=बध, रचना । ३-४२
बद=अविकसित । २३-४४
बदन=सिंदूर । ५-१३, १६-१७
बदनवार=पत्तों की मागलिक झालर । १६-५३
बदु=वंद्य, वदनीय । २०-७
बद्या=वदनीया, बंदी (दासी)। २३-१८
बधु=भाई (लक्ष्मण)। २५-२३
बधुजीव = दुपहरिया का फूल । ३-५४
बसलुत = बाँसों से युक्त (पालकी), बाँसा से युक्त (नाक)। ६-४१
बई = बोई । ६-६७
बक-अवली = बगुलों की पंक्ति । ४-१७
बकता = वक्ता । ६-६४
बकैयन = घुटनों के बल (चलना)। ४-३०
बक्तिबिसेष = वक्तृवैशिष्ट्य । २-५०
बक्षोज = स्तन । ६-६
बखानि = बखानो, वर्णन करो । १-१५
बगपाँति = बगुलों की पंक्ति । १६-२१
बगरि (रहीं) = फैल (रही हैं)। २२-१५
बगारत = फैलाने पर । ८-७०
बगारत = फैलाता है । २३-२२

बघंबरी = बाघ की खाल वाला, पीले रंग का पीतांबर । १३-१४
बघनहा=बाघ के नख से बना एक आभूषण । १०-३६
बजनी = नुपूर । १८-४३
बजाइ = डंके की चोट पर, खुल्लम खुल्ला । ६-३६
बटसाखैं = बरगद की डालें । १३-१६
बटा = गेंद । १८-३४
बटे = (वटक) गोले । ८-८६
बटरे = बड़े । १६-६१
बढ़ती=वृद्धि, बढ़ाव । १८-२१
बढ़ाउ=बढ़ाव, विस्तार । ८-४३
बत=बत्तक । २१-१३ अ
बतरानि=वार्ता, बात । ७-१४
बतलासुर=वत्सासुर । ५-६
बदन=मुँह । ४-५१
बदर=बेर (फल) । १६-३८
बदाबदी=लागडाट । १३-२०
बन=जंगल । २१-२६ अ
बनक=सजधज, बनाव, छटा । ४-१६, २०-१०
बनकबारे=सजावटवाले । १५-२४
बनमाल=घुटने या पैर तक लंबी माला । २-२५
बनिता=स्त्री । ४-१७
बनीन=सुशोभित । २५-२१
बन्यो=बना हुआ, ठीक, बढ़िया । १-७
बपु=देह । ६-३८
बपुख=(वपुष) देह । ६-८७
बफारो=भाप । १८-१५
बमैं=उगलते हैं । १३-८८
बयारि=(वायु) हवा । ५-१४
बरधि=बलकर (उठे) उमगित हो (उठे) । १६-८
बरजनवारी=मना करनेवाली । ६-३८
बरजो=मना करो । १२-५५
बरजोर=बलपूर्वक जबरदस्ती । ८-१३
बरजोरी=बलपूर्वक, जबरदस्ती । १६-५६
बरजोरैं=बलपूर्वक, जबरदस्ती । ५-२४
बर तरिवर=बरगद का वृक्ष । १६-३१
बरदा= बैल । १३-१६
बरदायक=वर देनेवाले । १३-१६
बरदे=बलीवर्द, बैल । ५-६
बरन=(वर्ण) अक्षर । ६-८० अ
बरनी=वर्णवाली । ६-३५
बरन्यो = वर्णन किया । २-६४
बरबंधु=ज्येष्ठ भ्राता । १-१
बर बाहन=सुंदर वाहें, उत्तम सवारी । २०-५
बरबीर=कवि बीरबल । १-१०
बरमा=लकड़ी छेदने का औज़ार । २५-३५
बरसाने=बरसाना गाँव । १३-५७
बरसो=बरसों, कई वर्ष । १६-६२
बरहि=बल से, बलपूर्वक । ६-३८
बरही=(वर्हा) मयूर, मोर । १६-४७
बराइ=बराकर, चुनकर । १९-१०
बराए=बचाकर । २३-४१
बराह=सूअर । ४-३७
बरिबंड = बली । ४-३४
बरी=(बली) जली हुई । १-२३

बरुनी=बरौनी, पलक के किनारों के बाल । १६-८१

बरौती= ज्यादती । २२-८

बरो=बड़ा (उगाया जानेवाला)। २१-१५

बरोबरी=बराबरी, समानता । १०-१०

बरोरिकै=मरोड़कर । १६-७५

बर्ननीय=बर्णनीय, उपमेय । १६-३८

बर्यारो=बरियारा, बली । १५-१८

बलकत=उमगित होने पर । ११-३५

बलकि=आवेश में, जोश में भरकर । ६-३४

बलभी=अटारी, छत । ११-१०

बलया=चूड़ियाँ । ११-६७

बलाइ=(बला) दुख, पीड़ा । १५-३१

बलाक=बलाका, बगुला । २-६६

बलाहक=मेघ, बादल । ७-१८

बलि=बलिहारी । ४-२८

बलित = आच्छादित, घिरी । ६-२०

बलित = युक्त । १२-६

बवैं = बोते हैं । ६-४६

बसै = बसता है । २१-७६

बस = वश; [बन = जंगल] । २१-३८

बसन = वस्त्र (द्रौपदी का चीर) । १५-५२

बसन = वस्त्र । २०-१६

बसाट = व्रण, घोर । ६-३६

बसानी = सुगंधित, बसी हुई । २०-५

बसीटी = दूतत्व, दौत्य । २०-१७

बसुमती = पृथ्वी । ७-६

बसेर = बसेरा, यहाँ पहनावा । १५-५४

बहम = संदेह । ११-३

बहराइकै = बहलाकर, भुलावा देकर । ५-६

बहु = अत्यधिक; बहुतों (को) । २०-१०

बहुरि = पुनः, फिर । ६-४८

बाँ = बार । २१-२३

बाँकी = टेढ़ी । १५-१७

बाँचि (आई) = बच (आई) । ६-५६

बाँचि (लेहु) = बाँच पढ़) लो । ६-५६

बाँध = बाँधने का महीन डोरा । १८-२३

बा = (वा) । २१-२३-अ

बाइ = (वायु) हवा । ६-७८

बागबान = माली, वनमाली (श्रीकृष्ण) । २०-१५

बाचतो = बचता । २३-५

बाज = एक शिकारी पक्षी, बाज आए, परेशान हो गए । २०-१३

बाजी = बजी, ध्वनित हुई । २-१८

बाजी = घोड़ा । २-१८,२२-६०

बाड़व = बाडवाग्नि । ६-३८

बाडौ = बाडवानल, समुद्र की आग । ११-२५

बाढि = वृद्धि, बढ़ती । ३-४५

बात मंद = बुरी बात, धीमी हवा । २०-१५

बातुल = उन्मत्त । २१-३७

बादि = व्यर्थ । ५-४

बादी = मुद्दई । ३-५५

बाध = बाधा, रुकावट । २-२२

बान = बानि, प्रकार । २१-७२

बानक = वेश । १०-३०
बानन = बाणों (कटाक्षों) । २०-१३
बानि = टेव, आदत । ५-१५
बानि-बानि = वर्ण वर्ण के, तरह तरह के । १६-५३
बानी = वाणी, रचना, कविता । १-१६
बानी = बनिया, वणिक । २-१२
बानी = (वाणी) सरस्वती, बनिया । ६-६६
बानी = बोली, वचन । १७ ३०
बानी = (वाणी) सरस्वती । १७-३०
बाने = वेश । १४-२६
बाफते = कलाबत्तू और रेशमी बूटियों वाले रेशमी कपड़े (की) । २२-६
बाम = (वाम) स्त्री । ३-१६
बार = (द्वार) दरवाजा । २- ६
बार = देर । ५-२४
बार = (बाल) केश । ६-६८
बार = दिन । २१-२३ अ
बारत = जलाता है । ६-३८
बारन = हाथी । १३-१६
बारन बद = बद (बुराई) के वारण के लिए । २१-२३ अ
बारनबदन = गजमुख, गणेश । २१-२३ अ ।
बार नव = नव बार । २१-२३ अ
बारनै = हाथी ही । २३-६२
बारवनिता = वेश्या । २०-५
बारि = पानी, जल । १३-७
बारिजात = बारिज, कमल । १६-४१
बारिद = बादल । १४-५
बारि (देति) = जला (देती है) । ५-१४
बारिबाहक = बादल । ४-१७
बारी = वाटिका, नायिका । १३-४८
बारी = छोटी । २०-१६
बारी = वाटिका । २१-३५
बारुनी = (वारुणी) मदिरा । १६-४१
बाल = बाला, नायिका । २१-७७
बालबिधु = द्वितीया का चन्द्रमा । १०-३६
बालम = (वल्लभ) प्रिय । २५-१२
बाल-सुधाकर = द्वितीया का चन्द्रमा, बाल + सु + धाकर = नीच ब्राह्मण । २३-२८
बालिन्ह = बालों (को) । ६-६७
बावनो = (वामन) बौना, वामनावतार । ४-३८
बास = वस्त्र । ४-३२
बास = वासस्थान । ४-१७
बास = गंध, महक । ४-१७
बास = गंध, डेरा । २० ५
बास = निवास, सुगंध, वस्त्र (म्यान का कपड़ा) । २०-६
बाससी = वस्त्र । १३-७
बासुदेव = कवि विशेष । १-८
बाहन = सवारी (सिंह) । ६-३८
बिंब = बिंबा, कुँदरू । ३-५४
बिंबाधर = बिंबा (पके कुँदरू) के समान लाल ओठ । ७-२१
बिकयो = बेचा । २१-८२
बिगोई = नष्ट कर दी, खो दी । १६-४१

बिचछन = (विचक्षण) निपुण, चतुर। ४-३४

बिछुल्यो = फिसल गया। १६-३१

बिजन = (व्यजन) पंखा। ६-३१

बिजैदसैं = विजयदशमी। १-४

बिज्जु = (विद्युत्) बिजली। ३-२६

बित = (वित्त) धन। ६-५७

बितान = चँदोवा। २-५७

बिथकी = स्थगित, रुकी हुई। २-८८

बिथा = व्यथा को। २-२५

बिथुरी = बिखरी हुई। १०-२०

बिथोरें = विस्तार करने पर, बढ़ाने पर। २१-३६

बिद = (विद्) पंडित। २१-३१

बिदग्ध = विद्वान्, पंडित। १६-२

बिदारिबे की = विदीर्ण करने की, नष्ट करने की। ५-१५

बिद्रुम = प्रवाल, मूँगा। ६-७

बिधना = ब्रह्मा। ११-४

बिधातैं = ब्रह्मा ने। १-१२

बिधान = प्रकार। २-१

बिधि = प्रकार। ३-२६

बिधि = (विधि) ब्रह्मा। ६-६७

बिधि-बासर = ब्रह्मा का दिन जो एक कल्प का होता है। १६-६२

बिधुतुद = चंद्रमा को सतानेवाला राहु जिसका रंग काला है। १८-१६

बिधौ = बिद्ध हुआ। १६-३१

बिनै = (विनय) विनती, प्रार्थना। २-६१

बिपच्छ = शत्रु। ४-३५

बिप्र पा परत = विप्र पाप रत, ब्राह्मणों के लिए पाप करने में लीन; विप्र पा परत, ब्राह्मणों के पैर पड़ते हैं। ३-५२

बिफली = असफल। १६-४३

बिबिध = भिन्न भिन्न प्रकार की, अनेक तरह की। १-१७

बिभिचारी = (व्यभिचारी)। ५-२५ अ

बिभूति = भस्म, राख। १०-३६

बिभूति = संपत्ति। २५-१५

बिमोहित = मूर्छित। ११-१४

बिय = दो, दोनों। ३-४२

बियो = दूसरा। २१-६५

बिरमै = रमता है, ठहरता है। २१-६०

बिलगाइ = पृथक् प्रतीत होता है। ३-३०

बिलपनि = विलाप, क्रंदन। १०-३६

बिललाति = व्याकुल होती है। ५-२५

बिलोकियत = दिखलाई पड़ती है, देखी जाती है। ३-४७

बिष = जल; जहर। ७-१८

बिषतरु = विषवृक्ष। २३-५०

बिषमहय = ताक संख्या के घोड़े जिसके रथ में हों, सूर्य। २३-१५

बिषरीति = विष का रंगढंग। १३-११

बिषैं = (विषय) विषय में। ४-२०

बिष्नुधाम = विष्णु का घर, आकाश। २३-१५

बिसदजस = निर्मल यश वाला। १२-१३

बिसन = व्यसन, बुरी लत। २३-८६

बिसनी-पत्र = कमलिनी का पत्ता। २-६६

बिसराम = विमुखता, विश्राम, शांति। ३-५२
बिसवासी = विश्वासघाती। १६-५५
बिसाखा = विशाखा, राधिका की सखी। १२-४३
बिसासिनी = विश्वासघातिनी। १५-२५
बिसूरति = सोच करती रहती है। १५-१३
बिसूरि = स्मरण करके। ५-१८
बिसेषि कै = अत्यधिक। २१-१६
बिस्तर = फैलता है। १-१
बिस्नै = विष्णु ही। २-७
बिहग = पक्षी। २-१५
बिहरे = फटे। ११-१४
बिहाइकै = छोड़कर। १२-२६
बिहान = प्रातःकाल (वाला)। २०-६
बिहारियै = विहारी (श्रीकृष्ण) ही। १७-४५
बिहारी = कवि बिहारी। १-१६
बिहाल = बेहाल, व्याकुल, बेचैन। ४-१६
बीचि = तरंग, त्रिवली। ८-३०
बीचि = लहर। २३-७२ अ
बीजहास = विद्युद्हास, हासरूपी बीज (अन्न)। १०-३२
बीजुरी = (विद्युत्) बिजली। ३-४७
बीत्यो = व्यतीत हुआ। ४-३२
बीथिन = गलियों। १२-४३
बीनि = बीनकर, चुनकर। २१-८७
बीस बिसे = अधिक संभवतः। ७-६
बीसहूँ बीस = बीसो बिस्वा, पूर्णरूप से। १८-३२
बुध=बुध ग्रह, जिसका रंग हरा माना गया है। १८-१६
बुधिवंतनि = बुद्धिमानों को। १-१०
बूढ़नि=बीरबहूटी, बूँदों में। ४-१७
बृंद=समूह, (अपनी) मंडली (में)। ५-१३
बृज-अवतंसु=ब्रज के आभूषण, श्रीकृष्ण। २१-७२
बृजइंदु=ब्रजचंद्र, श्रीकृष्ण। १३-२०
बृजबास=ब्रज प्रदेश में निवास। १-१६
बृत्थ=वृथा। २१-६१
बृष=बैल। २१-३२
बृषभ=बैल, मूर्ख। २-४०
बृषो=बैल ही। २३-६७
बेगारी=बेगार, पारिश्रमिक बिना दिए काम लेना। २२-१५
बेचावत=बिकवाता है। १२-१२
बेदरदे=(बेदर्द) निर्दय। ५-६
बेन=वेणु। २१-६२
बेनी=त्रिवेणी, चोटी। ८-५३
बेनी=त्रिवेणी तीर्थ। ८-६२
बेनी=चोटी। ८-१२
बेनीमाधव=प्रयाग। ७-६
बेनु=बाँस। १४-११
बेर=(बेला) समय। १५-५४
बेर=बार। २४-१२ अ
बेस=उत्कृष्ट। ३-४७
बेसरि=छोटी नथ। १६-६०
बेही=बिना ही। २०-१६
बै=बोकर, उत्पन्न कर। २२-८
बैकल=विकल, पागल, उन्मत्त। ११-२३

वैजयती=पताका, झडा । १३-७
वैन=वचन, शब्द । २-४३
वैवर्न=(वैवर्ण्य) विवर्ण अथवा मलिन होना । ४-१३
वैयर=स्त्री (सखी) । २३-६
वैरिनि=शत्रुणी । २-३६
वैसदर=(वैश्वानर) अग्नि । २३-५
बोधन्म=जाननेवाला, श्रोता । २-५०
बोर्यो=डुबोया । ४-१८
बौर=मौर, आम की मजरी । ४-३७
बौरई=पागलपन । ११-४
बौरई=(बौर ही) आम की मजरी ही । २२-१७
बौरी=हे पगली । २-६०
बौरी=बौरयुक्त, मजरीयुक्त, पागल । २-४५
व्यक्त=प्रकट, जाहिर । १६-४६
व्यक्ति=अभिव्यक्ति । ६-१५
व्याज=मिस, बहाना । १२-२४
व्याध=बहेलिया । २१-३२
व्याल=हाथी । २-१४
व्याल=हाथी (कुवलयापीड) । ४-३६
व्यालबस=सर्पवश । १७-४३
व्यालबिछावनो=(बहुव्रीहि समास) सर्प (शेष) जिसका बिस्तर है, विष्णु । ३-२२
व्यालसुड=हाथी की सूँड । ६-३६
व्यालिनी=सर्पिणी । ३-४७
ब्योंत=उपाय, घात । ७-१२
ब्योर=ब्यौरा । २५-४४
ब्रह्म=कवि बीरबल । १-१६
भँवती=भ्रमण करती । २२-१२
भई=हुई । १५-४६
भई भई=चक्करदार । १५-४६
भगत नहीं=भगत नहीं, अभक्त, भगतन हीं, भक्तों से ही । ३-५२
भजत=भागते हैं, भजन करते हैं । ३-५२
भजतु=भाग जाते (हैं) । ११ १६
भजावत=भाँजता है, घुमाता है । ११-१६
भजि=भागकर । ११-३६
भट=योद्धा । ४-३५
भटभेरो=मुठभेड । १० ४०
भटाक्षन=नेत्र रूपी योद्धा । १०-४०
भतियाँ=(भाँति) रीति, सजावट । ५-२४
भन=कहो, बताओ । २१-२५
भभरि=घबराकर । ६-३६
भरभरी=आकुलता । ४-३६
भरु=भार । २३-८२
भल्लर=भद्दा । २३-१७
भव=ससार, शिव, जीव, जगत् । २०-७
भव=ससार । २३-१०
भवानी=दुर्गा । ६-३८
भाँग=(भग) विजया । १३-१६
भाँतउ-सार=रगढग, रीतभाँत । २१-८१
भाँतिन=रीतियाँ, शैलियों से । २१-८२
भाँवरी=फेरी, चक्कर काटना । २२-८
भाइ=प्रकार । २-५१
भाइ=हे भाई, भई । २३-१७
भाई=अर्थात् उपमान । १२-४२

भाकसी = भट्ठी । १३-१५
भाजन = पात्र, बरतन । २-४१
भान = (भानु) सूर्य । ६-३७
भानुमानु = सूर्य का गर्व । २१-६०
भामिनी = स्त्री, नायिका । ३-४७
भाय = (भाव) प्रकार । १०-३८
भारतियौ = भारती भी, सरस्वती भी । १-१८
भारती-धाम = सरस्वती के घर अर्थात् विद्वान्, पंडित । ६-३
भारथ = भरत पक्षी, लड़ाई । २०-१३
भारैगी = महंगी । १६-५६
भाल = (भल्ल) बाण का फल । ३-४७
भाल = ललाट । ३-४७
भावती = प्रिया, नायिका । १०-२२
भावते = भानेवाले, प्रिय । ८-७८
भावी = होनहार । १३-१२
भाषा=हिंदी । २२-१
भिरै=भिड़ना है, टकराता है । ५-७
भीखमु=भीषण, प्रचंड । २१-८१
भुअ=(भू) भूमि । १६-४६
भुआर = (भुआल, भूपाल) राजा । २१-२०
भुआल=(भूपाल) राजा । ८-५१
भुजगी=भुजगा पक्षी, नागिन । २०-१३
भुजा=उपमान गदा । १२-४२
भुक्ति=सुख-भोग । २५-३८
भूत=पंचभूत, पंचतत्त्व, प्रेत । ५-७
भूति=भस्म । २५-१५
भूमिधर=पर्वत । ११-३५
भूरि=प्रचुर, अत्यंत । १०-३६
भूषन=कवि भूषण । १-१०
भूषन=(भूषण) अलंकार । १-१३
भूषन=आभूषण, गहना । १-१३
भूषन-मूल=अलंकार के मूल तत्त्व । १-१८
भृंग=भौंरा, भ्रमर । १६-४५
भृंगनी=बिलनी, पतली कमर वाला एक कीड़ा । १२-१८
भृकुटी=भौंह । ३-४७
भृत्य=सेवक । १४-२६
भेद=रहस्य । १-११
भेट=बैर, विरोध । २२-१५
भेय=(भेद) प्रकार (अलंकार का) । ८-३१
भेवैया=भिगोनेवाला । २५-३८
भेकारियै=भयावनी । २३-७०
भौंडो=भद्दा, बुरा । २३-८८
भोग=भोजन । २१-२५
भोर=सवेरे । ६-२०
भोराई=भुलावे में डाला । १२-४३
भोराई=भोलापन । १७-६
भोरी=भोली । २५-१६
भौन=(भवन) घर । २-५७
भ्रू=भौंह । २१-६७
मंगन = माँगनेवाला, याचक । ११-१८
मंजीर = नूपुर । २३-४४
मंजुघोषा = एक मृदुभाषिणी अप्सरा । ८-३७
मंडन = कवि-नाम । १-१६
मंडैं = मंडराते हैं । ४-१७
मकरध्वज = मदन, कामदेव । ४-२४
मकराकृत=मगर या मछली के आकार के । १०-१६

मखतूल = काला रेशम । ६-२
मखाति = अमर्ष करती है, बुरा मानती है । २-२५
मग = (मार्ग) रास्ता । ४-२४
मगद्वार = (मग = मार्ग + द्वार = दरवाजा) फाटक । ३-१८
मगन = (मग्न) डूबना; लीन होना । २-२५
मगवाम=मार्ग की स्त्रियाँ । २३-४१
मगरूरि = गर्विली । ११-३४
मंजीठी = मजीठ के रंग का गहरा लाल । २०-१७
मझार = मध्य, बीच । २-३२
मड़े = मंडित, युक्त । ८-४३
मढ़ो = मंडित, शोभित । १०-५
मतंग = हाथी । १०-३७
मतिकोष = बुद्धि के खजाने । १४-२
मतिबसि=बुद्धिवश्य । ३-४४
मतिराम=कवि नाम, भूषण के भाई । १-१६
मत्तगमै=मतवाली चाल वाली । २१-३७
मथ्यनि=(मस्तक मुंडों को । ४-३५
मदघ=(मद्यप) मत्त । ४-३४
मद=हाथी की कनपटी से निकलनेवाला द्रव । ६-३१
मधि=माथ । २५-४०
मधु=वसंत । १५-३१
मधु=राक्षस विशेष । १५-५२
मधु-चंद्रिका=चैत्र की चाँदनी । २-५५
मधुप=भौंरा (उद्धव) । १५-१०
मधुमाखी=मधुमक्खी, शहद की मक्खी । १२-२५
मधुपाली=मधुपों-मधुमक्खियों की पंक्ति (समूह) । १७-२६
मधुमास=बसंत । २१-५५
मधूकै=महुआ ही । ६-२
मनकामना=इच्छा, अभिलाषा । २-२४
मनमथ=मन्मथ, कामदेव । १५-३१
मनमानी=स्वेच्छाचारिणी, शक्तिमती मान ली गई । २०-५
मनमोहनै=मन को मोह लेनेवाले को, श्रीकृष्ण को । ३-३६
मनरोचक=मन को रुचनेवाली । १-१२
मनरौन = (मनरमण) प्रियतम । ६ २६
मनरौनि=मन को रमानेवाली । १८-३०
मनहर्न=मनहरण । २१-४४
मनिवारे=मणिवाले, मणियुक्त । १०-३६
मनुजाद=मनुष्य को खानेवाला राक्षस (हिरण्यकशिपु) । १८-३८
मनेस=मन के ईश, कामदेव । ५-४
मनोज=काम । १०-२२
ममोलन=खंजनों । ८-७८
मयंक=(मृगांक) चंद्रमा । ३-१५
मयंकमुखी=चंद्रमुखी । ५-४
मयूख=(मधूक) शहद । ८-७८
मयोलाज=लाजमय, सलज्ज । २१-८२
मरकत = पन्ना । २-६६
मरकत = पन्ना (यहाँ नीलम) । ८-१८।
मरजाद = (मर्यादा) प्रतिष्ठा । ६-४१
मरीचि = किरण । १४-३४
मरु = मरुस्थल, रेगिस्तान । २-१६
मरुअ = मरुवा । २१-७२
मरुधर = मरुभूमि, रेगिस्तान । १०-३०
मरोरे = मरोड़ से । २१-५२

मर्कट=बंदर । १६-४६
मर्म=रहस्य, तत्त्व । २-४
मलिंद=(मिलिंद) भौंरा । ४-५१
मलै=(मलय) मलयवायु, दक्षिणपवन । १३-४१
मलैज=(मलयज) चंदन । २१-८१
मसक=मच्छर, मसलन । १६-६३
महरि=गोपी । २१ ५२
महाई=अतिशय, अधिक । २५-३
महाजन=धनी, पराक्रमी । २० ५
महातम=गहरा अंधकार, घना अंधकार, महात्म्य, विशेष तमोगुण । २०-७
महाराय=महाराज । ६-३५
महाविष-हालाहल, समुद्र मथन से निकला विष । ११-२५
महावरिही=महावर लगाई हुई थी । १२-१७
महिदेव=ब्राह्मण । १६-१४
महिपाल=राजा । ४-२०
महीरुह=वृक्ष, पेड़ । १५-३७
महीसुत=पृथ्वी का पुत्र मंगल, जिसका रंग लाल माना गया है । १८-१६
महुज्वल=(महत् + उज्ज्वल) अत्यंत श्वेत । २२-६
महै=मथ उठता है । २१-८४
माँजि=माँजकर, मलकर । ६-२५
माँझ=(मध्य) बीच । २-५८
माँह=में, बीच । ४-५२
मारियाँ=मक्खी भी । ८-७५
मा=लगाने पर । १३-३६
मानि=मन होकर । ५-२५
माते=मस्त, मतवाले । ४-२६
माथ=सिर । ११-१५
माद्री=पांडु की पत्नी । ४-२६, ८-३७
माधुरोज=माधुर्य और ओज । १६-३०
मान=परिमाण । २०-१५
मान=मानने का भाव । २०-१५
मान=रूठना । २१-५२
मानवी=नारी । ११-४
मानस=मन, हृदय । १०- ७
मानिक=माणिक्य, लाल । ४-४२
मानु=मानो, समझो । २१-६०
मार=कामदेव । ४-५३
माह=माघ (मास) । ११-२२, २१-२५
माह=में । २१-३०
मित्त=हे मित्र । ४-१
मित्र=सूर्य, साथी । ८-६७
मिथ्यावादी=कर्कश बोली बोलनेवाला । १२-३१
मिलापी=संयोगी । ४-१७
मिलित=मिला हुआ, युक्त । ३-२६
मिस=बहाना । ७-६३
मिसी=एक प्रकार का काला रंग (कालिमा) । ६-२५
मिसु=बहाना । १०-४१
मींच=(मृत्यु) मौत । १५-२६
मिचाइ=मुँदवाकर । १२-४३
मीचु=(मृत्यु) मरण, अति कष्टदायक । २-३४
मीड़ि=मलकर । ६-६७
मु=मुँह । २१-८७

मो मतैं = मेरे मतानुसार । ६-२०
मो=मैं । ३-६
मो मन=मेरा मन । ३-६
मोर=मोरपख । २१-८०
मोरपच्छ=मोरपख । ७-२१
मोप=मोक्ष । १४-६
मोहन = बेहोशी । १५-८
मोही=मुझसे । ७-५६
मौने मौन=मौन से सिक्त, मौनयुक्त अर्थात् धीमे । ८-१६
य=यगण (।ऽऽ) । २१-३२ अ
यकक = निश्चय । १-६
यति=योगी, सयमी । २१-७६
यन = जन, सेवक । २१-२६ अ
यल=जल, पानी । २१-३२ अ
यवा=जवा, जौ । २१-३२ अ
यवाल=ज्वाल, ज्वाला । २१-३२ अ
यस=(यश) कीर्ति । २१-२६ अ
या=इस । ८-१७
यातैं=इससे, इस कारण से । १-७
रँगजाल=रँग का समूह । ६-३५
रचक=अल्प, थोडा । ४-६
र की='र' अक्षर की । २१-२६ अ
रत्त=(रक्त) लाल । ४-३५
रगरो = रगड, सघर्ष । १४-८१
रज=रजपूती क्षत्रियत्व, पराग, धूलिकण । २०-६
रजत-अचल=चाँदी का पर्वत, कैलाश । २१-४५
रजधानी=(रज + धानी) रजन का आधार, राजधानी । २०-५
रजनीचर=निशाचर । १३-११
रजवती=१—रजपूतीवाली, शौर्यवाली । २—रजस्वला । ३—धूलिवाली । २१-१७
रति=प्रीति । १-१८
रतिभाउ=रतिभाव, प्रेम । ४-२०
रती=रति, प्रेम । २१-७५
रतौलिहु = लाल रग की भी । १४-३४
रतौं घिहे = हे रतौंधीवाले । २-६५
रथग =(रथाग) चक्र, चकवा । ६-६
रद = दंत, दाँत । २३-३३
रदछद =(रदच्छद) ओष्ठ । १७-६
रदछद=दतक्षत । १७-६
रवि = सूर्य । १८-१६
रमक=झकोर । ८-१४
रमनी=हे सखी । २१-५५
रमा=लक्ष्मी । ११-२३
रमानाथ=लक्ष्मीपति, सीतापति, रामचद्र । २१-६३
रमो=रमण करो । २१-७६
ररै=रटे । २१-५०
रलतु है=मिलता है । १४-२६
रलावई=मिलाया जाय । १९-७२
रलित=सहित, युक्त अधिष्ठित, समन्वित । २०-७
रली=लीन, युक्त । ३-५, ६-२०
रव=शब्द, नाद । २१-२६ अ
रवनी=(रमणी) स्त्री । २१-७१
रवी=रविवश के । २१-८३
रसखानि=प्रसिद्ध हिंदी कवि । १-१०
रसना-उपकठ=जीभ पर । १-६
रस-भीर=आनंदातिरेक । ४-१८

रसभोंयो=रस में भींगा हुआ। २५-५
रसरान=कवि नाम। १-८
रसराज=शृंगार। २०-१२
रस रास=आनंदक्रीडा। ४-१७
रसलीन=कविनाम। १-८
रससत=शांतरस। ४-४१
रसांग=रस के अंग, स्थायी भाव आदि। १-१८
रसाने=रसयुक्त रहने पर, अनुकूल होने पर। ४-४२
रसाल=रसीले, आकर्षक। २-३०
रसाल=आम, रसिक। २-४५
रसे=भीने हुए। २१-४१
रहीम=कविविशेष। १-१०
राई लोन वारती=नजर बचाने के लिए राई नमक सिर पर से घुमाकर आग में डालने का टोटका करती है। १७ ६
राउ=(राव) राजा। ६-३७
राकै=पूर्णिमा को (पूर्णचंद्र को)। ८ ८४
राग=अनुराग। ३-४०
रागी=अनुरक्त। १२-२२
रागै=राग में, प्रेम में। १५-१५
राज=मकान बनानेवाला कारीगर। ७ २८
राज=राजा; मकान बनानेवाला कारीगर। १२-१४
राजै=राजती है, सोहती है, होती है। २१-२
राजमनुष्य=राजकर्मचारी। १७-४३
राजी=प्रसन्न, अनुकूल। ५-१८
राजी=पंक्ति। १२-४२
राजी=शोभित हुई। २०-१२
राजु=राजती है सोहती है, होती है। १२-३५
राजैं=शोभित। १०-२७
रात=(रक्त) लाल। २२-५
राते=लाल। २१-४१
राम=परशुराम। २५-२३
रामा=सीता, राधा। २१-५०
रामा=स्त्री, ताडका। २१-८७
रारि=टंटा, झमेला (जगत्)। २१-५०
रावरो=आपका। ६ ३७
रास=नृत्य। २१ ७३
रास=क्रीडा, खेल। २१-८७
रासि=(राशि) ढेर। ४-४६
राहु=राह, मार्ग, राहु। २३-१२
राहुसंक=राहु से ग्रस्त होने की आशंका। ११-२६
रिझवारि=रिझानेवाली। १५-४२
रितुरीति=मौसम का व्यवहार। २०-१५
रिन=(ऋण) कर्ज। १२-२३
रिसवंत=क्रोधी। २५-३१
रिसाने=क्रुद्ध। ४-४२
रिसौ=(रोष) क्रोध भी। ४-१
रीझिहैं=प्रसन्न होंगे। १-८
रीति=रिक्त, खाली। १६-८
रीत्यो=घट गया, कम हो गया। ४-३[illegible]
रुड=भड, कबंध। ४-३५
रुख=ओर। २१ ६८
रुचि=इच्छा, अभिलाष। ६-१[illegible]
रुचि=शोभा, छवि। ६-१४

लाल=माणिक। ३-५४, २५-२१
लाल=गुल्लाला नामक लाल रंग का फूल। ६-३७
लाल=एक पक्षी श्रीकृष्णलाल। २०-१३
लाल चुरी=लाल चूड़ी; लालचुरी। ६-१६
लालि=विनती, चिरौरी, मिन्नत। २-५६
लाहु=लाभ। १३-४७
लिलार=(ललाट) भाल। ६-३५
लीक=चिह्न (आघात)। ६-३५
लीक=रेखा। १८-२३
लीला=शोभा। ३-५४
लीलाधर=कविनाम। १-१६
लीलहा=नीलकंठ पक्षी, खिलवाड़ में ही। २०-१३
लुगाई=स्त्री। १३-३३
लुटत=लूटते हैं। २१-३१
लुनि=(फसल) काटकर। ६-६७
लुरी=झूलती हुई, लटकती हुई। ६-८
लूट्यो=लूट लिया, प्राप्त किया। २-२४
लेखी=देवता (लेख) का स्त्रीलिंग देवी। २०-१०
लेरुआ=(गाय का) बछड़ा। १६-१२
लोइ=लोग। २०-१८
लोटन=एक प्रकार का कबूतर; लोटना, छटपटाना। २०-१३
लोनाई=लावण्य। १३-३६
लोने=लावण्ययुक्त, सुंदर। ४-१६
लोरत=लिपट रहा है। २१-८२
लोरति=चंचल करती है, नचाती है। ४-१८
लोल=चंचल। ६-३६
लोहित=लाल। ६-३५
ल्यावै=लाता है। २-४१
वर=श्रेष्ठ। २१-२६ अ
वा=वों वाँ। २१-३२ अ
वारापार=(पारावार) समुद्र। ११-१३
वारि जात=न्यौछावर होते, निकलते। १६-५६
वा सो=उसके समान। ३-३
वै=वह। २-३४
वोख=(ओक) अंजली। १५-४२
वोछरे=ओछे, छोटे। ११-३७
वोदर=(उदर) पेट। ३-१६
वोर=ओर, तरफ। ६-११
श्री=लक्ष्मी (श्रीनिवास) लक्ष्मी (का अधिष्ठान), धन। २०-६
श्रीयुत=शोभायुक्त। ८-८४
श्रीधाम=लक्ष्मी का वासस्थल। २३-८०
श्रीफल=बेल। ६-२
श्रौन=(श्रवण) कान। ३-४७
षटआनन=षडानन, कार्तिकेय। १-१
षट विधि=छह प्रकार। १-१५
षोडसो ध्यान=षोडशोपचारपूर्वक ध्यान। १-१
संक=शंका, आशंका। १-६
संकीरन=संकीर्ण। ३-५५
संकुल=समूह। १४-११
संख=(शंख) साफ धुला शंख (संख्या)। २०-१६
सगा=संकेत, इशारा। ३-३७

सँदेसऊ=सदेश भी। ५-२४
सदेहिल=सदेहवाला। २३-१८
सधिवत=भावसंधिवत्। ५-२
सध्या सुमन-सध्या का फूलना सध्या-राग। ३-५४
सनिधि=सानिध्य, निकट। १४-४३
सपा=(शपा) बिजली। ४-१७
सभु=शिव (स्तन के उपमान); १०-२२
ससकृत=सस्कृत भाषा। १-१४
ससै=(सशय)। २१-५४
सकट=कटकयुक्त। २१-२५
सकति=शक्ति। २-४२
सकल=समस्त, [नकल=स्वाँग (नाटक)]। २१-३८
सकारै='स' अक्षर। २१-३८
सकुच=सकोच। ३-३४
सकुरत=सिकुड़ते हुए। ४-३६
सकस=(सरकश) कठिन। ४-३४
सक्ति=(शक्ति) प्रतिमा। १-१२
सखन=मित्रों को, [नखन=नाखूनों को]। २१-३८
सगलानि=ग्लानियुक्त। ५-२५
सगुनौतियो=शकुन का विचार। १६-१४
सचान=बाज पक्षी। १३-४६
सचि=सचित करके, युक्त करके। ११-८
सचिव=मत्री, वजीर। १०-३५
सची=(शची) इद्राणी। ११-१०
सचेत=चेतनायुक्त। २-५
सचै कै=(सचय) एकत्र कर, अत्यधिक अनुभव करके। २-२५
सज=सजधज। २१-२६ अ
सजैं=सजते हैं, छजते हैं। २-३०
सज्या=(शय्या) चारपाई। २-६५
सज्यो=सजाया। १-७
सत=सज्जन, साधु। ३ ८
सतकथा=उत्तम कथा, भली बात। १-११
सतजन=(सत्‌जन) अच्छे जन, वीर पुरुष। १६-२
सतावन=सतानेवाला, दुख देनेवाला। २१-३१
सति=(सत्) सत्य। २१ ८६
सतिभाम=(सत्यभामा) श्रीकृष्ण की एक पटरानी। २३-८
सति भावती=सत्यभामा। २१-७२
सदन=घर, धाम। २३-५२
सदेह=सशरीर, शरीरधारी। १०-१६
सधरम=धर्म के सहित, [नधरम=अधर्म]। २१-३८
सनि=सनकर, मिलकर। ७-२८
सनी=शनिग्रह। १८-१६
सपूत=(सुपुत्र) अच्छा लड़का। २१-१०
सप्तार्चिभालधर=(सप्त=सात+अर्चि=लपट अर्थात् अग्नि+भाल=ललाट+धर=धारण करनेवाला) गणेश का विशेषण। १-१
सफरि=(शफरी) मछली। ६-२०
सफरे=करने पर। २१-७८
सन्न=सपूर्ण, [नम्र=(नव) नवता है, झुकता है]। २१-३८
सबल=शबल (चित्र विचित्र)। ४-४८
सबलवत=(शबलवत्)। ५-२

[illegible stamp text]

सविराग=उदासीनतासहित । ५-२५
सब्द अलंकृत = अनुप्रासादि शब्दालंकार । १-१८
सभाग = बढ़िया, उत्तम । २१-१६
सभेरे = भिटी हुई, सटी हुई, समीप । १८-७
समता = बराबरी । २-२३
समतूल = समान । २-४७
समत्थहूँ=समर्थ होते हुए भी । ५-१८
समथ = समर्थ । १६-४६
समर=युद्ध । ६-३५
समर=(स्मर) कामदेव । ६-३५
समरथ=समर्थ; सम+रथ, रथों से युक्त । २०-५
समर्थ=उपयुक्त, सबल । २-१३
समसरी=समता, समानता । २०-१०
समान=सामान्य । ३-२६
समिध=(समिधा) लकडी । १०-३६
समीरकुमार=पवनकुमार, हनूमान् । १०-२१
समुदाउ=समुदाय, समूह । १६-२४
समैं=समय में । ४-१७
समोयो=सना हुआ । २५-५
समौरध-(सम्+ऊर्द्ध) = ऊपर, स्वर्ग । २१-७८
सयन वर की न जा = पति की शय्या पर मत जा । २१-२६ अ
सयान = चतुराई । १४-१३
सयानी = सज्ञानता, चतुराई । ८-३७
सयानै = चतुरता को । २-२५
सर = तालाब, नाभि । ८-३०
सर = बाण । १३-१५
सर=सरकंडा । १८-२३
सर=तालाब । २१-१३ अ
सर=चिता । २५-२२
सरकि=चलाकर । १६-८
सरदार=अगुआ, मुखिया । २१-१३ अ
सरदै=शरद् ऋतु । ५-६
सरबग=सर्वांग । ६-३५
सरब=सर्व, सब । २१-८०
सरबट्टत=सरबोटता है, एक साथ छिन्न-भिन्न करता है । ४-३५
सरसजन=१—सस=(शश) खरगोश ।
२—रज=रजपूती ।
३—सन= (सन) ।
४—जस=(यश) कीर्ति ।
५—नर=मनुष्य ।
६—सरसजन=रसिकजन, कलाविद् । २१-२०
सरबरी=(शर्वरी) रात । १६-५६
सरबरी=कहासुनी । १६-५६
सरबरीति = (सर्वरीति) सब ढंग । १६-५६
सरब (री) = हटो (री) । १६-५६
सरसाइ = बढ़ता है । ४-२५
सरसिज = कमल । ८-३८
सरसी = तलैया, छोटा तालाब । ८-५८
सर सी = बाण के समान । १६ ५७
सरसी = रसमयी (सुखद) । १६-५७
सरसी = सरोवरी । १६-५७
सरसीरुह = कमल । १६-५७
सरसुति = सरस्वती । २-१२
सरसे = बढ़ने से । १३-२१

स्व. डा. श्री रामचन्द्र जी पुरोहित के संग्रह का उनके पुत्रों अजय एवं संजय पुरोहित द्वारा सादर सप्रेम भेंट

सरारी = (शराली) बाण की पंक्ति । १०-३७

सरि = सदृश, समान । १६-६०

सरि = समानता । २१-४१

सरि गो = प्रविष्ट हो गया (गए) । २१-५५

सरित = सरिता, नदी । १०-२६

सरिस = सदृश, समान । १२-४

सरी = सरई, पतला सरकडा । १८ २३

सरे सी = चिता के समान दाहक चिंता । ८-२८

सरोवरी = तलैया । १३ ३५

सर्ग = (स्वर्ग) वैकुंठ । ६-३७ अ

सर्पिष = घृत, घी । ८-८६

सर्व्वरीनाथ = (शर्वरीनाथ) चद्रमा । २१-७०

सलच्छन = (शुभ) लक्षणों से युक्त, [न लच्छन = अलक्षण] । २१-३८

सलोनी = (सलावण्य) सुदरी । ५-६

सलोने=लवणयुक्त, सुदर । १०-२८

सवारहि = (सँवारहि) सँवारती है । २१-७८

ससधर = शशाक, चद्रमा । २१-४३

ससा = खरगोश । १३-५१

ससि = चद्रमा (मुँह) । ६-८

ससितूल = (शशितुल्य) चद्रमा-सदृश । १८-१६

ससिरेख = (द्वितीया के) चद्रमा सी रेखा (नखक्षत) । १३-४२

ससुरसाखि = (स + सुरसाखि) कल्पवृक्ष से युक्त । २३-८

सहवास = साथ बसना । १४-११

सहर्ष = प्रसन्नतापूर्वक, [न हर्ष = प्रसन्नतारहित] । २१-३८

सहल = साधारण । ११-३३

सहस = सहस्र, हजार । २०-५

सहस = सहास, (सहस्र) हजार । २०-१६

सहसपान = सहस्रपत्र, कमल । २५-१५

सहाब = (फारसी शहाब) एक प्रकार का गहरा लाल रग । ३-५४

सहिंमति = साहस के साथ, [न हिमति= साहस से रहित] । २१-३८

सहेट = सकेतस्थल । २५-२६

साँकरे=सकट । १३-२३

साँचु=सत्य, [नाँचु=नाच] । २१-३८

साँप=सर्प; केश । ६-८

साँवरे = श्रीकृष्ण । ११-४२

साँवरो चद=श्रीकृष्णरूपी चद्र । १३-१२

साँसरी = फूँकनी । १८-२३

साकत = शाक्त, शक्ति के उपासक । २१-२५

साखी=साक्षी, गवाह । १७-४८

साज = सजावट । २-१०

साज = साजसज्जा; [नाज = गर्व] । २१-३८

साजु=साजसज्जा । ३-३२

सातकुभ = (शातकुभ) सोना । १८-१८

साध = (श्रद्धा) प्रबल इच्छा । ११-३७

साधु=सज्जन, निपुण, योग्य १ ७ ।

सान=(शाण) । ८-२६

सामुहे = समुख, सामने । १२-१७

सायर = (शायर) कवि । ८ ६६

सुदर=कविनाम । १-१६
सुदर=एक पर्वत । ११-१३
सुदरी=स्त्री । १८-३०
सु=सो । २१-८७
सुअ=(सुत) पुत्र । १६-४६
सुक=(शुक) सुग्गा । ३-४८
सुकबीन सौं=श्रेष्ठ कवियों से । १-१२
सुकिया=स्वकीया (नायिका) । २३ ८४
सुकृती=पुण्यात्मा । ४-३१
सुकेसी=(सुकेशी) सुदर केशों वाली एक अप्सरा । ८-३७
सुक्र= शुक्र जिसका रग श्वेत है । १८-१६
सुखदेव मिश्र=कविनाम । १-१६
सुखन लेखैं=सुखों को समझते हैं, सुख नहीं समझते । ३-५२
सुख-सिखदानि=सुख से सीख देनेवाली, सरलता से सकेत करनेवाली । १-११
सुघर=चतुर । ४१- ६
सुघराई=कौशल । ८-?
सुघरी=सुष्ठु घड़ी, सुदरी । २४-४
सुचित=स्थिर चित्त से । २-६०
सुचितई=निश्चितता । ६-१०
सुज=(सु+ज) सुजन्म । २१-२७ अ
सुजान=सज्ञान, चतुर । ?
सुडार=सुदर डाल । ८-३८
सुढार=सुडौल । ८-२०
सुतंत्र=स्वतत्र, स्वच्छद । १७-१२
सुतनुतनु=सुदरी (नायिका) का शरीर । ११-४२
सुती=पुत्री । २१ २७ अ
सुथलगति=सद्गति । ८८०
सुदार=सुष्ठु लकडी । २५-३५
सुदेश=सुंदर, स्वदेश । २०-५
सुधा=अमृत, मीठी, आकर्षक । २-३४
सुधाई=सीधापन, सिधाई । १५-४६
सुधाधर=चद्रमा । ४-४६
सुधाधार=अमृत की धारा । ६-३१
सुफल चारि=धर्म अर्थ, काम और मोक्ष । १३-१३
सुबरन=स्वर्ण, सुष्ठु वर्ण । ८-१३, १०-२७
सुबरन=स्वर्ण, सोना श्रेष्ठ या भली सैनिकों । २०-५
सुबासता=सुगधत्व । २-४८
सुवृत्त=अच्छे गोल गोल, सच्चरित्र । १०-२२
सुवेल=त्रिकूट पर्वत का एक शिखर । इसके तीन शिखर थे—सुवेला, लका, निकुभिला । ११-१३
सुवेस=(सुवेश) उत्कृष्ट, उत्तम । २-४६
सुभगता=सुदरता । १६-?०
सुभाग=सौभाग्यशालिनी । ४-२३
सुभाय=स्वभाव से । १२-१?
सुमति=अच्छी बुद्धि वाले । १-१४
सुमन=पुष्प, (सु+मन) । ६-५?, २०-१५
सुमनधनुधारी=पुष्पधन्वा, कामदेव । २१-५५
सुमनमई=सुमनमयी, जिनके अंग पुष्प के ही हों । ??-१६
सुमिरन=स्मरण । १-८
सुमेध=सुबुद्धिवाला । ?५-?

सुरंग=(सु+रंग) सुंदर रंग, सुष्ठु वर्ण। २-४८
सुर=स्वर। २१-२७
सुरआपगा=देवनदी, गंगा। ८-७६
सुरकी=बाण के फल के आकार का तिलक। २५-२१
सुरतरु=कल्पवृक्ष। २१-७२
सुरपति=इंद्र। २१-७२
सुरपुर=देवलोक, स्वर्ग। २३-८
सुरबाजि=इंद्र का घोड़ा। १५-८
सुरराइ=(सुरराज) इंद्र। २२-१५
सुरलोक=देवलोक, स्वर्ग। ३-३२
सुरापी=सुरा पीनेवाला, मद्यप। ८-८५
सुरालय=स्वर्ग। १५-१८
सुरीति=अच्छी रीति से। २-१५
सुरुचि=(स्वरुचि) अपनी इच्छा से। १-५
सुषमा=अत्यंत शोभा। ३-४७
सुसम=(सुषमा)। २१-७०
सुहृद=मित्र। ३-५५
सूत=सारथी, रथ हाँकनेवाला। १-१२
सूधी=सीधी, सरल। ३-३६
सूधो=सीधा, सरल। ७-४३
सूम=कंजूस। ६-३३
सूर=सूरदास। १-१६
सूर=(शूर) वीर, बली। २-३६
सूरता=शौर्य, वीरता। ६-३८
सूर-सुअन=बाल सूर्य। ३-५४
सूल=(शूल) पीडा। ४-३३
सूल=(शूल) काँटा। ४-४०
सूली=त्रिशूली, महादेव। १३-३२
सूली=दंड देनेवाला। १३ ३२

सेजकली=शय्या में बिछी फूलों की कली। १३-४७
सेत=(श्वेत) उज्ज्वल। ३-११
सेद=(स्वेद) पसीना। १२-२०
सेनापति=प्रसिद्ध कवि सेनापति। १-१६
सेव्य=सेवा के योग्य। १-१
सेर=(शेर) सिंह। २-३६
सेली=सूत, रेशम या बालों से बनी माला जिसे योगी गले में पहनते हैं। २५-१५
सेवँर=(शाल्मली) सेमल। ३-२०
सेवैया=सेवक, सेवा करनेवाला। २५-३८
सेस=शेषनाग। ११-३५
सै=से। २१-८६
सैन=(शयन) सोना। २-६५
सैन=संकेत। २१-७६
सैरस=सरस, रसयुक्त। २१-६२
सैल=(शैल) पहाड़। ३-१७
सैल=सैर, यात्रा। ६-१८
सोइ=वह। २-२८
सोग=(शोक) दुख। १५-५१
सोती=(स्रोत) धारा। १०-४२
सोतो=(स्रोत) सोता। २५-३६
सोदर=सहोदर, सगा भाई। १-३
सोध=(शोध) खोज। ११-१२
सोधि लेहिंगे=सुधार लेंगे। १-७
सोनजुही=(सुवर्णयूथिका) पीली जुही। २०-१७
सोम=चंद्रमा (सुधा)। ६-२०

सोसनि = सोसन, एक फूल जिसके दल नीचे होते हैं। ६ ३७

सोहाई = सुहावनी । ११-३०

सौँ=शपथ । २२-५

सौंहँ=समुख । २१-८०

सौंहवादी = शपथ लेनेवाला । १७-२६

सौति = (सपत्नी) सौत । ४-२७

सौतुख=प्रत्यक्ष । १५-१५

सौध = महल । २-३२, ११-१०

सौ हजार मन = सौ हजार (लक्ष) मन (मण), लक्ष्मण । २३-२१

सौहैं=शपथें । ३-३७

सौहैं=समुख; शपथ । २०-१५

स्याम=(काले रग वाले) कृष्ण । २-३

स्याम=काला दाग । २१-१६

स्यामा=राधिका । ३-३७

स्यामा=षोडशवर्षीया नायिका । ५-२५

स्यारपन=स्यार की वृत्ति, डरपोकपन । ४-३६

स्यौं=सहित । १-१८

स्रमसलिल=स्वेद, पसीना । २-५३

स्रवती=टपकती । २२-१२

स्रवहिँ=गिराती हैं, गिराते हैं। ५-१७

स्रापु=(शाप, श्राप) । ४-२१

स्रुति=(श्रुति) कान । २४-२

स्रुतिव्रसि=श्रुतिवश्य, वेद के वश में रहनेवाली । ३-४४

स्रुवा=होम में घी डालने का उपकरण १०-३६

स्रोतस्विनी=नदी । १६-४६

स्रोनित=(शोणित) रुधिर । ४-२४

स्रौन=(श्रवण) कान । ५-१८

स्वरादिक=स्वर आदिक, मात्रा आदि । २-१८

स्वाँग = वेश । १६-२६

स्वाऊँ = सुलाऊँ । २ ५६

स्वेद-खेद = पसीने का कष्ट । २-५६

स्वैही = सोकर ही । १२-३८

हकीकति = असलियत, वास्तविक स्थिति । २१-४१

हजूर = सामने । ५-१५

हतन = मारनेवाले । २१-४५

हति = मारकर । १२-२९

हद = सीमा, पराकाष्ठा, अत्यधिकता । ११-२३

हनन = मारने, नष्ट करने को । ६-१४

हनि = मारकर । १६-२४

हनु = हनन करनेवाले, दूर करनेवाले । २१-६०

हन्यते = मारा जाता है । १७-१६

हन्यात=हनन करता (मारता) है । १७-१६

हय=अश्व, घोडा । ६-४६

हर = शिव । २१-३७

हरकोदड = शिव का धनुष । १८-३६

हरबर दान = शीघ्र दान, हर (हल) बर-दान (बर्धा = बैल) । ६-४६

हरायल=पराजित उपमान (चद्रमा) । १२-४२

हरि = इद्र, सूर्य, घोडा (घुडसवार की कृपाण होने से) । २०-६

हरि=हरण कर, दूर कर; सहार कर, मिटाकर । २०-७

हरियारी = हरी; हरि+यारी (श्रीकृष्ण से मैत्री)। ६-१६
हरिरूप = श्रीकृष्ण का सौंदर्य। २-२४
हरीरी = (हरीली) हरी। १८-३४
हरुवो = हलका, अप्रतिष्ठित। ८-४६
हरैं हरैं = धीरे धीरे।
हरे वै = हरेवा, वे हर लिए। २०-१३
हरे हरे = धीरे धीरे। २१-५२
हरौल = (हरावल) सेना का अगला भाग। १०-४०
हलकत = हिलते हैं। ११-३५
हलायुध=(हल + आयुध) हल का हथियार। २१-२५
हलाहल = महाविष। १०-३६
हलुके = हलके, कम प्रभाव वाले। २२-४
हलोरैं = समेटते हैं। ६-४६
हलोरैं = हिलोरैं। ६-४६
हवेल = हुमेल, गले में पहनने का गहना। २५-२१
हाँति = दूर। ४-३१
हाँसी = हस, हँसने की क्रिया। २०-१३
हाट = बाजार। ८-१२
हामि भरौ = हामी भरो, स्वीकार करो। २५-४४
हायलताई = शिथिलता। १२-४२
हार = माला। २१-३६
हारु = हार, माला १६-७०
हारु = पराजय, हार। २१-८४
हाल = हालत, दशा। ४-२४, ६-५७
हाल = तुरत। ४-२४
हास = हँसी। २१-८४
हितू = हितैषी, मित्र। ४-४२, २१-१५
हितै = हित ही, कल्याणकारी ही। १-७८
हितो=प्रेम ही। २१-७१
हिमंचल=हिमालय। २२-६
हिमकर=चद्रमा। २३-६०
हिमिबाइ=(हिम + वायु) शीतल हवा, बर्फीली हवा। ३-१२
हिरन्यलता=(हिरण्यलता) सोने की लता। ८-२८
हिरानो=खो गया। १७-३६
हिलिमा=हरिमा, पीतिमा। २१-८२
ही = थी। ८-७८
ही=हृदय। १६-१०
हीअ=हृदय। २२-४७
हीन=रहित। २१ ८१
हीरन=हीरा रत्नों से। ११-३३
हीरा=उज्ज्वल रत्न; हियरा, हृदय। १०-२७
हीरो = हियरा, हृदय। ६-२६
हीरो=हियरा, हृदय; हीरा। १५-१५
हुतासन=(हुत + अशन) आग। ८-७६
हुती=थी। २१-२७
हुतो=था। २१-१५
हुत्यो=था। ४-५१
हुनि देती = आहुति देती, स्वाहा कर देती। ६-६७
हुल्लास = उल्लास, उमंग। १४-३
हुस्यारपन=(होशियारपन) चतुरता, चातुर्य। ४-२६
हेत=(हेतु) कारण। २३-८८

हेम=सोना। २१-६१
हेरन=देखने। २२-८
हैहै=हाय हाय। २१-४७
होतो=हो जाता। ४-२६
होम कै=आहुति देकर। ८-७३
हौँ=मैँ। २-६२
हौँ=हूँ। २-६२
ह्याँ=यहाँ। १६-१२
ह्वै=होकर। २-६०
ह्वैबो=होना। ६-२० अ